

लोक साहित्य विमर्श

डॉ॰ स्वर्णलता

चम्पालाल रॉका एण्ड कम्पनी
किताब महल, चौडा रास्ता
जयपुर-302003

प्रकाशक
रत्न स्मृति प्रकाशन
बीकानेर

वितरक
चम्पालाल रांका एण्ड कम्पनी
किताब महल, धामाणी मार्केट
चौडा रास्ता, जयपुर–3
फान 75241

मुद्रक
राजेश कम्पोजिंग सैण्टर एव स्वदेश प्रिंटस
ठेलीपाडा, चौडा रास्ता, जयपुर–3

प्रथम सस्करण
26 जनवरी, 1979

मूल्य
बीस रुपया

अतरग

अपनी बात

लोक-साहित्य लोक की वस्तु है। वह लोक की ही भावनाओं और चेतनाओं को लेकर प्रकट होता है। शिष्ट साहित्य की संस्कारिता से उसका सुयोग होने पर उत्तम राष्ट्रीय साहित्य तयार हो सकता है।

जब से मानव हृदय सुख दु ख की अनुभूतियों को शब्दों द्वारा व्यक्त करने में समर्थ हुआ तभी से इस साहित्य की सृष्टि होती रही है—इसकी धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती हुई सर्वत्र व्याप्त हो चुकी है—शिष्ट साहित्य पीछे की वस्तु है।

लोक-साहित्य महामहिम मौखिक परम्परा का प्रतीक है। इस साहित्य का समूचे रूप से अध्ययन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि जब मानव प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था अर्थात् जीवन में कृत्रिमता का प्रवेश नहीं अथवा कम हुआ था उस समय मानव जीवन में संघर्ष कम था, नैसर्गिक प्रवाह अधिक वैयक्तिक रुचि भिन्नता के स्थान पर सामूहिक भावना और सम रसता का आधिपत्य था। एक भारत नहीं विश्व के सारे देश और उनके अनेक जन-पद इस प्रकार की प्रवृत्त जीवन स्थिति के युग से गुजर चुके हैं। किसी भी देश के जीवन की पृष्ठभूमि में मौखिक परम्परा के अतीत को छूती हुई और धरती की आस्था में बँधी हुई गाथा सुनकर हम आनन्दित होते हैं। इस गाथा में प्रत्येक व्यक्ति समूचे कुटुम्ब जाति या राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता दृष्टि आता है। अतीत के उस मानव के जीवन की शान्ति और सुख-समृद्धि के सम्मुख वर्तमान उन्नत युग का सिर झुकने लगता है जबकि जीवन में चतुर्दिक संघर्ष और कलह के बादल छाये दृष्टि होते हैं कृत्रिम साधनों से उत्पन्न जीवन-यापन की सुख-सुविधाओं के साथ असंतोष और पारस्परिक वमनस्य की आग से प्रेम के सम्बन्धों को क्षीण करके मानवीय भावनाएँ विलुप्त होने लगी और आवश्यकताओं के बढ़ जाने से तीव्रतर असन्तोष अभाव और भुखमरी मच रही है।

इस प्रकार आधुनिक युग की विडम्बनाओं से मुक्ति पाने के लिये लोक-साहित्य के विविध रूपों का पठन पाठन चित्रण और उसमें वर्णित आस्थाओं मान्यताओं और सांस्कृतिक भावनाओं पर मन को टिकाना अति महत्त्वपूर्ण है।

आदि मानव की अमूल्य निधि

लोक-साहित्य का अध्ययन करना मनुष्य के अन्तर्मन की स्वाभाविक माँग है। लोक साहित्य में लोक-संस्कृति की झाँकी मिलती है, और जन मानस की प्रकृत भावनाओं, स्वाभाविक आवेग उल्लास का यथार्थ स्वरूप हमें इसी साहित्य में मिलता है। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय मनीषी एवं विश्व के अन्य देशीय विद्वानों का ध्यान लोक-साहित्य के विविध रूपों की शोध, समीक्षा तथा तात्विक अन्वेषण की ओर विशेष आकर्षित हुआ है, जिसके फलस्वरूप यत्र तत्र विकीर्ण आदि मानव की इस अमूल्य निधि के नित्य नये आयाम प्रकाश में आ रहे हैं।

मैंने भी गुरु तुल्य मूर्धन्य विद्वानों की प्रेरणा से लोक-साहित्य के एक अंग राजस्थान के लोक-गीतों को अपनी शोध का विषय चुना जिसके अध्ययन पर राजस्थान विश्वविद्यालय ने मुझे पीएच० डी० की उपाधि प्रदान की। तत्पश्चात् मेरी लोक-साहित्य के अध्ययन की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। शोध ग्रन्थ में समन्वित विषयों को और अधिक गहराई तथा व्यापक रूप से समझने एवं लोक-साहित्य के अन्य अंगों का भी पर्यवेक्षण करने की जिज्ञासा बलवती होती गई। इस जिज्ञासा की पूर्ति हेतु लिखे हुए कतिपय निबन्धों का संकलन लोक-साहित्य विमर्श रूप में साहित्य प्रेमी विद्वानों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए मुझे अति प्रसन्नता है।

इस संकलन में लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति और लोक-कलाओं सम्बन्धी सामान्य ज्ञान समन्वित करना मेरा लक्ष्य रहा है। लोक शब्द इतना विशाल और अर्थ गाम्भीर्य से पूर्ण है कि तद्विषयक साहित्य के विविध अंगों और उपांगों का सम्यक अध्ययन, समीक्षा एवं उसे निबन्धों में बाँधना अति दुर्लभ प्रयास होगा—फिर भी मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि की पहुँच के अनुरूप इन निबन्धों द्वारा मानवीय भावनाओं के विकास में लोक-साहित्य का महत्त्व, शिष्ट-साहित्य से लोक-साहित्य का भेद, लोक-साहित्य के विविध रूपों का परिचय, लोक-संस्कृति एवं लोक-कलाओं के स्वरूप को चित्रित करते हुए मानव जीवन को सरस, सुरम्य और सुखद बनाने में इनका योगदान आदि पक्षों को प्रकाश में लाने का दुस्साहस किया है। साथ ही विशेषकर राजस्थान के लोक-गीतों, लोक-नाट्यों, संगीत में प्रयुक्त वाद्य यन्त्रों तथा लोक देवी-देवताओं पर निबन्ध लिखकर भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यहाँ के लोक-साहित्य की विधाओं और लोक-संगीत आदि की विशिष्टता प्रतिपादित की है। लोक-संगीत में प्रयुक्त वाद्य यन्त्रों के संक्षिप्त वर्णन में लोक-कलाओं की स्वाभाविकता और आडम्बर-विहीनता का परिचय मिलता है।

लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति एवं लोक-कलाओं की दृष्टि से भारत विश्व भर में अपना अनुपम स्थान रखता है और भारत में राजस्थान विशिष्ट है—राजस्थान के लोक जीवन में निराला, रंगीला भड़कीलापन तथा यहाँ के जन-मानस का अदम्य

उत्साह व उल्लास पाया जाता है और मेरा अध्ययन भी विशेषकर राजस्थानी लोक-साहित्य पर रहा । अतएव इस प्रदेश के लोक गीतों एवं कलाओं व संगीत आदि पक्षों पर भी निबन्ध समर्पित किये गये हैं। राजस्थान के जन-जीवन में व्याप्त देवी-देवताओं का प्रमुख स्थान है अतः यहाँ के लोक देवी-देवताओं का सामान्य परिचय उन पर रचे हुए लोक गीतों सहित देना भी उचित समझा गया ।

लोक साहित्य के चक्रवर्ती परम श्रद्धेय डॉ० सत्येन्द्र ने इन निबन्धों को लिखने में जिस गुरुत्व स्नेह से मुझे निर्देशन प्रदान किया और अपने अनन्य ज्ञान पूर्ण आशीर्वचन से इस तुच्छ पुस्तक को महत्त्वपूर्ण बनाया इसके लिये मैं अन्तर्मन से गुरु भक्ति रूप में उनको नमन करती हूँ ।

भारतीय लोक-कला मण्डल से प्रकाशित जिन ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं से लाभान्वित होकर मेरे इन निबन्धों की पूर्ति हुई तदनिमित्त मण्डल के अधिष्ठाता लोक-कला मर्मज्ञ डॉ० देवीलाल सामर के प्रति आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। साथ ही उन विद्वान् लेखकों के प्रति भी अनुगृहीत हूँ जिनके ग्रन्थ अथवा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विचार सामग्री से मैंने लाभ उठाया ।

मेरी अल्पज्ञतावश रहे अभावों और त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करती हुई इस आशा से अपने इस तुच्छ प्रयास को गुरु तुल्य विद्वज्जनों को समर्पित करती हूँ कि इन निबन्धों के अध्ययन से प्राप्त विषय का सामान्य ज्ञान साहित्य प्रेमी युवा पीढ़ी को प्रेरित करके लोक-साहित्य के विविध पक्षों के अधिक गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और मनन के लिये मार्ग प्रशस्त करेगा ।

कार्तिक सुदी पूर्णिमा
संवत् 2035

—स्वर्णलता

आमुख

डॉ० श्रीमती स्वर्णलता अग्रवाल राजस्थान की जानी-मानी शिक्षा जगत की एक हस्ती हैं। उन्होंने अपना पूरा जीवन शिक्षा क्षेत्र और समाज-सेवा के लिये समर्पित कर दिया है। ये शिक्षा शास्त्री हैं, अभी कुछ वर्ष पूर्व ही बीकानेर के राजकीय महाविद्यालय के प्राचार्या के पद से अवकाश ग्रहण किया है। ये शिक्षा शास्त्री ही नहीं, सुलेखिका भी हैं। इनकी कई पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। लोक-साहित्य की तो ये विशेषज्ञ हैं इन्होंने बहुत पहले ही राजस्थानी लोक गीतों पर अनुसंधान करके पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनका यह शोध प्रबन्ध दो भागों में राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर से प्रकाशित हो चुका है। इस प्रकार इन्होंने लोक-साहित्य के अनुसंधान क्षेत्र में यश प्राप्त किया है। अपने यश को बनाये रखने के लिये ये निरन्तर ही प्रयत्नशील रही हैं। उसी का सुन्दर फल आज इस पुस्तक के रूप में हमारे हाथ में है।

इस पुस्तक का नाम है 'लोक साहित्य विमर्श'—यह लोक-साहित्य सम्बन्धी विविध पक्षों पर डॉ० स्वर्णलता के विचारपूर्ण निबन्धों का संग्रह है। इसमें इनके अपने पहले लोक साहित्य विषयक अनुसंधान से आगे के चिंतन का प्रतिपादन है। 'लोक-साहित्य और जन जीवन' में आपने सिद्ध किया है कि लोक-साहित्य का जन-जीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। 'लोक-साहित्य और शिष्ट-साहित्य' शीर्षक निबन्ध में ये पंक्तियां आकर्षित करती हैं 'अनेक प्रकार से लोक-साहित्य और शिष्ट-साहित्य में भेद होते हुए भी दोनों में आदान प्रदान रहता है।'

एक अध्याय 'लोक-साहित्य की विधाएँ' विषयक भी है। इस छोटे से निबन्ध में ये लोक साहित्य की समस्त विधाओं का मार्मिक परिचय करा सकी हैं। 'लोक-संस्कृति' में और गहरे उतर कर इन्होंने यह रत्न प्रदान किया है

"ऐसी स्थिति में लोक-संस्कृति के अभ्युदय के परिप्रेक्ष्य के लिए हम नैतिक मोड़ धारणाओं को ही अपनाना होगा, जिसमें नवीन संस्कृति लोक-संस्कृति के धरातल में विलग होकर सूरजमुखी का रूप न धारण कर ले।' क्योंकि संस्कृति का निर्माण राजनीतिक अथवा व्यक्तिगत आकांक्षाओं के आधार पर नहीं किया जा सकता, लोकोन्मुख की भावना से किया जाता है।"

निश्चय ही ऐसे कथन इनके स्वस्थ विचारों और मान्यता का ही परिणाम हैं। प्रत्येक निबन्ध में तद्विषयक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए और अन्य विद्वानों के प्रमाण से पुष्ट करते हुए इनके गंभीर विचार न्यस्त हैं जो पाठक को भी चिंतन करने के लिये विवश कर देते हैं।

यही लीजिये न, 'लोक-कला' निबन्ध के ये शब्द कितने नपे-तुले किन्तु कितने मार्मिक— "लोक-कला की प्रवृत्ति सदा से नारी रूपा रही है। नख से शिख तक नारी के जीवन का सम्पूर्ण ताना-बाना लोक-कला के विविध रूपों—मेंहदी, मांडणा, गोदनों, पहनावों आभूषणों, गीतों, नृत्यों तथा नाना प्रकार की सांस्कृतिक परिकल्पनाओं से बुना गया है। तभी नारी को सारी कलाओं की उपजीव्य माना गया है।"

इस पुस्तक में इनके केवल लोक जीवन और लोक-साहित्य के विविध पक्षीय सम्बन्धों की सैद्धान्तिक चर्चा ही नहीं है राजस्थान के लोक-गीतों के भी कितने ही मार्मिक पक्षों का उद्घाटन इन्होंने किया है। यह उद्घाटन सोदाहरण है अनुसंधान युक्त है और वैज्ञानिक दृष्टि से है।

ये सभी निबन्ध लोक-साहित्य के प्रेमियों अनुसंधानकर्त्ताओं और अध्येताओं के लिये उपयोगी हैं ही, इसमें संदेह नहीं। पर ये उन लोगों को भी पसन्द आयेंगे जो अच्छी पुस्तकों के पढ़ने में रुचि रखते हैं। इसमें ललित शैली के साथ बहुत सी जानने योग्य बातें भी समाविष्ट हैं जिससे सामान्य ज्ञान भी बढ़ता है। लेखिका की शैली इसे अत्यन्त रोचक बना देती है, साथ ही बहुत-सी विचार करने योग्य सामग्री भी जुटा देती है। ऐसी पुस्तक प्रदान कर स्वर्णलताजी ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। अन्त में आशा करता हूं कि इस पुस्तक का हिन्दी में हार्दिक स्वागत किया जायेगा।

—डा० सत्येन्द्र

लोक साहित्य और जनजीवन

लोक साहित्य के चक्रवर्ती डॉ० सत्येन्द्र ने लाक साहित्य की परिभाषा करत हुए लोक शब्द के विभिन्न अर्थों पर प्रकाश डाला है। उनके कथनानुसार 'लोक' शब्द का अभिप्राय मनुष्य समाज के उस वर्ग से है जो अभिजात्य सस्कार, शास्त्रीयता और पाडित्य की चेतना अथवा अहकार स शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह म जीवित रहता है। ऐस लाक की अभिव्यक्ति म जो तत्व मिलत है वे लाक तत्व कहलात हैं।[1]

लाक साहित्य का क्षेत्र बडा विशद है। अत्यन्त आदिम, जगली अभिव्यक्तिया स लकर शिष्ट साहित्य की सीमा पर पहुँचने वाली समस्त अभिव्यक्ति लोक साहित्य के अन्तगत आती है।

वस्तुत जीवन की विविध अवस्थाओं एव अनुभवों का चित्रण साहित्य मे होता है। लाक साहित्य इस क्रम के प्रतिपादन म सवश्रेष्ठ स्थान पर आसीन होता ह क्योंकि लोक साहित्य म मानव हृदय का यथाथ चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। जीवन के निश्छल और स्वाभाविक रूप का दशन हमे लोक साहित्य में ही होता है। शिष्ट साहित्य म चित्रण प्राय काल्पनिक एव अतिरजित पाया जाता है। उसम विशाल मानव समाज के बहुत थोडे से व्यक्तियो के जीवन की विशिष्टता परख भावी मिल सकती है परन्तु लोक साहित्य अधिकाधिक जन समाज की भावनाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। जन-साधारण क जीवन म प्रान्त देश एव भाषा की दीवार अधिक लम्बी दृष्टि नही आती। साधारण स जालीदार परद के पीछे समस्त देश क जन-जीवन का स्वाभाविक स्रात एक जैसा बहता प्रतीत होता ह। अत अखण्ड मानव समाज की एकता का परिचय जितना सुदर हम लाक साहित्य म मिलता है उतना अन्यत्र सम्भव नही। इसम ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व भर म सवत्र मानव का एक जसा हृदय बोल रहा है। अत यह साहित्य मानवी स्नेह की एकता का द्योतक है। जातीय जीवन म हमारे इस साहित्य का अत्यधिक मूल्य है। डॉ० रवीन्द्रनाथ टगोर न लिखा है कि जिस प्रकार शिशु प्रकृति की सृष्टि है किन्तु

---

1 'साहित्य सन्देश' जून, 56 म प्रकाशित लख ' लाक साहित्य की परिभाषा
—डॉ० सत्येन्द्र

वयस्क मानव बहुतकर स्वय अपनी रचना है, इसी प्रकार लोक साहित्य भी शिशु साहित्य है मानव मन म उसका स्वय जन्म हुआ ह।

डॉ० सत्येन्द्र के शब्दो म "लोक साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि स उतना नही होता जितना उन परम्पराओ की दृष्टि से होता है जो नविज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियो का नाप कह सकते हैं।"[1]

आदिम मानव के हृदय की भावनाओ का भण्डार लोक साहित्य अपनी सजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है और एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ म एक हृदय से दूसरे हृदय म प्रतिध्वनि करता हुआ चला जा रहा है। सुसस्कृत साहित्य स यह साहित्य अधिक विस्तृत और विदग्ध है। इसम कालिदास और भवभूति तुलसी और जायसी मीरा और रसखान के भावो की मूल अनुभूति मिलती है। जीवन का कोई अग नही जो इसम अछूता रहा हो हृदय का कोई कोना नही जिसका चित्र इस साहित्य म सहृदयता के साथ न खीचा गया हो। जनता के मानस म लोक साहित्य का जन्म होता है। अतएव किसी भी देश के लोक साहित्य का विधिवत सग्रह करन स वहा के निवासियो की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक नतिक एव सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जायगा। लोक साहित्य के अन्तगत वह समस्त आचार विचार की सम्पत्ति आ जाती है जिसम मानव का प्राकृतिक रूप प्रत्यक्ष हो उठता है।

जन को समझने के लिए लोक साहित्य का ज्ञान परम आवश्यक है। बिना उसके जन की मानवी आवश्यकताओ को ठीक ठीक नही समझा जा सकता। साधारण जन की समस्याए सामाजिक निर्माण से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। यही नही समाज क मूल तत्वो का ऐतिहासिक मूल्याकन लोक साहित्य के अध्ययन बिना असम्भव है। सामाजिक सविधान और रीति रिवाजो की रूपरेखा का स्पष्टीकरण इसी म हो सकता है। समाज का आन्तरिक विधान जिन तीलियो पर बना है उसकी मौलिक व्याख्या लोक साहित्य के पास ही है जिसके द्वारा विविध सभ्यताओ सस्कृतियो और समाज निर्माण के धरातलो का निर्णय हो सकता है।

लोक साहित्य म लोक मानस जितनी शुद्ध अवस्था म प्रतिबिम्बित होता है और सुरक्षित रहता है उतना वह किसी दूसरे माध्यम म नही रहता। इसमे मानस के प्राचीन रूप के अवशेष प्रकट होते ह। फलत लोक साहित्य स जो सामग्री मिलती है वह मानव की उस अवस्था के मानस अवशेष की ह जब वह सभ्यता स बहुत दूर था। लोक साहित्य म उपलब्ध सामग्री म जो अन्तर स्थिति प्रकट होती है उसके आधार पर यह निश्चय हो सकता है कि इसम जातीय तत्व होते हैं। इसी आधार पर विद्वानो न इस साहित्य को जाति विधान का सहायक माना है।

---

1 व्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ० 5

विदेशों में लोक साहित्य का नृशास्त्र समाज शास्त्र, भाषा शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और पुरातत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। यूरोप के प्रत्येक छोटे बड़े राष्ट्र की अपनी लोक साहित्य परिषद् है। अनेक अन्वेषकों और विद्वानों ने इस दिशा में महान् कार्य किया है।[1]

वेद व्यास ने महाभारत में बड़े उदार शब्दों में कहा है —

गुह्य ब्रह्मामिदं ब्रवीमि,
नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरमिहकिंचित।

अर्थ —रहस्य ज्ञान की एक कुंजी तुम्हें बताता हूँ कि इस लोक में मनुष्य से बढ़कर और कुछ नहीं है।

इस सूत्र में लोक जीवन और सभी तरह के ज्ञान का मूल बाँध दिया गया है। भारत जैसे देश में जहाँ लोक साहित्य और लोक जीवन बहुत ही शान्तिपूर्ण सहयोग और निर्विरोध आदान प्रदान के द्वारा फूला फला है लोक साहित्य की अथाह निधि है। कौन सा विश्वास कहाँ से बीज रूप में जन्म लेकर उत्पन्न हुआ है मस्तिष्क और मन का कौन सा भाव वट-वृक्ष की भांति चारों ओर की भूमि को दबा बैठा है—इन सबका विश्लेषण लोक साहित्य में अति महत्वपूर्ण है।

प्रकृति से दूर होते होते मानव में कृत्रिमता आने लगती है। उत्तरोत्तर स्वभाव का ह्रास होता जाता है और फिर वह यन्त्रवत अपना जीवन चलाने लगता है। प्राण शक्ति का ह्रास होने से विश्रांति नहीं रहती और लड़खड़ाता हुआ वह अधोमुख हो जाता है। यही उसके ह्रास का मूल कारण है। ह्रास विकास की उपेक्षा करते हुए भी यदि उसका अन्तर अपनी प्राण शक्ति के रस में डूबा रहे तब कल्याणमयी सुन्दर रागिनी से स्पंदित उसके प्राणों की करुण मधुर वंशी गूंजती रहती है आनन्द उपेक्षित नहीं होता। इसके विपरीत यदि मानव ममभेदिनी व्यापक वृत्तियों को कुचल कर उनका तिरस्कार कर दे केवल बाह्य विकसित साधनों के सहारे उन्नति की दौड़ में वह अपने आपको नष्ट कर देता समस्त कलायें, परिष्कृत भावनायें और हृदय की सुखद हिलोरों रूपी सरसता ही सूख जायगी। हमारा बाह्य जगत जितना रूपात्मक है अन्तर जगत उतना ही गूढ़ है। गूढ़ रहस्यों में जीवन के चिरशाश्वत सत्य उलझे रहते हैं। दार्शनिक भाषा में वे और भी उलझते हैं। ग्रामीणों की भाषा में सरलता से समझे जा सकते हैं। यही लोक साहित्य की विशेषता है। जगत के गूढ़ तथ्य साकार होकर रूप ग्रहण कर इसी साहित्य में स्पष्ट होते हैं। जितने गूढ़ और रंजनकारी भाव लोक साहित्य में प्रस्फुटित हुए हैं उतने साधारण साहित्य में नहीं। जितने विभिन्न रहस्यमय तथ्य यहाँ खुले हैं हृदय का जितना प्रसार और अभिव्यंजन यहाँ हुआ है

1 धरती गाती है (देवेन्द्र सत्यार्थी) पृ० 39

उतना प्रयत्न नहीं। इसका कारण है लोक साहित्य का जन जीवन से गहन सामीप्य तथा लोक मानस की विश्लेषण-अभिव्यंजन शैली। मानव के प्राणों में विद्युत संचार करने वाली शक्ति का प्रस्फुटन जितना लोक साहित्य में हुआ है उतना अन्यत्र नहीं। जितना भावन और चवण साहित्य करा सके वही उत्कृष्ट साहित्य है। हमारी आत्मा को अकृत्रिम पुरातन आनन्द लोक में पहुँचाने की सबसे अधिक शक्ति लोक साहित्य में ही है। अतएव लोक साहित्य का जन-जीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। जनवाणी के पीछे जन जीवन होता है।

वर्तमान भौतिकता प्रधान युग में जन जीवन में उस प्राण शक्ति प्रदायिनी लोकनिधि की उपेक्षा कर मानव बाह्य जगत में सुख साधनों की खोज में रत हो गया है। यही कारण है कि हमारे जीवन से भावात्मक सम्बन्धों का लोप होकर अशान्ति की वृद्धि हो रही है। अंतरजगत की समृद्धि को खोकर मानव कदापि सच्चे सुख और शान्ति का भागी नहीं बन सकता।

लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य

जन जीवन के आचार विचार, रहन-सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश और समाज की संस्कृति की आधारशिला वहाँ का लोक-समाज होता है। डॉ० सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हों। लोक-जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप में पाई जाती है जबकि शिष्ट समाज में इसका परिष्कृत रूप सभ्यता का आवरण धारण करके प्रकट होता है। लोक साहित्य में इस शुद्ध स्वरूप लोक-संस्कृति के दर्शन होते हैं क्योंकि इसमें लोक मानस जितनी शुद्ध अवस्था में प्रतिबिम्बित होता है और सुरक्षित रहता है उतना वह और किसी माध्यम में नहीं रहता। फलतः लोक-साहित्य से जो सामग्री मिलती है वह मानव की आदिम अवस्था के मानस अवशेष की है जब वह सभ्यता के रंग में नहीं रंगा था। उसके प्राचीन काल के यह अवशेष अब तक चले आये हैं और वर्तमान सभ्यता की तह में छिपे पड़े हैं।

इसके विपरीत शिष्ट साहित्य सभ्यता के विकसित हुए मानस वाले प्रबुद्ध मानव के हृदयगत भावों की परिमार्जित भाषा एवं कलात्मक शैली में अभिव्यक्ति है। साहित्य जीवन के सत्य, सौन्दर्य और श्रेष्ठता को रमणीय रूप में प्रस्तुत करता है जब कि लोक साहित्य मानव की इस अनुभूति का लोक भाषा में ही प्रकाशन मात्र है। हिन्दी जगत की श्रेष्ठ कवयित्री महादेवीजी ने कहा है, "कवि का वेदान्त ज्ञान जब अनुभूति से रूप, कल्पना से रंग और भाव जगत से सौन्दर्य पाकर साकार होता है तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहता बुद्धि की तर्क शृंखला नहीं।' लोक साहित्य में बुद्धि की तर्क शृंखला से विहीन प्रकृत जीवन का यह स्पन्दन अपने मूल रूप में चित्रित होता है, जबकि शिष्ट साहित्य में काव्य का सत्य भाव जगत से सौन्दर्य पाकर भी बुद्धि प्रधान मानस की उपज होने के कारण जन जीवन की प्रकृत अभिव्यक्ति से दूर परिमार्जित और परिष्कृत भाषा का आवरण पाकर ही अभिव्यक्त होता है।

साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। साहित्य में जीवन की विविध अवस्थाओं एवं अनुभवों का मनुष्य की भाषा में चित्रण होता है। लोक साहित्य में मानव हृदय का

यथार्थ चित्र प्रस्तुत होता है। जीवन का निश्छल और स्वाभाविक दर्शन लोक साहित्य है। शिष्ट साहित्य में चित्रण प्रायः काल्पनिक एवं अतिरंजित होता है जिसमें विशाल मानव समाज के थोड़े से व्यक्तियों की जीवन झाँकी मिलती है। लोक साहित्य में अधिकांश जन मानस की भावनाओं एवं अस्तित्व का प्रतिनिधित्व रहता है।

लोक समाज और शिष्ट समाज एवं लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति अथवा सभ्यता में जो भेद है वही लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में है। समाज के इन दो विभागों को प्राण और शरीर के रूप में देखा जा सकता है—लोक जीवन है प्राण का स्वरूप और साहित्यिक जीवन है शरीर का स्वरूप। लोक जीवन का आधार होता है श्रद्धा और विश्वास जब कि शिष्ट जीवन बुद्धि पर आधारित है। लोक साहित्य में भी लोक गीत सर्वाधिक रसमय और भावातिरेक से पूर्ण होते हैं—इनकी प्राण प्रतिष्ठा होती है केवल रस और भावों की प्रबलता से परन्तु साहित्यिक कविता में कवि की चेतना रमती है कविता के कलापक्ष में—भाषा छन्द और अलंकार के सम्बन्ध में। गुणों के आधार पर लोक गीतों में साहित्यिक कविता में शब्द विषयक अर्थ विषयक और शैली सम्बन्धी सभी प्रकार के भिन्न दृष्टि मान हैं।

लोक गीत अशिक्षित जन मानस की विभूति होने के कारण उनमें जन जीवन में सम्बन्धित साथ-साथ ग्रामीण शब्दों का प्रयोग होता है। जबकि साहित्यिक कविता पढ़े लिखे शिक्षित विद्वानों की पूँजी है उसमें सुन्दर परिष्कृत एवं उच्च श्रेणी के साहित्यिक भाषा के शब्द प्रयोगों का भी ध्यान रखा जाता है। आदिम काल में बोलने की भाषा ही लिखने की भाषा थी किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में भाषा की उत्पत्ति और विकास में प्रकट है कि सभ्यता के विकास के साथ-साथ शब्द अर्थ और ध्वनि सभी कुछ प्रभावित होते से भाषा के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है, परन्तु लोक गीत और कथाएं आदि मौखिक परम्परा से प्राप्त होते हैं इसलिये लिखित साहित्य में हुए इस परिवर्तन से लोक गीतों एवं लोक साहित्य की अन्य विधाओं के भी शब्द सदैव मुक्त रहे। इसी प्रकार शिष्ट साहित्य की लिखित भाषा में प्रयुक्त हुए शब्दों की ध्वनि और अर्थ में भी अन्य भाषाओं के ध्वनि सम्पर्क में आने एवं लेखकों द्वारा भूल में शब्दों का अशुद्ध रूप में प्रयुक्त करते रहने में परिवर्तन होते रहे। कुछ रूपक और प्रतीक प्रयोगों के कारण तथा कुछ प्रसंगानुकूल एक एक शब्द के अनेक अर्थ होने के कारण शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त शब्द अर्थ और ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तनों से प्रभावित, अत्यन्त परिष्कृत और परिवर्तित रूप वाले बन कर अनेक भावों को व्यंजित करने वाले बनते गये जबकि लोक गीतों के शब्द ध्वनि और अर्थ आदिम मानव की प्रारम्भिक भाषा के अधिक समीप है।

जगत के गूढ़ से गूढ़ तथ्य साकार होकर रूप ग्रहण कर ग्रामीणों की भाषा में सरलता से समझे जा सकते हैं जबकि साहित्यिक भाषा में वे और भी उलझ जाते हैं—यही लोक साहित्य की विशेषता है। जितने गूढ़ और रंजनकारी भाव

लोक साहित्य में प्रस्फुटित हुए हैं उतने शिष्ट साहित्य में नहीं। जितने विभिन्न रहस्यमय तथ्य यहाँ लगे हैं हृदय का जितना प्रसार और अभिव्यंजन जितना भावन और चवरण लोक साहित्य में हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं। हमारी आत्मा का प्रकृत पुरातन आत्मलोक में पहुँचाने की सर्वाधिक शक्ति लोक साहित्य में ही है। भाषा के प्रारम्भिक बनाने वाले दमित नहीं थे—वे जीता जागता स्त्री और पुरुष थे जो शब्द ध्वनि और अर्थ की परवाह न करके अपने भावों की अभिव्यक्ति विभिन्न वाणी के रूप में नाना शब्दों को प्रकट करके और आनन्द मनाते थे।[1]

लोक साहित्य और साहित्यिक कविता में शब्द और अर्थ विषयक मुख्य भेद यह है कि लोक साहित्य में शब्द अर्थ के लिए पैदा होता है और शब्द के रूप के अनुसार ही सीधा अर्थ लिया जाता है परन्तु साहित्यिक कविता में शब्द से अर्थ निकाले जाते हैं, अर्थात् सीधे रूप रूप में शब्द प्रयोग न करके अभिधा लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के बल से एक शब्द से अनेक अर्थ निकालने की चेष्टा कलाकार का गुण माना जाता है। यद्यपि स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त शब्दों में लोक साहित्य में भी कहीं-कहीं लक्षणा व्यंजना शक्तियों के गुण उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु लोक कवि की उद्देश्य सिद्धि निमित्त एक शब्द का एक ही अर्थ अभीष्ट होता है।

लोक साहित्य मूत कल्पनाओं के आधार पर ही चित्रित होता है परन्तु साहित्यिक कविता में अमूर्त कल्पनाओं को विशेष स्थान प्राप्त है। लोक साहित्य में सहज अभिव्यक्ति होने के कारण लोक कलाकार का ध्यान उक्ति वैचित्र्य की ओर जाता ही नहीं। उसे अभिव्यक्ति की प्रेरणा जीवन के स्पन्दनों से मिलती है उसमें उपयोगिता अनुपयोगिता का कोई विचार ही नहीं। इस अभिव्यक्ति से उक्त तत्वों की मर्यादा प्रतिष्ठित होती है और जन मानस रुचि और शैली को अपनी उसी सहज मर्यादा में निश्चित करके प्रकट कर देता है।[2]

विषयगत भेद—शिष्ट साहित्य में रचना का विषय उसके उद्देश्य से निर्धारित होता है। दार्शनिक, सामाजिक आध्यात्मिक सांस्कृतिक विचार धारा का जन समूह तक पहुँचाने हेतु साहित्य की रचना होती है। अतएव अपनी रुच्यनुकूल क्षेत्र में विचारात्मक करके साहित्यकार जनहित राष्ट्रहित अथवा स्वार्थलाभ की दृष्टि

---

1 द फर्स्ट फ्रेमस ऑफ स्पीच वर नॉट दमिटल बोइंग्स, बट लिवली मैन एण्ड वीमन विर्वालिंग एण्ड सिंगिंग मैरिली और फोर द मीयर प्लजर ऑफ प्राड्यूसिंग साउन्ड्स विद और विदाउट मीनिंग्स एज एन इन्स्ट्रूमैंट ऑफ एक्सप्रेसिंग थॉट्स।

लावज एण्ड चीर्यटिटा—अरवन

2 ब्रज लोकसाहित्य-पृष्ठ 543

—डॉ० सत्येन्द्र

में साहित्य की रचना करता है और तदनुसार विषय चुनता है अथवा चिन्तन के क्षणों में अथवा जीवन व्यवहार में आकस्मिक रूप से स्फुरित विचार को ही विषय बना कर कविता, कहानी, लेख, नाटक आदि लिखने बैठ जाता है। इस प्रकार उसके विषय का चुनाव सोद्देश्य होता है। परन्तु लोक साहित्य की रचना का कोई उद्देश्य नहीं होता न तो लोक साहित्य की रचना किसी को प्रसन्न करने के लिये होती है[1] न ही लोक कलाकार के व्यक्तित्व को उभारने हेतु यह रचना होती है। लोक कलाकार तो तुलसीदास के स्वान्तः सुखाय की भाँति आत्म-तुष्टि के लिये भावाभिव्यक्ति करता है। वह तो व्यक्तित्व रहित एवं आत्म चेतना विहीन प्राणी है—वह अपनी चेतना और अपनी भावनाओं का जनता की भावना से तादात्म्य करता है—सबकी भावना उसकी भावना है व्यक्ति नहीं उसकी आवाज जन की आवाज है।[2] फिर विषय उसका अपना कैसे हो सकता है। लोक कवि का विषय साहित्यकार से बिलकुल विपरीत उद्देश्य रहित और अपना नहीं जनता का है। परन्तु कोई निर्धारित विषय न होते हुए भी लोक साहित्य की विधा लोक गीतों में तो सारे ही विषय आ जाते हैं—लोक गीतों का अज्ञात कवि निरुद्देश्य कविता में स्वाभाविक जीवन में घटने वाली घटना अथवा जन मानस में उठने वाले भावों से प्रभावित होकर आलापने लगता है—व्रत घर परिवार उत्सव त्योहार धर्म प्रकृति, जादू-टोना, पशु पक्षी भाग्यवाद वस्त्राभूषण राजनीति इतिहास आदि कोई विषय नहीं बचा जिस पर लोक गीत न बने हो। लोक गीतों के विषयों की कोई सीमा ही नहीं—जबकि शिष्ट साहित्य के विषय सोद्देश्य एवं व्यक्तिगत होने के कारण सीमित संख्या में ही मिलेंगे। लोककवि का विषय-वैविध्य अत्यन्त विशाल और विस्तृत है।

शैलीगत भेद—लोक साहित्य के रचयिता अथवा उत्पत्ति काल का पता नहीं रहता—परम्परा से प्राप्त इस अभिव्यक्ति के स्रष्टा का कोई महत्त्व नहीं अज्ञात कवि की इस रचना की कोई शैली निर्धारित नहीं की जा सकती। पाश्चात्य विद्वान जेम्स ग्रिम ने एक सिद्धान्त निकाला है कि लोक गीत जन समूह की रचना होने के कारण इसे कम्यूनल कम्पोजीशन माना जाना चाहिये। साहित्यिक कविता की भाँति लोक गीत एक व्यक्ति की रचना नहीं—उत्पत्ति काल एवं रचयिता के अभाव में लोक गीतों की शैली निर्धारित करना सम्भव नहीं।

शिष्ट साहित्य में प्रत्येक साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप उसकी रचनाओं में दृष्टव्य होती है परन्तु लोक साहित्य के स्रष्टा का पता नहीं होने के कारण निर्माता के व्यक्तित्व की कोई छाप नहीं होती। उसकी शैली सार्वजनिक क्षेत्र में ढली हुई

---

1 जैसे रीतिकाल में कला विलासी राजाओं को प्रसन्न करने के लिये राज दरबार में कवि लोग रहते थे।

2 प्रो० किटरेज—इन्ट्रोडक्शन टु इंगलिश एण्ड स्कोटिश बैलड्स।

जन पद की एक सरल, स्वाभाविक और स्वच्छन्द शैली है, जिसमें न काव्य के नियमों का प्रतिपादन है और न शास्त्रीय लक्षणों का बन्धन।[1]

एक बात लोक गीत और लोक कथाओं आदि के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इनकी कोई निश्चित शैली होनी भी तो वह एक रूप रह नहीं सकती थी। मौखिक परम्परा से चले आते रहने से इनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। कुछ शब्द छूट जाते हैं कुछ बदल जाते हैं कुछ नये जुड़ जाते हैं—तदनुसार स्वरूप में उच्चारण और ध्वनि में भी अन्तर पड़ता रहने से शैली बदलती रहती है।

पं० राम नरेश त्रिपाठी ने इस प्रकार लोक गीत और साहित्यिक कविता का भेद स्पष्ट किया है "सिद्ध कवियों की कविता उस क्यारी की भाँति है जिसके पौधे कैंची से कतर कर ठीक हाले हैं और जो खास तरह की रुचि से प्रेरित हो कर सजाई जाती है पर ग्राम गीत प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में पहाड़ों पर नदी तटों पर स्वतन्त्र रूप में विकसित हुआ है—वह अकृत्रिम है। उसकी समता बंगलों में लगा हुआ कदी फूल नहीं कर सकता।"

अनेक प्रकार से लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में भेद होते हुए भी दोनों में आदान प्रदान रहता है। लौकिक साहित्य ने वैदिक काल से अब तक साहित्य को प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य लौकिक साहित्य का अत्यन्त ऋणी है क्योंकि हिन्दी भाषा प्रारम्भ से लौकिक भाषा रही है।

साहित्यिक कविता की भाँति लोक साहित्य भी जातीय साहित्य से सामग्री ग्रहण करता रहता है। साहित्यिक गीतों का उद्भव भी लोक गीतों से ही हुआ है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तो यहाँ तक कहा है कि गोस्वामी तुलसीदास अपने विनय के पदों में भी लोक का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में आदान प्रदान होता ही रहता है।

कई लोक विधाएँ शास्त्रीय कला विधाओं की ओर अग्रसर हैं। धार्मिक विश्वास एवं मान्यताओं की दीवारें जब टूटती है तो उन पर आधारित कला विधाएँ भी कमजोर पड़ने लगती हैं।

राजस्थान के लोक कला सम्राट डॉ० देवी लाल सामर के अनुसार कथकलि नृत्य नाट्य आज शास्त्रीय बन गया है।

लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य में कम दूरी होने पर वे एक दूसरे से प्रेरणा लेते हैं।

---

[1] 'राजस्थानी लोक गीत'—पृष्ठ 12 (शोध ग्रन्थ)

लोक साहित्य की विधाएँ

लाक साहित्य जीवन दायिनी दव गगा के समान है इसका क्षेत्र बडा विशद है। अत्यन्त आदिम जगली जातिया की अभिव्यक्तिया स लेकर शिष्ट साहित्य की सीमाआ तक पहुचने वाली सारी अभिव्यक्ति लाक साहित्य के अन्तगत आती है। अपनी स्वाभाविकता और सरसता के कारण लोक साहित्य सर्वाधिक लाकप्रिय बना हुआ है और वह लाक जीवन का मुख्य अग माना जाता है। स्वाभाविकता से पूर्ण आदि मानव की अभिव्यक्ति रूपी लोक साहित्य व्यक्ति विशेष की रचना न होकर जन मानस के सामूहिक भावा की व्यजना है। लाक साहित्य के स्रष्टा के भाव समाज के भावा से एकाकार होकर प्रकट होते है।

डॉ० श्याम परमार न मालवी लाक साहित्य म इस लोकवाणी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है व्यक्तित्व से रहित समान रूप म समाज की आत्मा का व्यक्त करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियाँ लाक साहित्य की श्रेणी म आती हैं।[1] परम्पराओ की दृष्टि से लाक साहित्य के महत्त्व पर बल देते हुए डॉ० सत्येन्द्र न लाक साहित्य को आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तिया का कोष कहा है।[2]

लोक साहित्य का नृशास्त्र समाज शास्त्र भाषा शास्त्र भौगोलिक ज्ञान ऐतिहासिक खोज और सास्कृतिक अध्ययन—सभी दृष्टिया स परम महत्त्व है। साधारण जन का समझने के लिये लोक साहित्य का ज्ञान अत्यावश्यक है। जन साधारण की समस्याए सामाजिक निर्माण स घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है—और समाज के मूल तत्त्वा का ऐतिहासिक मूल्याकन लाक साहित्य के अध्ययन स ही भली प्रकार हो सकता है।

समाज का आतरिक विधान जिन तीलिया पर बना है उसकी मौलिक व्याख्या लाक साहित्य म ही उपलब्ध है जिसके द्वारा विविध सभ्यताआ स कृतिया और समाज निर्माण के धरातला का निर्णय हो सकता है।

लाक जीवन एक समष्टि जीवन है—उसके साथ धर्म विश्वास और आस्थाएँ जुडी हुई है। लाक जीवन की आस्थाआ विश्वासा और भाव लहरिया की अभिव्यक्ति

---

1 भारतीय लाक साहित्य पृ० 22

2 ब्रज लाक साहित्य का अध्ययन पृ० 5

एव लोक साहित्य जन जीवन का साहित्य है उसे कोई भी अवरुद्ध नहीं कर सकता। इस लोक साहित्य रूप जनवाणी का प्रस्फुटन कई प्रकार से होता है। इस जन साहित्य की सरिता में कई प्रकार की धाराएँ प्रवाहित होती हैं—प्रत्येक का अपना अलग-अलग महत्त्व है। जनवाणी का कोई भी अंश रसहीन नहीं होता, क्योंकि उसके पीछे जन जीवन रहता है। लोक साहित्य की सामग्री को लोक कलाकार विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करता है जिनमें मुख्य रूप निम्नलिखित हैं —

1 लोक कथाएँ
2 लोक गीत
3 लोक नाट्य
4 लोकोक्ति साहित्य

प्रहेलिका कहावतें और प्रवाद आदि इन सबमें लोक गीत सर्वाधिक प्रचलित, लोकप्रिय और विशिष्ट माने जाते हैं। एक पाश्चात्य विद्वान ने कहा है— द आर मच नीयरर टु लाइफ दन आर फोक टेल्स।'[1]

1 लोक कथाएँ—हमारे जातीय जीवन में लोक कथाओं का बड़ा महत्त्व है। बड़ी बड़ी स्त्रियाँ शताब्दियों से बच्चों और प्रौढ़ों को ये कथाएँ सुनाती आई हैं—इन कथाओं में अनेक प्रतिभाओं का प्रकाश निहित रहता है क्योंकि ये पीढ़ी दर पीढ़ी कण्ठ से कण्ठ में हस्तांतरित होती आती हैं। कहने वाले की आत्मानुभूति के प्रभाव से इन कथाओं में निखार आता रहता है उनके अपने भाव सम्मिलित हो जाते हैं और उत्तरोत्तर नई नई कल्पनाएं एवं भावनाएँ कथाओं में सन्निहित हो जाती हैं। फलस्वरूप कथा का कलेवर प्रायः बड़ा जाता है। शब्दों और मुहावरों में भी निखार आ जाता है। इस प्रकार निरन्तर संचरण से कथाओं में प्रौढ़ता आती रहती है और व्यक्तिगत दायरे में प्रसारित हुई कथाएँ सामाजिक धरातल पर उतर कर लोक-कथाओं का रूप धारण कर लेती हैं। उनका दायरा बढ़ जाता है।

इन लोक-कथाओं में मनोरंजन के साथ जीवन के लिए अनेक कल्याणकारी निर्देश निहित रहते हैं— बालकों के चरित्र निर्माण हेतु इन दादी-नानी द्वारा सुनाई कहानियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रौढ़जनों का भी विश्वास और आस्था के बल पर इन कथाओं में अनेक प्रेरक तत्त्व मिलते हैं। विशेषकर स्त्रियाँ विशिष्ट पर्वों, त्यौहारों और व्रतों के अवसर पर इन परम्परागत कथाओं को बड़ी-बूढ़ियों से सुनना अपना पावन और नैतिक कर्त्तव्य मानती हैं। तीज, करवा चौथ, होई अष्टमी सकट चौथ, शीतला माता दशा माता और पूर्णिमा व्रत आदि की कथाएँ सौभाग्यवती महिलाओं के लिए मांगलिक भावनाओं की प्रेरक बनी आराधना का अंग बन जाती हैं। कार्तिक

---

1 द ट्राइबल पोएट्री ऑफ मिडल इण्डिया — वेरियर एल्विन
2 रसायन—मई 70 में प्रकाशित लेख डॉ० महेन्द्र भानावत

मास मे तुलसी व्रत की कथाएँ भी भारतीय धरा म यत्र तत्र सवत्र नही सुना जाती है।

आधुनिक युग की शिक्षित नारिया म प्राय इन धार्मिक अनुष्ठाना के प्रति आस्था नही रही फिर भी लाक-कथाओ के वृत्ता स उनके मन म अमगल की आशका उन्हें व्रत व अनुष्ठाना को मानन हेतु विवश करती है। उदाहरणाथ उत्तर प्रदेश म करवा चौथ के व्रत की कथा प्रचलित है—प्रत्यक सौभाग्यवती स्त्री कितनी ही छाटी अवस्था की हा करवा चौथ को चन्द्र दशन के बाद कहानी सुनकर, बायना मनस कर व्रत पारण करती हैं। कथा ह—एक राजा के 7 लडके और एक लडकी थी। लडकी के विवाह के पश्चात् पहली करवा चौथ आई—लाडली राजकुमारी को भूख रहने का अभ्यास नहा था—दोपहर के बाद हा भूख स कुम्हलान लगी। उसके भाइया का मन उस देख-देख कर व्याकुल होन लगा—व सब चन्द्र दशन का उपाय सोचन लगे—कोई घास फूस लाया, काई चलनी और कोई दियासलाई। सबन मिलकर अग्नि प्रज्वलित करके चलनी के भीतर म चन्द्रमा दिखा दिया—बहिन उस बनावटी चन्द्रमा का अक देकर भाजन करन बठी। फिर क्या हाता है—पहले ग्रास म बाल निकला दूसरे म मक्खी—तीसरा ग्रास तोडत ही नाई आ पुकारा कि राजकुमारी के पति का स्वगवास हा गया।"[1] वह तुरन्त भाजन छोड कर पति गह के लिये रवाना हो गई। वहाँ जाकर पति के शव को भस्म नहीं होने देकर सुरक्षित रखवा दिया।

दूसरे वष करवा चौथ का त्योहार आया—सभी भावज बायना ल ले कर आई बाली— भइयो प्यारी बायना ल अध बिचलानी बायना ले आदि आदि। ननद उत्तर दती ह मैं तुम्हारा बायना तब लूंगी जब तुम मेरा सुहाग वापिस दिलाओगी' इस पर प्रत्यक भावज यह कहकर पीछा छुटाकर चली गई कि मुझे छाड दा दूसरी जिनाएगी। इस प्रकार छ भावजें चली गई—सबसे छाटी भावज का कसकर पल्ला पकड लिया जाने नहीं दिया—वह बाली कि "मैं कहाँ स हाड लाऊँ कहाँ स मास लाऊ—कम तरा सुहाग बहाड सकती हूँ"। इस पर ननद उस पति के सुरक्षित शव क पास ल गई और भावज ने अपनी कनकी उँगली मुँह म निचाड दी। ननद का पति हर हर' करता उठ बठा। तब स राजा ने नगर म ढढारा पिटवा दिया कि कोइ विवाहित स्त्री करवा चौथ का बिना व्रत न रहे—पाँच वष की हा या पचास वष की।

इस प्रकार की कथाओ का सुनकर प्रत्यक सौभाग्यवती स्त्री इन व्रता को करना अपना धम मानन लगती है।

2 **लोक गीत** लाक साहित्य की दूसरी विधा है लाक-गीत—य जन मानस की भाव लहरियाँ सम्पूण जीवन म व्याप्त है। यो तो समस्त लाक साहित्य प्रेरणा दायक और मानस म नवीन आलाक का सजक होता है परन्तु लाक साहित्य की अन्य

---

1 प्राचीनकाल म यह प्रथा थी कि मृत्यु का समाचार नाई के द्वारा भेजा जाता था।

विधाओं से भी अधिक सबलतर प्रियता का वरदान लोक-गीतों को मिला है। क्योंकि उनमें शब्द के साथ संगीत भी होता है। शब्द और स्वर से इन्हें जीवन रस प्राप्त होता है। जिस प्रकार गीतों के रूप में हुई भावाभिव्यक्ति हृदय को वशीभूत करने की विशेष सामर्थ्य रखती है उसी प्रकार भावावेश से अत्यधिक विभोर हुआ हृदय गीत के रूप में ही अधिक फूटता है। यही कारण है कि सुख दुःख जन्म विवाह संस्कार मेले त्यौहार, देव पूजन उत्सव मनाना आदि जन जीवन में कोई अवसर ऐसा नहीं जिस पर लोकवाणी गीतों के रूप में प्रस्फुटित न हुई हो। कई जगह मृत्यु तक के अवसर पर स्त्रियाँ प्रायः गा गा कर रुदन करती हैं। जब जब मानव हृदय प्रबल भावावेग से परिप्लावित होकर अत्यधिक हर्ष अथवा शोक अनुभव करता है तब तब उसके मानस में गीतों की स्वर लहरियाँ फूट पड़ती हैं। तदनिमित्त उसे स्वर राग, लय और छन्द आदि के शास्त्रीय नियमों का ज्ञान प्राप्त नहीं करना पड़ता। जन मानस के स्वतः स्फुरित रस के स्रोत होने के कारण लोक गीत सर्वाधिक जनप्रिय बन हुए हैं। लोक कथा और कहावतों आदि की अपेक्षा लोक गीतों में कहीं अधिक भावोत्कर्ष और रंजन शक्ति है। डॉ० वासुदेवशरण ने लिखा है शिष्टता से दूर पड़े हुए मानव के हृदय से स्वर लहरियाँ स्वयं ही छलछलाने लगती हैं, जिसका आनन्द शिष्ट कहलाने वाला मानव भी लेता है।[1]

कंठ दर कंठ आये हुए मौखिक परम्परा से प्राप्त इन गीतों द्वारा विभिन्न स्थानों और विभिन्न कालों की बोलियों सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति तथा ऐतिहासिक और राजनैतिक पहलुओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक विषय का अध्ययन करते समय लोक गीतों से हमें मार्ग दर्शन मिलता है। अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने लोक गीतों के महत्व पर अनेक रूपों में प्रकाश डाला है। महात्मा गांधी ने लोक गीतों को संस्कृति के पहरेदार कहा है। लाला लाजपतराय ने इन्हें हमारे विकास के इतिहास की अमूल्य निधि" बताया है। श्री कुंजबिहारीलाल ने लोक गीतों को बुद्धि ज्ञान धर्म और दर्शन का शास्त्र' ही मान लिया है। एन्साइक्लोपेडिया ऑफ ब्रिटानिका के लेखक ने लोक गीतों को 'मनुष्य की उत्पत्ति विकास और रीति रिवाजों का विधा बताया है।

ज्ञान के भण्डार हमारे ये लोक गीत राष्ट्रीय सतुलन बनाये रखने और विश्व बन्धुत्व की भावना स्थापित करने के भी परम साधन हैं। लोक-गीतों में आत्म तत्व की प्रधानता होने के कारण इनमें आत्म विकास की पूर्ण सामर्थ्य है आत्मा का विकास ही वास्तव में विश्व मानव में एकता की भावनाएँ विकसित करने का प्रेरक तत्व है। इसलिये लोक गीतों में व्यक्तिगत भावों की व्यंजना होती है।

आत्मा मूलक तत्व के अभाव में मानवीय भावनाओं का विकास सम्भव नहीं और उसके बिना विश्व बन्धुत्व की स्थापना कल्पनातीत होगी। विज्ञान के द्वारा

---

1 मातृभूमि–धीरे बहो गंगा।

हुई भौतिक समृद्धि विश्व बन्धुत्व की स्थापना में कदापि सहायक नहीं हो सकती। आत्मभाव के प्रसार से ही विश्व प्रेम स्थापित हो सकता है और हमारे ये लोक गीत इस आत्म भाव के स्रोत हैं जो मानव हृदय समान होने के कारण विश्व भर में व्याप्त हैं।

लोक-गीत विशेषकर नारी के हृदय का गान है। संयोग में वियोग में शृंगार-रस की गीत लहरियां प्रवाहित होती हैं तो तीज और गौर के त्यौहारों पर गौरी पूजन तथा पीयर सासरे लहरिया और चूँदरी के रस भीने गीतों से वातावरण गुंजारता है। पुत्र जन्म एवं विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों का तो पार छोर नहीं। माताओं में जब वात्सल्य का वेग आलोडित होने लगता है तो वे यशोदा कौशल्या की भांति स्वतः गाने लगती हैं। जब हमारे घर के आँगनों में सोहर आदि लोक गीतों की सृष्टि होती है तो हमारा मन प्राण पुलकित हो उमगने लगता है।

कुछ अवसरों पर पुरुष और बालक भी लोक गीत गाते हैं परन्तु स्त्रियों की तुलना में उनके प्रकार और संख्या अति न्यून है। देवी देवताओं के गीत—हरजस भजन आदि व्यवसाय सम्बन्धी लोक गीत और श्रम परिहार हेतु गाये जाने वाले मुख्यतः पुरुषों के लोक गीत होते हैं। गेंद खेलन के गुडियों के गौरी पूजन और सांझी आदि में सम्बन्धित लोक गीत बालक बालिकाओं के होते हैं।

3 **लोक-नाट्य**—मानव स्वभावतः मनोरंजन प्रिय प्राणी है। मन के उछाह को गीत और नृत्य के रूप में प्रकट करता तो उसके लिए स्वाभाविक है ही जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और पौराणिक कथा कहानियों को लेकर प्रायः अभिनयात्मक रूप में भी अभिव्यक्त करने की स्वतः प्रेरित कला जन जीवन में पाई जाती है। भारतीय लोक नृत्य एवं लोक-नाट्य पर्व त्यौहार और देवी देवता मनौती विश्वास तथा मनौतियों से जुड़े होते हैं। रामायण महाभारत तथा अन्य धर्म ग्रन्थों की कथाओं पर अनेक लोक-नाट्य और लोक नृत्य प्रचलित हैं। प्राचीनकाल से भारत के विभिन्न प्रदेशों में मोहल्ले मोहल्ले में राम मंडलियां नौटंकी की चोट पर लोक-नाट्य प्रदर्शन करती आ रही हैं। चित्र-पट के प्रचार से इन लोक-नाट्यों का प्रचलन कम-क्या नगण्य सा हो चला है परन्तु राजस्थान में लोक-नाट्य और लोक-नृत्यों का महत्व अब भी इतना प्रकाश में आ रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर उनका अभिनय भारत की लोक-नाट्य कला को ख्याति प्रदान कर रहा है।

राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में विशेषकर भील मीणा और बंजारा आदि निवासियों के कारण यह प्रदेश सामुदायिक मनोरंजना में बड़ा सम्पन्न है। डा० देवीलाल सामर ने राजस्थान की इस कला के विकास में स्तुत्य उपलब्धियाँ की हैं।

होली आदि के अवसरों पर लोक-नाट्यों की विशेष धूम मचती है।

4 **लोकोक्ति साहित्य** का अध्ययन जन संस्कृति तथा जन मानस को समझने के लिये परम सहायक है। लोकोक्तियों के माध्यम से सार्वभौम मानस की अवस्थिति

का पान होता है। डॉ० सत्येन्द्र ने अंग्रेजी, गलिक, स्पेन, फारसी, जर्मनी, तुर्की, तदिल और सोवियत आदि भाषाओं की कहावतों के उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि भारत में हिन्दी, संस्कृत भाषाओं में प्रचलित कहावतों जैसा भाव लिये हुए कहावतें विश्व भर की भाषाओं में पाई जाती हैं।[1]

कहावतें भाषा के जीवित और स्पन्दित तन्तु हैं। परन्तु उनमें ऐतिहासिक संकेत वाली सामग्री भी होती है—उदाहरणार्थ 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगुआ तेली' कहावत ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित है। कहावतों में जातिगत तत्त्व भी मिलते हैं जैसे 'बामन कुत्ता नाऊ जाति देखत घुर्राऊ''। कहावतों व लोकोक्तियों में ज्ञान विज्ञान की बातें भी रहती हैं। इनके अध्ययन से धार्मिक और पौराणिक सूत्र भी स्पष्ट हो जाते हैं।

डॉ० सत्येन्द्र के कथनानुसार कहावतों में लोकोक्तियों में चार दृष्टियाँ होती हैं—प्रथ पायल, शिक्षण, आलोचना और सूचन विषयक[2] जिनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं —

1 गाय न बाछी नींद आव आछी

2 टका ब्याज वैरागीय खाव, राण खाय होमी (नीति विषयक)

3 गुनि घटि गय गाजर खाए तें बल बढ गया बथाए ते (ज्ञान विषयक)

कहावतों में ऋतु, सन्त, व्यवसाय और व्यवहार आदि के लिए ज्ञान सामग्री भी रहती है।

लोकोक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं—गम्भीर कथन सम्बन्धी, लोक विशिष्ट से सम्बन्धित और वक्रता लिए हुए—जैसे 'नाच न जानूँ आँगन टेढ़ा।'

डॉ० कन्हैयालाल सहल ने लोकोक्तियों और कहावतों पर शोध ग्रन्थ लिखकर उनके प्रत्येक पहलू को प्रकाशित किया है।

लोक साहित्य की ये सभी विधाएँ जन मानस की स्वतः प्रेरित प्रसूत वाणी है जो सभी देश और जनपदों के लोक जीवन में व्याप्त है। इस साहित्य की प्रत्येक विधा का मानव हित में अलग अलग महत्त्व है—अतएव इन सभी का गहन अध्ययन जन जीवन में मंगल की स्थापना हेतु उपादेय है। लोक-साहित्य में भाव परिपाक की अपेक्षा हृदय की वृत्ति के उद्गारों की प्रधानता होने के कारण मानवीय भावनाओं के विकास और पारस्परिक सम्बन्धों को मधुर बनाने में इसका विशेष महत्त्व है।

---

1 दक्षिण लोक वार्ता की पसडण्डिया—डॉ० सत्येन्द्र
2 " " "

लोक सस्कृति

जीवन के दो पक्ष है—भौतिक (आवश्यकता पूर्ति) तथा भावात्मक एव संस्कार पक्ष जो हमे भौतिक सुखो से ऊपर उठा कर विश्वासो और आनन्द का अनुभव कराता है। यह सास्कारिक पक्ष परम्परागत आस्थाओ और विश्वासो से बनता है वह धरोहर है जो बाल्यकाल से ही पारिवारिक एव सामाजिक सस्कारो के रूप मे भावनाओ की नाना परतो से लिपट कर अचेतन मन की गहराइयो मे रूढ हो जाती है। आस्था और विश्वासो से परिप्लावित अचेतन मन साधारणत किन्ही बाह्य परिस्थितियो से प्रभावित नही होता। इन आस्थाओ का रूपान्तर तो सम्भव है परन्तु इनका जीवन की मूल धारा से विच्छेद सम्भव नही।

वस्तुत लोक सस्कृति ही वास्तविक सस्कृति है अथवा यो कह सकते हैं कि शास्त्रीय संस्कृति लोक सस्कृति है। लोक सस्कृति से एक ऐसे अध्यात्म सौंदय का बोध होता है जो भारतीय संस्कृति के सभी तत्त्वो को आत्मसात करके एक अनुपम सार्वभौमिक स्वरूप प्रस्तुत करती है। वेद पुराण और उपनिषदो मे वर्णित व्यवस्था हो या सामाजिक आचरण व्यवहार की विभिन्न पद्धतियां—वास्तव मे सब लोक सस्कृति के ही अलग अलग रूप है। सामयिक परिस्थितियो की भिन्नता से उन के विभिन्न रूप बन गये है परन्तु उनके मूल मे एक ही संस्कृति है जिसे लोक सस्कृति कहते हैं। कुछ तत्त्वो मे भेद होने पर भी लोक सस्कृति मे सर्वत्र आभ्यन्तरिक एकता व्याप्त है। वृक्ष की अनेक शाखाओ की भाति और समुद्र मे गिरने वाली असख्य नदियो की भाति एक ही संस्कृति विभिन्न रूप धारण किये आधुनिक सस्कृति पुरातन सस्कृति आदि नामो मे अभिहित हो गई। यथार्थ मे लोक कलाओ के उन्नायक डा० देवी लाल सामर के शब्दो मे पूर्ण रूपेण वसुधा की सस्कृति लोक सस्कृति ही है। किसी भी राष्ट्र की साहित्यगत समाजगत कला गत, धर्मगत एव विधान गत आचरण प्रक्रिया मे एक स्वाभाविक मानवीय साम्य मिलता है—यही साम्य लोक सस्कृति का मूल तत्त्व है।

लोक सस्कृति मे यही मूल तत्त्व है जो सभी भारतीय भावनाओ को अपने मे आत्मसात कर अलौकिक सार्वभौम प्रार्थना का अकिन किये है। लोक सस्कृति का यही सार्वभौमिक स्वरूप इस वैदिक प्रार्थना मे अकित है—

य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटव कर्तेति नैयायिका,

अहर्नियम त्यय जन शासन रता कर्मेति मोमासवा,
यो सोय विदधात वाछित फल अलोक्य नायोहरि ॥

आधुनिक संस्कृति, पुरातन संस्कृति नामा मे अभिहित विभाजन माने जाने पर भी भारतीय संस्कृति का मूल स्वर समाज ही है। भूत और भविष्य की सारी प्रक्रियाएँ मूलत एक ही लोक स्वरूप को अभिव्यक्त करती हैं और सभी आगत उदभावनाएँ विगत की मूल अभीप्साओं तथा मनोभावनाओं के स्वरों से प्रतिबद्ध हैं। वस्तुत मानव मात्र के अन्तर हृदगत भावों, अनुभूतियों और स्फुरणाओं पर देश और काल की परिस्थितियों का कोई प्रभाव नही पडता, अन्तर आता है मानव के आचार व्यवहार और बाह्य वेश भूषा तथा खान पान मे जिनमे समय के फेर से देश और काल के अनुरूप परिवर्तन व हेर फेर होना रहता है। परन्तु ये सब सभ्यता के आवरण मात्र हैं—मानव हृदय की भावना से सम्बद्ध संस्कृति के तत्त्व सदव परम्परा से बद्ध रहते हैं।

डा० देवीलाल सामर ने भारतीय लोक संस्कृति को सार्वभौम लोक सूत्र के रूप मे स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है जिसके फलस्वरूप भारतीय लोक संस्कृति के कई नये और मनोज्ञ आयाम प्रकाश मे आ रहे हैं।

डॉ० सत्येन्द्र के शब्दों मे राजस्थान लोक साहित्य और लोक संस्कृति का परम निधान है। यहाँ अनेक ऐसे विवरण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि राजस्थान की भूमि मे वे तत्त्व विद्यमान हैं जिनके दर्शन मे लोक मानस मे स्फूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं।[1] कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज मे अनेक ऐसे वर्णन दिये है जिनमे यहाँ की लोक संस्कृति का सम्यक परिचय मिलता है। त्यौहार मेले देवी देवताओं की मान्यता आदि मे अनेकों चित्रण मनमोहक संस्कृति की अभिव्यक्ति करते हैं।

राजस्थान के खान पान वेश भूषा आदि मे भी लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं—तीज त्यौहारों के अवसर पर सातू चूरमा राबडी आदि विशिष्ट भोज्य पदार्थ यहाँ की विशिष्ट संस्कृति के परिचायक है। जमाई या ननदोई को भोजन कराते समय भात और घी चीनी परोसना उनका विशिष्ट आतिथ्य एव मांगलिक शकुन माना जाता है। इसी प्रकार सौभाग्यवती स्त्रियों एव कुँवारी कन्याओं की केसर कसुम्बल पोशाकें गोटे और सलमे सितारे से झिलमिलाती हुई राजस्थानी महिला की मांगलिक भावनाओं की प्रतीक हैं—फिर विवाह और पुत्र जन्म आदि के अवसरों पर चून्डी और पीलिया जो पीहर से आता है वह तो संस्कृति के मुँह बोलते प्रतीक हैं—इसी प्रकार तीज के त्यौहार पर स्त्रियाँ रंग बिरंगा लहरिया ओढ़ती हैं जो उनके भावुक हृदय के कला प्रेम का द्योतक है। पुरुषों की पगडी और दुशाला भी इसी प्रकार की विशिष्ट संस्कृति का परिचायक है।

---

1 लोकवार्ता की पगडण्डियाँ

राजस्थान के लोक गीतों में यहाँ के पारिवारिक प्रेम के सजीव चित्र मिलते हैं जो लोक संस्कृति के परिचायक हैं। सम्मिलित परिवार में इतनी सुव्यवस्था और पारिवारिकजनों के पारस्परिक सम्बन्धों का माधुर्य यहाँ की लोक संस्कृति का द्योतक है। इस प्रकार के गीतों के कुछ नमूने दिये जाते हैं—

होली के अवसर पर गाया जाने वाला पारिवारिक सुख के चित्रण का एक प्रतिनिधि गीत "सहेल्यां आम्बो मोरियो" अत्यंत लोकप्रिय है।

> म्हे तो बारयां, ए बहूजी, थारा बोल म,
> लड़ायो म्हारो स परवार, सहेल्यां ए आंबो मोरियो,
> म्हे तो थारयां जी सासू जी थारी कूख न,
> थे तो जाया अरजुन भीम, सहेल्यां आंबो मोरियो, ॥

यह खिला हुआ आम का पेड़ और रस पूर्ण फलों की कामना से परिपूर्ण सुखी कुटुम्ब का प्रतीक है।

सम्मिलित परिवार में पारस्परिक स्नेह की अभिव्यक्ति के एेसे अनेक लोक गीत हैं जिनमें सांस्कृतिक भावों की व्यंजना होती है।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल, बिहार आदि के लोक गीतों में भी लोक संस्कृति के चित्र मिलते हैं जिन से पारस्परिक स्नेह, मंगल कामना और आस्था एवं धार्मिक विश्वासों से पूर्ण सांस्कृतिक भावना की अभिव्यक्ति होती है।

भारतीय संस्कृति में पितृ पूजा और अतिथि सत्कार का महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न प्रदेशों में व्याप्त लोक गीतों और लोक कथाओं से यहाँ के धर्म प्रिय जनपदों की प्राचीन संस्कृति का भली प्रकार ज्ञान होता है।

उत्तर भारत में और गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में भी विवाह आदि मांगलिक अवसरों तथा तीज त्यौहारों पर घरों में अल्पना तथा दीवारों पर थापे चित्रित किये जाते हैं और बालक बालिकाएं साँझी झाँझी और टेसू के गीत गाते हैं, दीवारों पर साँझी चित्रित करते है—इस सारी चित्रकारी को माडना कहते हैं—ये सभी आचार विचार मूलक मांडने मानव मन की मांगलिक भावनाओं की अभिव्यक्ति और लोक कला संस्कृति के सूचक हैं।

लोक संस्कृति की प्रवृत्ति और प्रकृति सदा से नारी रूपा रही है। नारी ने जहाँ अपने मनोगत उल्लास दुख सुख के उद्गारों को भाव लहरियों लोक गीतों की गंगा में प्रवाहित की है वहाँ मेंहदी, मांडना, अल्पना, थापे और साँझी चित्रित कर कर के लोक कलाओं की प्रस्थापना की है—वस्त्राभूषणों की साज सज्जा ने भी नारी के कला प्रेम को अभिव्यक्त किया है। त्यौहार उत्सव आदि मनाने की पद्धतियाँ नारी के ही मनोभावों की प्रतीक हैं। नारी मन ने लोक संस्कृति की इस थाती को गीतों के रूप में प्रवाहित करके भारतीय संस्कृति को सजीवनी शक्ति प्रदान की है।

अनन्त काल से नारी का कठ गीतों का माधुर्य देता आ रहा है। त्यौहारों व व्रतोत्सवों में, नत्य गीतों में विवाह आदि संस्कारों में जन्म से मरण तक हजारों प्रासंगिक संस्कारों पर गाये जाने वाले नारी के गीत एवं कलात्मक मांगलिक रूप हमारी लोक संस्कृति के परिचायक हैं।

कलात्मक वस्त्राभूषणों, गीतों नत्यों तथा नाना प्रकार की लोक कला और लोक सांस्कृति के संरक्षण में नारी का योग श्री गणेशाय नमः तुल्य माना है जिसके बिना ऋद्धि सिद्धि समृद्धि का कोई अर्थ नहीं।[1]

भारतीय जीवन में प्राचीन संस्कृति के उत्थान का अति महत्त्व है। विभिन्न रूपों में लोक संस्कृति का अध्ययन मानवीय भावनाओं को विकसित करके सांस्कृतिक पुनरुत्थान में परम सहायक होगा। लोक साहित्य के अध्ययन से हमारी मूल संस्कृति को प्रकाश में लाया जा सकता है।

परिस्थितियों के परिवर्तन से सम सामयिक संस्कृति के मूल्यों में कुछ भेद उत्पन्न होने पर भी लोक संस्कृति के शाश्वत मूल्यों को नहीं नकारा जा सकता। लोक संस्कृति और सम सामयिक संस्कृति के अलग अलग स्तर बनाने में शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा करके व्यक्तिगत मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा मात्र की जा रही है। वस्तुतः लोक संस्कृति और सम-सामयिक संस्कृति के आदर्शों में भेद नहीं है। राम रावण और कौरव पाण्डव का धर्म युद्ध अनय अधर्म मर्यादाओं के साथ हुआ उसी प्रकार आज भी मर्यादाओं की स्थापना हेतु अमर्यादाओं से सदा युद्ध होता है। कैकेयी की स्वार्थांधता के कारण राम को 14 वर्ष वन में रहना पड़ा था, आज भी सम-सामयिक हितों के नाम पर कितने ही राम निरम्बर और दीनहीन बने घूम रहे हैं।[2] युद्ध पहले भी होता था अब भी होता है भेद विभेद पहले भी थे अब भी हैं—इस सब के उत्तर में चाहे जितने तर्क प्रस्तुत किये जायें लोकात्मा प्रभावित नहीं हो सकती।

लोक संस्कृति को सम-सामयिक बनाने के बहाने विकृत किया हुआ रूप किसी भी सन्दर्भ में लोक का प्रतिनिधित्व नहीं करता वह केवल विचारवादी है आचरणवादी नहीं। जिस प्रकार शरीर की चमड़ी को माँस और हड्डियों से अलग नहीं किया जा सकता उसी प्रकार लोक मूल्यों को संस्कृति की मूल धारा से अलग नहीं कर सकते। संस्कृति का निर्माण राजनैतिक अथवा व्यक्तिगत आकांक्षाओं के आधार पर नहीं किया जा सकता लोकादर्श की भावना में किया जाता है। ऐसी स्थिति में लोक संस्कृति के अभ्युदय के परिप्रेक्ष्य के लिए हमें नैतिक लोक धारणाओं को ही अपनाना होगा जिसमें नवीन संस्कृति लोक संस्कृति के धरातल से विलग हो कर मूरज मुखी का रूप न धारण कर ले।

---

1 रंगायन पत्रिका दिसम्बर–76

2 रंगायन पत्रिका में प्रकाशित लेख से

लोक कला

लाक साहित्य के साथ ही लोक कलाग्रा का दशन होता है। लाक जीवन म प्रचलित विभिन्न कलाएँ लोक साहित्य म समाहित हैं—लाक जीवन का प्रस्फुटन ग्रनेक रूपा म होता है। लोक साहित्य ग्रौर लोक कला साथ-साथ चलत हैं "जहाँ धुन है वही शब्द है ग्रौर वहीं नाटक व रगमच है। जहा रगमच है वही स्थापत्य ग्रौर चित्राकन है जहाँ चित्राकन स्थापत्य है उस के साथ लोक गाथा जुडी रहती है एव लोक गाथा के साथ लाक सगीत जुडा हुग्रा है ग्रौर लाक सगीत स ही लोक साहित्य की निष्पत्ति होती है[1]

पुराने लोक गीतो म प्राचीन लोक चित्रकला का इतिहास है। माहनजोन्डो ग्रौर हडप्पा काल के ग्रवशेषा से राजस्थान म प्रागतिकहासिक सस्कृति की सत्ता वैदिक काल से पूव की हाना सिद्ध होता है।

प्राचीनतम काल म सभ्यताग्रा के ग्रवशेषा म बालको के खिलौने पाय जाते है। चरक सहिता म नाना प्रकार के सुन्दर बजने वाल खिलौना का वणन है।[2] मोहनजोदडा हडप्पा ग्रादि स्थाना पर खुदाई करन पर प्राचीन सभ्यता के ग्रवशेषो म मिले हुए खिलौनो म भी नतकी की मूर्ति रथगाडी पहिय ग्रौर प्राणिया की मूर्तिया ग्रादि मिल है जिनस हमारी प्राचीन लोक कलाग्रा का भान हाता है। इन कलाग्रा स मानसिक मनोरजन के साथ-साथ शारीरिक ग्रौर मानसिक व्यायाम भी हाना है ग्रौर नयी नयी बात सीखने का ग्रवसर मिलता है।

सदा स मनुष्य ग्रपने हृदय के भावा का रग ग्रौर रेखाग्रा क विविध रूपा म ग्रभिव्यक्त करता रहा है—मानव कभी भी कला शून्य नही रहा। लाक कलाए जन मानस म गहरी बठी हुई हैं ग्रौर पीढी दर पीढी विरासत म प्राप्त होती रहती है। इन कलाग्रा का सीखन के लिय न गुरु की ग्रावश्यकता है न पुस्तका ग्रौर पाठशालाग्रा की।

लोक साहित्य की भाति लोक कला की भी विशेषता है नाम हीनता। कौन सा कला किसने रची कब उसकी सजना हुई यह किसी को पता नही। काल हीन होना ही इस के चमत्कार ग्रौर ग्राकषण को ग्रक्षुण्ण बनाय हुए है। लोक कला जन मानस

---

1 रगायन पत्रिका—ग्रगस्त–77 म प्रकाशित लेख स

2 य ग्रन्थ ग्राप ग्रौर उपनिषत्कालीन है

लोक कला

की चेतना पर पड़ी छाप को कल्पना और अभिव्यक्ति के स्तर पर प्रतिबिम्बित करती है
इसी कारण इस जन जीवन म इतना विस्तार मिला है। लाक जीवन म इस कलात्मक
अभिव्यक्ति के कई रूप दर्शनीय हैं।

शास्त्रीय दृष्टि से कला के 5 भेद हैं—वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला
सगीत कला और साहित्य कला परन्तु लोक कलाकार न शास्त्रीय कला से कही आगे
बढ़ कर कला के अनेक रूपो की सर्जना कर ली। ये हैं—वास्तुकला, मूर्तिकला
नत्य एव नाट्य कला, चित्रकला माँडना, छापना गोदना, आदि विविध कलाएँ।

शास्त्रो की दुनिया और व्यवहारिक दुनिया अलग अलग चीजे हैं पर अवसर
अनुरूप लोक मान्यता को ही स्वीकार करना पड़ता है जबकि शास्त्र मान्यता पुस्तको
तक ही सीमित रह जाती है। शिष्ट साहित्य की भाँति शास्त्रीय कलाएँ तो थोड़े से
प्रतिभा सम्पन्न लोगो के अधिकार की होती हैं—अन्य जन उन कलाओ को देख और
सुन कर आनंदित हो लेते हैं और सभी मनुष्यो म कला के प्रति रुचि भी नही होती—
'विभिन्न रुच्याहलोका' सूत्र सुप्रसिद्ध है जो कला के सम्बन्ध म भी लागू होता
है। परन्तु लोक कला मानव हृदय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यहाँ रुचि का प्रश्न
ही नही उठता अलग अलग परिस्थितियो मे तीज और त्योहारो पर मागलिक
अवसरो पर मन म भावातिरेक की स्थिति मे मानव हृदय गीत, धुन, नाद ताल,
नत्य और रग रेखाओ का रूप धारण करके स्वत ही अभिव्यक्त होने लगता है।
व स्वर ताल और रखाएँ कभी ही क्या न हो—उनके लिये कला कौशल चातुय
और शास्त्रीय ज्ञान की किंचित अपेक्षा नहा—कालान्तर म पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत
आई हुई इन कलाओ म अनेक व्यक्तियो की बुद्धि, समझ और प्रकृत कौशल का
समावेश होने होते परिष्कार होता रहा है और आज व हमारे सामने अत्यन्त निखरे
हुए परिमार्जित मनमोहक रूप म प्रस्तुत होने लगी हैं—भविष्य म और भी अधिक
सौन्दर्यपूर्ण बनजाने की सम्भावना है। परन्तु इन लोक कलाओ मे होने वाला परिवतन
लोक जीवन को तभी मान्य होगा जब कि उनका मूल शाश्वत तत्त्व जो लोक मानस
की सार्वभौम साम्यता का प्रतीक है वह बना रहे। परिवर्तन करने के प्रयास मे लोक
कलाओ के विकास के साथ साथ उनमे विश्वास और आस्था मे पूर्ण पव उत्सव
और सांस्कृतिक आयोजन के स्थान पर आनन्द उल्लास के नत्य आदि केवल मनोरजन
हेतु गाड दिये हुए प्रतीत हो रहे हैं। औद्योगीकरण के बाद इस म जो लोक गीतो म
परिवर्तन हुआ है वसे ही शुद्ध अनुकरण की प्रवृत्ति भारत एव अन्य देशो म भी दृष्टि
आ रही है। इस प्रकार की कविता व नृत्य आदि भावना की अपेक्षा तक को अधिक
छूना है। वह लोक कला तब कहलाएगी जब वह समष्टि का हृदयगम करके सब
मान्य बन जाय।

यही स्थिति मूर्ति कला चित्र कला आदि अन्य कलाओं की है। लोक मानस
स उद्भासित कला आन्तरिक भावो एवं संस्कारो म पूर्ण तथा स्वत प्रेरित होती है
जो जन जीवन म स्वभावत विभिन्न रूपो म व्याप्त है।

साथ जीवन समष्टि जीवन है उसके साथ धर्म, विश्वास और आस्थाएं स्निग्ध होकर जुड़ी हुई हैं—उनके बिना न लोकगीत लोकगीत रहेंगे न लोकनृत्य लोकनृत्य।

वास्तु कला—लोक जीवन में सामान्य जन के मकानों एवं मन्दिरों आदि में वास्तु कला का स्वरूप दर्शनीय है। यद्यपि भवन निर्माण बिलकुल सरल सीधा गर्मी, सर्दी और वर्षा से बचाव की सुविधाओं मात्र को ध्यान में रख कर होता है चाहे वह मिट्टी गारे और गोबर से ही क्यों न बनाये जायें फिर भी उनमें मानव हृदय की कलात्मक अभिव्यक्ति शुद्ध रूप में पाई जाती है। राजस्थान में ये मकान अधिकतर लाल मिट्टी से पुते हुए होते हैं पर ऊपर से धार्मिक आस्था के फलस्वरूप देवी देवताओं के चित्र अथवा गणेश की गाथा का कोई दृश्य अथवा लोक देवताओं के शौर्य का प्रदर्शन रूप घोड़े हाथियों पर सवार हुए चित्रित होते हैं। घरों के मुख्य द्वार पर तोरण (ध्वजा) पहरा देते हैं वहीं रंग बिरंगे फूल पत्तियाँ चित्रित हैं। घर आँगन के बड़े-बड़े दालानों के खम्भों पर भी इसी प्रकार विविध चित्र खुदे हुए रहते हैं—मन्दिरों के बाहर की ओर भी राम कृष्ण दुर्गा काली माई और लोक देवी-देवताओं के चित्र अनेक रूपों में चित्रित पाये जाते हैं। मन्दिरों की छतों के ऊपर गुम्बजों की बनावट भी लोक मानस के कला प्रेम की द्योतक होती है। वास्तव में आभिजात्य वास्तु कला का मूल हमें इसी लोक कला में मिलता है। जन जीवन की सांस्कृतिक भावनाओं ने घर मन्दिर तथा अन्य प्रकार के भवनों के निर्माण में जिस कला प्रेम का परिचय दिया वही विकसित होते-होते आज शिक्षित मानव की बुद्धि के बल से परिष्कृत होकर उन ऊँचाइयों पर पहुँच गई कि नित्य नई उद्भावनाएँ वास्तु कला में होने लगी। मुस्लिम शासन के समय इस कला का स्तर शाहजहाँ द्वारा मुमताज बेगम की स्मृति में निर्मित ताजमहल में दर्शनीय है।

आधुनिक मन्दिरों में देवालय के बाहर की ओर धार्मिक ग्रन्थों - गीता रामायण गुरु वाणी और जन शास्त्रों—के स्तोत्र आदि चित्रित किये जाते है जिससे मन्दिर में प्रवेश के साथ ही भक्तों का मानसिक वातावरण भक्ति भाव से पूर्ण हो जाय। लोक जीवन में शिक्षा के संस्कारों का स्पर्श न होते हुए भी वही भाव सृष्टि ऊपर वर्णित देवी देवताओं के सामान्य चित्रांकन द्वारा की जाती थी।

राजस्थान में जहाँ-तहाँ मन्दिरों में लोक देवताओं भैरव रामदेवा तेजाजी आदि के शौर्य एवं उनकी अलौकिक शक्ति के परिचायक चित्र अंकित हैं जो दर्शनार्थ आने वाले जन समूह के हृदय में इन लोक देवों के प्रति आस्था को और भी अधिक प्रगाढ़ बनाने में योग देते हैं। इस प्रकार लोक जीवन में वास्तु कला का भी सांस्कृतिक भावनाओं को विकसित करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मूर्ति कला— लोक जीवन में मूर्ति कला कई रूपों में पाई जाती है—

1 व्रतानुष्ठान के लिये घरों में स्त्रियाँ मिट्टी की मूर्तियाँ—सालगराम गौरी गणेश,

लक्ष्मीजी तथा लोक देवी देवताओं की—बना कर पूजा करती और व्रत कथा-कहानी कहती सुनती हैं। मांगलिक अवसरों विवाहादि के अवसर पर भी सर्व प्रथम गणेशजी अथवा विनायक पूजा ऐसी ही मिट्टी की मूर्ति बना कर की जाती है।

2 सुन्दर-सुन्दर रंगों में रंग कर मिट्टी के विविध खिलौने बनते हैं। मानवीय आकार स्त्री पुरुष व बालकों के भी बनते है पर विशेष कर पशु पक्षियों के विभिन्न रूप—गाय बकरी कुत्ता बिल्ली सिंह चीता लोमडी, सारस कबूतरों की जोडी तोता मैना और कई प्रकार की चिडियाँ बनाते हैं और घर घर में बालकों को इनसे खेलते देखा जाता है।

3 गाँवों में मिट्टी के देवी-देवता पूजा के लिये बना लिये जाते हैं जो जन मानस की अनन्य धार्मिक आस्था का प्रतीक है। मन्दिर देवालय दूर पड़ते हैं, नित्य प्रति जाना सुविधाजनक नहीं होता अतः मृण्मूर्तियाँ बनाकर ही दैनिक अथवा विशेष त्यौहारादि अवसरों पर गृहस्थ जन उपासना कर लेते हैं।

4 मूर्ति बनाने का यह स्वरूप भी धार्मिक आस्था से ही सम्बन्धित है—विशेष पूजा के अवसरों पर गणेशजी अथवा गौरी की मूर्तियाँ बनाकर 5 दिन पूजा उपासना की अवधि पूर्ण होने पर उन्हें नदी या तालाब में विसर्जन किया जाता है।

इस प्रकार विचार करने से विदित होता है कि जन जीवन में सदा से मूर्ति कला का बीज अंकुरित हुआ है और आज आधुनिक युग में भी उसका कोई न कोई रूप दृष्टि आता है।

नृत्य एवं नाट्य कला—अभिजात्य नृत्य एवं नाट्य कलाओं की भांति लोक जीवन में भी लोक नृत्य और लोक नाट्य लोक कला की मुँह बोलती विधा है जो यत्र तत्र सर्वत्र लोक प्रिय बनी हुई है। आदिम काल से जन मानस में स्फुरित हिलोरें गीत और नृत्य रूप में उद्भवित होकर जन जीवन में आनन्द की सृष्टि करती हुई मनोरंजन का साधन बनी आ रही है। स्वतः प्रेरित भाव लहरी और नृत्य रचना जन जीवन में ग्राम्य कथा कहानियों से जोड़ कर लोक नाट्य का रूप धारण करके रंग मंच पर उतर आती है। इन कलाओं का विस्तृत वर्णन तो अलग ही एक शोध का विषय होगा, यहाँ संक्षेप रूप में इनका परिचय दिया जाता है।

देश के विभिन्न जन पदों नगरों और गाँवों में राम-कृष्ण और लोक देवी देवताओं की गाथाओं पर राम लीला रासलीला नाटकों पर नृत्य के साथ होते रहे हैं। विशेष कर उत्तर प्रदेश में मथुरा वृन्दावन और अयोध्या आदि स्थानों में नाट्य मण्डलियाँ वर्ष के निश्चित महीनों में अन्य प्रान्तों में भी कला प्रदर्शन हेतु जाती रहती थीं। दर्शकों द्वारा स्वेच्छा से दिये पुरस्कार के अतिरिक्त आयोजक वर्ग सम्पन्न करके उनके व्यय पूर्ति के लिए भेंट देते थे जिससे ये लोक कलाकार अपनी आजीविका भी कमा लेते थे। चित्रपट आदि के प्रचार से लोक रंजन के ये साधन लुप्तप्राय हो गये—परन्तु अब भी किन्हीं क्षेत्रों में लोक नृत्य और लोक नाट्यों का प्रचलन है।

होली आदि त्यौहारों पर गांवों में और छोटे नगरों में भी इस प्रकार की नाटक मण्डलियाँ अथवा बहुरूपिया वेष बनाये टोलियाँ नाचती गाती मस्ती में घूमती पाई जाती है जिससे जन समूह पूर्ण उत्साह से आंदोलित हुआ आनन्द विभोर होता है।

भारतीय लोक नृत्य और लोक नाट्य मूलतः पर्व त्यौहार देवी-देवता, आस्था और नीतियों से जुड़े होते हैं। राजस्थान का घूमर और गवरी नृत्य व नाट्य इसी प्रकार के धार्मिक आस्था पूर्ण अनुष्ठान हैं। इनके अतिरिक्त देवी देवताओं के चरित्र चित्रित करके विभिन्न स्थानों पर धार्मिक आस्थावान भोपे[1] नृत्य रूप में प्रदर्शन करते हैं। पाबू की फड़[2] इस लोक कला का अत्यन्त लोकप्रिय नमूना है। नवरात्र आदि के अवसरों पर आयोजित रात्रिजगा में विशेष कर पाबू जी की फड़ पर चित्रित उनकी जीवन घटनाओं के अनुसार गीत गा गा कर उन्हीं भावों का नृत्य एवं अभिनय में प्रदर्शित करने का प्रचलन है। पाबूजी की रहस्यमय शक्ति में आस्था रखने वाला जन समूह अपने परिवार से दुष्प्रभाव को दूर करने हेतु इन भोपों को आमन्त्रित करता हैं।

रंगमंच—नाट्य कला के रंगमंच खुले मैदानों में होते हैं—गाँवों में कहीं चौड़े मैदान में चबूतरे पर या तख्त बिछा कर रंगमंच तैयार हो जाता है कोई मूल्यवान साज-सज्जा या पर्दों आदि की आवश्यकता नहीं। राजस्थान में लोक नाटकों को ख्याल कहते हैं। इन ख्यालों के अभिनय में नगाड़ा ढोलक और सारंगी आदि वाद्य यन्त्रों का प्रयोग होता है। नाट्य कला की विशेषता अभिनय में समाई है—इनके अभिनय में लोक मानस की तरंगों और मस्ती का द्योतक, नाचना कूदना अधिक रहता है—आधुनिक नाटकों के गम्भीरता पूर्ण हाव भाव नहीं। ख्यालों में अभिनय के साथ कथोपकथन भी गेय होता है— अभिनेत्रियों के गान का और वाद्य यन्त्रों के बजाने का ढंग भी इनका अपना ही होता है—डंके की चोट सुन-सुन कर आस-पास के गांवों के लोग भी आकर इकट्ठे होने जाते है।

लोक नाटक दर्शक तथा अभिनेताओं के लिये एक सम्मिलित प्रणाली है यह आंचलिक संस्कृति का पोषक है। इन नाट्यों में उन्मुक्तता व सहिष्णुता होती है। अभिनेता का दर्शकों के साथ स्वाभाविक अपनत्व रहता है अतः हृदयों पर अधिक प्रभाव डालते हैं। लोक नाट्यों में लोक रुचि लोक भावना और लोक कल्याण की प्रमुखता रहती है। साहित्यिक नाटक लोक नाट्यों की अनौपचारिकता से प्रेरणा ले सकते हैं।

---

1 राजस्थान में लोक देवताओं के पुजारी को भोपा कहते हैं

2 पाबूजी राजस्थान में एक महान् लोक देवता हुए हैं—उनकी प्रशंसा में रचे हुए वीर रस के गीत रावण हत्थ (वाद्य विशेष) को बजा बजा कर गाते है।

राजस्थान एवं कई अन्य स्थानों मे भी सामन्ती युग मे कुछ निम्न श्रेणी के लोगो की नृत्य आदि कलाओं का उद्देश्य राजाओं और सामन्त, जमींदार, ठाकुर, पटेल, जाति के अगुओं का मनोरंजन करके धन अर्जन हो गया—इससे कला की स्वाभाविकता क्षीण होकर स्तर भी निम्न बनने लगा था। इस प्रकार का गाना बजाना साधारण जन स्तर पर सामूहिक आनन्द का साधन न रह कर वयक्तिक एवं वर्गीय मनोरंजन का रूप धारण करने लगा। फलस्वरूप उच्च स्तर का प्रदर्शन होते हुए भी कलाकारों का दर्जा उनसे हल्का माना जाने लगा जिनका वह मनोरंजन करते थे—मनोरंजन प्राप्त करने वाला गायक गायिकाओं को पुरस्कार देकर अपना बड़प्पन स्थापित करता था। इस स्थिति में यहाँ तक गिरावट आई कि ये मनोरंजन प्रदान करने वाले वर्ग की जातियाँ ही अलग बन गई जो याचकों की गिनती मे आने लगी। इनकी मनोवृत्ति भी ऐसी बन गई। ये लोग प्रयत्न मे रहते थे कि पुरस्कार दाताओं को खुश करने के लिये जितनी अच्छी कला दिखायेंगे उतना अधिक इनाम मिलेगा। यह स्वार्थ परक अर्थ प्राप्ति का उद्देश्य बन जाने से कला का स्वतः प्रेरित प्रकृत रूप नष्ट होने लगा।

सामन्ती युग की समाप्ति पर धीरे धीरे लोक कला ने फिर से अपना रूप सम्हाला लोक कला प्रेमी जनता का ध्यान इन्हे अपनाने की ओर गया और लोग प्राचीन गीतो नृत्यो एवं अन्य कलाओं की खोज मे प्रवृत्त होने लगे। राजस्थान मे पिछले दो दशकों मे इन कलाओं के विकास पर विशेष कार्य हुआ है। लोक कलाओं के उन्नायक डा० देवी लाल सामर द्वारा प्रस्थापित लोक कला मण्डल उदयपुर ने लोक एवं नाट्य कला को अन्तर्राष्ट्रिय मंच तक पहुँचा कर इन लोक कलाओं की शक्ति-सत्ता का सुन्दर परिचय दिया है। इनके भवाई नृत्य गोरी नृत्य और कठपुतलियाँ आदि यहाँ की उत्कृष्ट लोक कला के विशेष नमूने हैं।

चित्रकारी—लोक-कला का सम्बन्ध त्योहारों से बंधा हुआ है। भारत भर मे त्योहारों के अवसर पर अनेक रूपों मे लोक कलाओं के दर्शन होते हैं। मालवा, निमाड़ गुजरात, राजस्थान और उत्तर प्रदेश आदि स्थानों के त्योहारों की आत्मा मूलतः लोक कला से जुड़ी हुई है। दीवाली करवा चौथ गणेश चौथ होई अष्टमी, श्रावणी एवं अन्य कई त्योहारों पर घर के आँगन तथा दीवारों पर पूजा के लिये विभिन्न चित्र बनाना घर को अपनी कल्पना के रूप मे रंगो से चित्रकारी करना फूल पत्तियों से घर के द्वारों को सजाना आदि परम्परागत लोक-कला की अभिव्यक्ति सर्वत्र दर्शनीय है। इन चित्रकारियों एवं कलात्मक सजावट मे धार्मिक आस्था और विश्वास के आधार पर लोक मानस का कला प्रेम और कला को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रकट होती है। इन कलाओं मे विशेष योगदान नारी का रहता है।

वस्तुतः नारी के भावुक हृदय मे आस्था और विश्वास का वेग पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रबल है। और वह गृहस्वामिनी है उसका क्षेत्र प्रधानतः घर ही है

अत त्योहारों के अवसर पर उसे अपने हृदयगत भावों को कला के रूप में व्यक्त करने की सहज प्रेरणा होती है। प्रारम्भ में कदाचित यह कला टेढी मेढी रेखाओं में ही चित्रित हुई हो परन्तु परम्परा से आए हुए उन चित्रों में अनेकों स्त्रियों की प्रकृत प्रतिभा के योग से विकास होने-होते सुन्दर चित्रकारी का रूप दृष्टि आने लगा।

सावन भादों के सुहावने हरियाले वातावरण में जन मानस आनन्दित हो उठता है। वर्षा ऋतु की समाप्ति और शरद ऋतु की अगवानी रूप आश्विन महीने के सुन्दर मन भावन वातावरण में किशोरियों के मन का उल्लास साझा या सध्या त्योहार के रूप में प्रगट होता है। इस अवसर पर किशोरी बालिकाएं दीवारों पर गोबर या गेरू से साँझी चित्रित करके फूल पत्तियों से सजाती है। पश्चिम दिशा में सध्या की लालिमा छा जाती है और साँझा फूली[1] के विविध रंग दीपकों की ज्योति में नवरंग बिखेरते हैं। साथ ही बालिकाओं के सुरीले कंठों में साँझा के गीत प्रस्फुटित होने लगते हैं।

साँझा फूली के भित्ति चित्रों के ये नन्हे कलाकार पूर्ण श्रद्धा भक्ति से साँझी की आरती उतारते हैं—टोली बना-बना कर गीत गाते हैं—

सझा र हेनडी, बाजार म खेले,
बाजार मे रमे या कोन जी की बेटी
या चांदजी की बेटी साय खाजा रोटी
मेरे माणक मोती ठकुराणी चाल चले
निमाडी बोली बोले।"[2]

बाल्यकाल से ही यह धार्मिक आस्था जन जीवन में संस्कार डालती आती है, जिसके फल स्वरूप मानवीय भावनाएँ विकसित होकर पारिवारिक और सामाजिक जीवन को उल्लसित करने में सहायक होती है। लोक जीवन में आस्था और विश्वास के बल में जो सांस्कृतिक भावनाएँ बनी हुई थी और भौतिकवादी युग में जो बुद्धि और तर्कों में उलझे हुए मानस से लुप्त होती जा रही है उन्हे पुन विकसित करके स्वस्थ समाज की स्थापना हेतु साहित्य रचना और गीता आदि धर्म ग्रंथों के प्रचार के साथ साथ लोक कलाओं के यथार्थ रूप में पुन स्थापना से सहज ही लक्ष्य पूर्ति होगी।

घर आँगन में आरम्भ हुई लोक कलाएँ कालांतर में पूजा गृह भित्ति चित्रो, कशीदाकारी नक्काशी और वेश भूषा तक भी पहुँच गई। मंदिरो के द्वारों पर भीतों पर वृक्षों पर और सरोवरो के तटों पर चित्रों के रूप में लोक मानस का कला कौशल चित्रित होने लगा। ये चित्र विशेष कर देवी-देवताओं की आकृति के और चन्द्र सूर्य नक्षत्र अन्य दीपक आदि पूजन सामग्री फूल पत्ती बड़ पीपल आदि

---

1 साँझी के गीतों को साँझा फूली कहते हैं।

2 रसायन पत्रिका—सितम्बर 76

प्रकृत पदार्थों तथा लोक देवी देवताओं के होते हैं। जन मानस की कल्पना शक्ति जो रूप और आकार अपनी भावनाओं को दे सकती है वही तब ये लोक कला अनेक रूप धारण किये तीज त्यौहारों और विवाहादि विविध मांगलिक अवसरों पर अभिव्यक्त होती रही। ये कलाएँ हमारी संस्कृति की धरोहर हैं।

आधुनिक भौतिक एवं मानसिक तनाव के युग में भी ये लोक रंजनी कलाएँ मन को आत्म तुष्टि और जीवनी शक्ति प्रदान करती हुई जीवन प्रवाह को शाश्वत बनाये रखने वाली हैं।

इन कलाओं के सृजन की सामग्री मिट्टी से बने रंगीन द्रव्यों—गेरु आदि में प्राप्त हो जाता है। गहरे और लाल पीले काले, हरे प्रचलित रंगों में रंगी मिट्टी आदि का प्रयोग अधिक होता है। चित्रकारी के रंग कला कृतियों के गुणों के साथ साथ मानव चरित्र के भी परिचायक होते हैं। विविध भावनाओं, आवेगों तथा प्रतीकात्मक संकेतों का ज्ञान इन रंगों में ही सकता है। कलाकार विशेषज्ञ रंगों की परख में कुशल होते हैं।

मांगलिक अवसरों व त्यौहारों पर भित्ति पर थापे रखना भी लोक कला का एक प्रकार है। छोटी बालिकाएँ होश सम्हालते-सम्हालते थापा बनाना, चौक पूरना, अल्पना मांडना पुजापा तैयार करना सीख जाती हैं और इन लोक-कलाओं में निपुण किशोरियाँ पूजा करके प्रसन्न होती हैं। इन कलाओं में जहाँ नारी जीवन की सांस्कृतिक सम्पन्नता मिलती है वहाँ पीढ़ी दर पीढ़ी परम्पराओं की शृंखला कड़ियाँ जुड़ती चलती हैं। ये भाव आदि की कलाएं जाति वर्ग धर्म सम्प्रदाय आदि सीमाओं से परे असीम निस्सीम होती है।[1]

मांडना—लोक जीवन में मांडना कला के कई रूप दृष्टि आते हैं। मेहन्दी मांडना अल्पना, पत्र आदि पर कई रंगों में मांगलिक चित्र मांडना और पैरों में महावर मांडना आदि में नारी के मानस का कला प्रेम और सांस्कृतिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। मांडना शब्द राजस्थानी भाषा का है। ये मंगल सूचक, आचार विचार मूलक मानव मन की अभिव्यक्ति होते हैं।

मांगलिक अवसरों पर पूजन के लिये नवग्रहों के प्रतीक रूप बनाये जाने वाले आटा हल्दी कुमकुम एवं रंगों से जो चक्रादि बनाये जाते हैं वे भी मांडणा का ही रूप है—रंगोली, दीवाली आदि सांस्कृतिक पर्वों पर इन्हें बड़ा रूप दे दिया जाता है।

मेहन्दी मांडने में लोक कला का सूक्ष्म सौन्दर्य परिलक्षित होता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ और कुँवारी कन्याएँ भारत के लगभग सभी प्रान्तों में तीज, गनगौर करवा चौथ और दीपावली आदि त्यौहारों पर एवं विवाहोत्सवों में रातिजगा आदि विशेष अनुष्ठानों के लिए मेहन्दी लगाती हैं। वधू को तो मेहन्दी लगाना अनिवार्य है ही प्राचीन

---

1 रंगायन पत्रिका—सितम्बर 77

काल में दूल्हा के हाथ पाँव में भी मेहन्दी लगाई जाती थी—अब भी जो आधुनिक विचारों के शिक्षित लड़के मेहन्दी लगवाना पसन्द नहीं करते मांगलिक प्रतीक रूप में उनको भी माता शकुन रूप में मेहदी अवश्य स्पर्श करा देती हैं। राजस्थान में मेहन्दी मांडने की कला अत्यन्त विकसित रूप में पाई जाती है—सूखी मेंहन्दी घोल कर उसमें इतना बारीक तार उठा कर अपनी उँगली के पोरव से सुन्दर चित्रकारी करती हैं जो चित्रकला के विज्ञापन ब्रुश और कृत्रिम रंगों से किसी प्रकार कम नहीं है। बल्कि यह चित्रकारी नारी के स्वत प्रेरित मनोभावों से स्फुरित होने के कारण कहीं अधिक मनभावनी, आनन्ददायिनी एवं मंगल की विधायक होती है और इससे उन निरक्षर नारी वर्ग की प्रकृत प्रतिभा का परिचय मिलता है जिसे किसी पाठशाला में जाकर न पढ़ने लिखने का सुअवसर मिला न चित्रकारी आदि ललितकलाओं को सीखने का।

महावर मांडना—मांगलिक अवसरों पर पाँवों में लाल गुलाबी और बैगनी रंगों से महावर लगाते हैं जो सांस्कृतिक भावनाओं की प्रतीक रूप सौभाग्यवती स्त्रियों के शृंगार का एक अंग माना जाने के साथ-साथ पुत्र जन्म और विवाह आदि अवसरों पर मांगलिक प्रतीक रूप में प्रचलित है। पुत्र जन्म पर और नव वधू के शुभागमन पर घर की नायन आकर क्रमश जच्चा और नवागता वधू के महावर चित्रित करती है। साथ ही परिवार की अन्य उपस्थित सौभाग्यवती स्त्रियों के पाँवों पर स्वास्तिका चिह्नान्वित महावर मांड कर वह नायन दक्षिणा प्राप्त करती है। जच्चा-बच्चा और नवविवाहिता वधू के लिये सभी सौभाग्यवती बहिनों के हृदय जुड़ाते हुए उनके लिये व्यापक रूप से मंगल कामनाएं प्राप्त करने तथा सांस्कृतिक भावनाओं के विकास में हमारी ये लोक कलाएँ कितना योगदान देती हैं।

इसी प्रकार स्वस्तिका लोक-कला की एक सुन्दर कृति है। स्वस्तिका को कई नामों से अभिहित किया जाता है—सामान्यत इसे सतिया कहते हैं पर शुद्ध रूप साथिया स्वस्तिका और सात्या हैं। इसका अर्थ है शुभ सुख कल्याण, मंगल अथवा उत्कर्ष। ऋग्वेद की ऋचा में स्वस्तिका को सूर्य का प्रतीक माना है—चारों भुजाएं चारों दिशाएं हैं जो शक्ति प्रगति प्रेरणा और शोभा की प्रतीक हैं। चार युग—(सतयुग त्रेतायुग द्वापर और कलयुग) चार वर्ण—(ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र) एवं चार आश्रम—(ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास) स्वस्तिक के ही प्रतीक हैं।[1]

स्वस्तिका को विष्णु भगवान का सुदर्शन चक्र भी कहते हैं—जैन बौद्ध सिक्ख सभी इस मंगल चिह्न रूप में अपनाते हैं। त्यौहारों और विवाहादि के अवसरों पर चाक पूजते समय चाक पर बेटी की विदा के समय देहली पूजन में बेटे को उत्तराधिकार मिलते समय उस की पगड़ी में रोली से स्वस्तिका बनाई जाती है। पानी

---

1 रंगायन पत्रिका—नवम्बर 76 से

के कलश पर अथवा नया घड़ा निकालने पर घी के सतिया की प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है—गाँवों में अब भी यह मांगलिक भावनाएँ दर्शनीय है। व्यापारी वर्ग दशहरे अथवा दीपावली पर नई बहियाँ आरम्भ करते हैं उनमें भी मंगल भावना का प्रतीक सतिया बनाया जाता है जिससे वर्ष भर व्यापार सुख समृद्धि का दाता बना रहे। इस प्रकार स्वस्तिका हमारे परिवार समाज और राष्ट्र का मांगलिक प्रतीक ही नहीं बल्कि समग्र मानव चेतना के उत्पत्ति जयति और मंगल का प्रतीक रूप माना जाता है।

मंगल भाव के परिचायक आचार विचार मंगल मानव मन की अभिव्यक्ति होने के कारण विवाहादि मांगलिक अवसरों पर नवग्रहों के प्रतीक रूप बनने वाले आटा, हल्दी और रंगों से बने हुए चक्र स्वस्तिका आदि भी मांडणों की ही आकृति हैं।

अल्पना—त्यौहारों पर एवं नव वधू के के स्वागतार्थ घर के आँगन से प्रवेश द्वार तक भूमि को गेरू में पोत कर चावल हल्दी से तैयार किये पीले ऐपन से पाँवड़े बनाए जाते थे। अब बड़े नगरों के शिक्षित जनों ने उसे चित्रकारी का परिष्कृत रूप दे दिया है जो अल्पना कहलाता है। मांगलिक अवसरों पर कई घट रखे जाते हैं उन पर भी मांडना की सुन्दर कला की अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः मांडने भी जन जीवन में प्रचलित चित्रकारी के ही रूप हैं।

छापना—वस्त्रों पर छपाई का प्रचलन चिर काल से चला आ रहा है। ओढ़ने पोमचे लहँगों के कपड़े और साड़ियों आदि पर देश में सभी जगह विविध रंगों में छपाई होती है, परन्तु राजस्थान के विभिन्न स्थानों की छपाई का अपना विशिष्ट महत्त्व है। जोधपुरी बंधेज की छपाई जयपुरिया चूँदड़ी और सांगानेरी साड़ियाँ व पोमचे अलग अलग तरह की विशेषता लिये होते हैं। विवाह के अवसर पर बहिन के लिये थाल में भाई छपी हुई चूँदड़ी लेकर आता है और नव वधू को भी चूँदड़ी उढ़ाई जाती है—शिशु जन्म पर नाम करण संस्कार के समय जच्चा अपने पीहर से आयी पीलिया ओढ़ती है उसमें भी पीले आधार पर लाल रंग की छपाई होती है। यही प्रथाएँ उत्तर प्रदेश आदि अन्य प्रान्तों में भी पाई जाती हैं।

गोदना—विभिन्न जनपदों–विशेष कर आदिवासी क्षेत्रों में नारी अंगों में गोदने की कला प्रचलित है। हाथ-पाँव के विभिन्न भाग और ठोड़ी पर स्त्रियाँ नीले हरे रंग के गोदने शृंगार के रूप में चित्रित करती हैं। इस कला का चलन ग्रामीण महिलाओं में अधिक भी होता है। लोक संस्कृति में गोदना को सौभाग्य सूचक माना जाता है। जन जातियों में इसे आभूषण की भाँति प्रिय मानते हैं जिसमें अंगों को सुन्दर बनाने की भावना निहित है। जिस प्रकार राजस्थान आदि में मेंहदी अंग प्रसाधन विशेष है इसी प्रकार नेपाल तराई की जन जातियों में गोदना माना जाता है। गोदना के कई रूप प्रचलित हैं जो जातीय परम्परा एवं धारणा आदि पर आधारित होता है।

समस्त लोक साहित्य की भांति कथाएँ भी बडी गहरी जड रखती हैं। साहित्य रचना में वेद प्राचीन ग्रंथ माने जाते हैं परन्तु लोक कथाएँ उन सभी से पुरानी हैं। साहित्यिक रचना तो मानव सभ्यता के साथ साथ विकसित हुई परन्तु कथाएँ इसके विपरीत सभ्यता से पूर्व की वस्तु है जो मौखिक परम्परा से आती हैं। लिपिबद्ध होने के कारण आज सभ्यता के युग में भी उपलब्ध हो सकी।

डा० सत्येंद्र ने लोक-कथा के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि आदि मानव ने प्रकृति के विविध व्यापारों से मिलने वाली शिक्षाओं को ग्रहण करके कल्पना के तत्त्व से इन प्रकृत व्यापारों को कथा का रूप दे दिया जिनमें मनोरंजन अथवा नैतिक शिक्षा की प्रधानता रही। ये कथाएं विविध मानव समूहों द्वारा विविध भौगोलिक प्रदेशों में ले जाई गई और अपने मूल रूप से पृथक होते-होते साधारण लौकिक कहानियों के रूप में जन समुदाय में प्रवाहित हो गई। उन्हीं के समान ढाँचे पर नित्य प्रति के व्यावहारिक विषयों पर लौकिक कहानियाँ भी रच ली गई।[1]

प्राचीनकाल में जो कोई भी व्यक्ति या घटना असाधारण प्रतीत होती थी उसी पर लोक-कथा या गीत रच लिया जाता था। पर आज हमारा मानस इतना शिष्ट और संस्कृत बन गया है कि लेखनी के बिना कथा ही नहीं बनती साहित्य-रचना कृत्य कुछ प्रतिभाशाली व्यक्तियों का रह गया। ऐसी साहित्यिक रचना सामान्य लोक की समझ और पहुँच से दूर की वस्तु है। फलस्वरूप राष्ट्र और समाज के अत्यन्त उज्ज्वल चरित्रों की कथा सर्वसाधारण की सीमा के बाहर रह जाती है। यही कारण है कि नवीन युग में देदीप्यमान नक्षत्र रूप श्रेष्ठ आत्माओं का जीवन चरित्र शिक्षण संस्थाओं में अवश्य पढ़ाया जाता है पर उनकी जीवन-गाथा पर लोक-कथाएँ व गीत नहीं रचे जा सके न ही उनकी चारित्रिक विशेषताओं से लोक जीवन लाभान्वित होकर राष्ट्र के चरित्र गठन में योग दे पाया। केवल घटनाएँ और कथा विधान ही ऐसा रह जाता है जो मूल कथा से सम्बन्धित था।

लोक साहित्य के अध्ययन विदेशी विद्वान् क्रिटरेज ने लिखा है कि परम्परागत गीत कहानियों और अंधविश्वासों में सर्वसाधारण की रुचि होना आधुनिक दुनिया की नवीनता नहीं है। लोक जीवन के रीति रिवाजों की ओर अठारहवीं शताब्दी तक के लोगों का ध्यान उनकी सन्तानों में कम आकर्षित नहीं हुआ।[2]

वेदों में यज्ञ विधि और अनुष्ठान सम्बन्धी कहानियाँ हैं। विविध देवताओं के कृत्य ही इनके विषय थे। रामायण और महाभारत से आई हुई विभिन्न कहानियाँ भी लोक-कथाओं से विकसित हुई हैं। वेदों की बीज रूप कहानियाँ पुराणों में पल्लवित और पुष्पित हुई पाई जाती हैं।

---

1 ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृष्ठ 13–14

2 इंट्रेस्ट इन द ट्रेडीशन आफ बलेड्स स्टोरीज एण्ड सुपरस्टीशन्स आफ कामन फाक इज नाट नाविल्टी आफ रिसेंट एज। द कस्टम्स आफ द फाक नाट लेस देन देअर सन्स एट्रेक्टेड द एटेंशन आफ द एटीन्थ सेन्चुरी।

लोक-कथाओं का जन्म उस समय हुआ था जबकि मनुष्य कल्पना, कथा और इतिहास में अन्तर नहीं कर सकता था। स्मृति पटल पर जीवित रहने योग्य घटनाएँ जन जीवन में व्याप्त होकर लोक-कथाओं अथवा गीतों के रूप में अमर हो जाती थीं उन्हें चाहे कल्पना कहिये, कथा कहकर सम्बोधन करिये अथवा इतिहास के पन्नों में बाँधिये। एनसाइक्लोपेडिया ऑफ ब्रिटेनिका ने उसे विशृंखलित इतिहास कहा है। मैक्समूलर तथा अन्य विद्वानों का मत है कि इन वैदिक देवी देवताओं की कहानियाँ वेदों से भी पुरानी हैं। वेद में कितने ही वृत्त कहानी के रूप में हैं। वेद में वे बीज और लोक कहानियों के विशद भाग का मूलाधार है। लोक कथाओं के नितान्त बदले हुए रूप में पाया जाना भी उनकी प्राचीनता का प्रमाण है। मौखिक परम्परा से आने के कारण अनेक लोक-कथाएँ विकसित होते होते प्राय बिल्कुल परिवर्तित रूप में मिलती हैं। न उनके उद्गम स्थान का पता है न वास्तविक स्वरूप का। पात्रों के नाम तक लुप्त हो गये हैं। विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों में विभिन्न नाम रख लिये गये हैं।

लोक-कथाओं में कहानी तत्व की प्रधानता होती है और कल्पना तत्व को शिष्ट मानव तत्व कहना उपयुक्त होगा। यह तत्व कथा के निर्माण निमित्त न होकर संवेदना की सृष्टि करता है।

आधुनिक कहानी की भांति इन कथाओं में सप्रयास चित्रित चरित्र चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण न होते हुए भी कथा में वर्णित चरित्र मौन प्रेरक एवं मनोवैज्ञानिक उपदेष्टा का काम करते हैं।

प्रकृत साहित्य में प्रकृति भी मानव की सहचरी के रूप में चित्रित हुई है। प्राचीन एवं आधुनिक साहित्य में प्रकृति चित्रण आलम्बन, उद्दीपन रहस्यात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप में हुआ है पर लोक वाणी रूप इस साहित्य में प्रकृति मानव के जीवन में घुली मिली दृष्टि आती है। प्रकृति के सुरम्य प्रांगण वनवाटिका खेत, खलिहान, नदी तट और पार्श्व चट्टानों में विचरण करता हुआ मानव नदी नाना पर्वत समुद्र और आकाश आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों में निकट सम्पर्क में जीवन यापन करता है। वृक्ष और लताएँ धूप पानी से उसकी रक्षा करती हैं। पशु-पक्षी उसमें वार्तालाप करते दुःख में कातर और कठिनाई के समय मनुष्य का हाथ बँटाते पाये जाते हैं। इस प्रकार लोक-कथाओं में पशु-पक्षियों का संसार भी मानव जगत में एकाकार हुआ प्रतीत होता है। कालिदास की भांति लोक गाथाकार को भी प्रकृति का कवि कहें तो अत्युक्ति न होगी।

लोक-कथाओं के प्रकार अनेक हैं जैसे व्रत और त्यौहार सम्बन्धी आरण्यक भूत प्रेत, जादू-टोना आदि की मनोरंजक कथाएँ प्रेम गाथाएँ और वीर गाथाएँ आदि किन्तु कौटुम्बिक कथाएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं जिनका प्रधान स्वर है उपदेश वृत्ति और मनोरंजन। पीढ़ी दर पीढ़ी बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ ये कहानियाँ बालक-बालिकाओं और बहू-बेटियों को सुनाती चली आई हैं। ये कथाएँ जीवन के साथ संस्कारवत जुड़ी हुई हैं—उनमें अनेक व्यक्तियों की प्रतिभा का प्रकाश निहित है—जिससे भावी समाज

का मार्ग दर्शन मिलता है। ये लोक-कथाएँ तीज त्यौहारों पर कही जाती हैं– धार्मिक व्रतों के साथ इनका गठ-बन्धन है, ये भूले भटकों को रास्ता दिखाती हैं सतप्त हृदय का ताप मिटाने में सहायक होती हैं विरहियों को सान्त्वना देती और दुर्बल जनों में प्राणों का संचार करती हैं।

इन कथाओं में वर्णित मानव की शारीरिक और मानसिक शुद्धि उसकी संकल्प शक्ति और चित्त की एकाग्रता का दर्शन होता है जिससे प्रेरणा लेकर आज का बुद्धिवादी विकसित मानव भी आत्म-बल और चरित्र-बल प्राप्त कर सकता है। निश्छल पारिवारिक प्रेम के जीते जागते चित्र उनमें मिलते हैं। पति परमेश्वर और पत्नी को गृह लक्ष्मी मानने वाले जनपद ने दाम्पत्य प्रेम लोक में आध्यात्मिकता का समावेश करके उसे परम उज्ज्वल स्वरूप प्रदान किया है। अनेक कहानियों में अतिथि सेवा परोपकार एवं धर्म्य और पुरुषार्थ आपद्धर्म और अदम्य उत्साह प्रदर्शन के चित्र प्रस्तुत हुए हैं। राजभक्ति और देशभक्ति के ज्वलंत उदाहरण भी इन कथाओं में मिलते हैं राज पुत्रों को सतपथ गामी बनाने वाली हितोपदेश और पंच तन्त्र की कहानियां भी इन्हीं लोक कथाओं का विकसित साहित्यिक रूप है।

नीति शास्त्र विशारद चाणक्य ने इन लोक-कथाओं का उपयोग करके पथ भ्रष्ट राजपुत्रों को भी नीति निपुण बना दिया था।

लार्ड बेकन ने कहा है कि कथा से मनुष्य वह प्रमाणित करता है जिससे इतिहास वंचित रखता है। तभी छाया रूप नीरस ऐतिहासिक गाथाओं की अपेक्षा स्वाभाविक मानव जीवन के यथातथ्य सरस चित्र मानव को नैतिकता का पाठ पढ़ाने में अधिक सार्थक हुए हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी लोक-कथा साहित्य का स्तुत्य महत्त्व है। प्राचीन रीति रिवाज और मान्यताओं की अभिव्यक्ति तत्कालीन संस्कृति को पुनः प्रकाश में लाने में योग दे सकती है।

लोक-कथाओं में आधुनिक कथा साहित्य की भांति सामाजिक वैषम्य शोषण और राजनैतिक उथल-पुथल व क्रान्तिकारी चित्रण के स्थान पर सुखी समाज और स्निग्ध एवं शान्त वातावरण उपलब्ध होता है जिसमें जीवन की स्वाभाविकता से अनुप्राणित दिव्य शान्ति की छाया झलकती है।

ये कथाएँ अधिकांश सुखान्त होती हैं उनमें निराशावाद के लिये स्थान नहीं और साम्यवाद का बोलबाला है। उनमें ऊंच-नीच का भेद दृष्टि नहीं आता।

इस साहित्य में तत्कालीन समाज के प्रेम और सौजन्यता शान्तिपूर्ण एवं सुरम्य वातावरण के दर्शन होने के साथ साथ कुछ अज्ञान जनित अंधविश्वासों और सामाजिक विडम्बनाओं का भी आभास मिलता है परन्तु इस प्रकार के सामाजिक चित्रण से लोक कथा का महत्त्व किंचित्मात्र भी कम नहीं होता। उसमें चित्रित समाज के ज्ञान से लेकर नये युग के प्रकाश में जीवन के उन स्वाभाविक तथ्यों को स्वीकार करते हुए हम लोक-कथाओं को जीवन सन्दीपनी शक्ति का रूप दे सकते हैं जो जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करके आधुनिक मानव को प्रकाशमान करने में समर्थ हों। ●●

लोक-गीतों का वर्गीकरण

लोक गीत जन मानस से प्रवाहित स्रोत हैं जिनके विषयों की संख्या नहीं और प्रकारों का अन्त नहीं। ऐसी असंख्य राशि का वर्गीकरण करना एक दु साध्य कृत्य है। जन-मानस की स्वाभाविक एव मनोवैज्ञानिक भाव भूमि म साम्य होन के कारण विभिन्न क्षेत्रीय प्रादेशिक एव जातिगत गीतों मे भी भाव साम्य होता है—बल्कि विश्व भर के अलग अलग देशों म भी समान परिस्थितियो म लोक-मानस स समान भाव लहरी फूटती पाई जाती है—हाँ विभिन्न क्षेत्रों की बोलियों की भिन्नता एव व्यवसायों तथा जीवन के स्वरूप भेद से कुछ भेद उपस्थित हो जाता है—और जातिगत गीतों म रीति रिवाजों तथा भावना भेद स यत्किंचित् अन्तर दृष्टि आता है, अन्यथा कोई तात्विक भेद नहीं। अतएव इन दृष्टियों से लोक गीतों का वर्गीकरण सम्यग् रूपेण नहीं हो सकता, न उपादेय ही है।

शैली की दृष्टि स अथवा गायकों की दृष्टि स लोक-गीतों का वर्गीकरण होगा क्रमश सामूहिक, एकाकी नृत्य गीत नाट्य गीत और लोक-काव्य आदि तथा पुरुष गीत, नारी गीत और बालकों के गीत। परन्तु इन दोनों विधियों स लोक-गीतों का वैज्ञानिक वर्गीकरण सम्भव नहीं। इनके एक एक प्रकार म दूसरे सम्मलित हो जाते हैं।

भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानों ने लोक-गीतों के वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोणों से किये हैं।

भारतीय विद्वानों म डॉ० सत्येन्द्र ने गान के उद्देश्य की दृष्टि से समस्त गीतों को अनुष्ठान सम्बन्धी और मनोरंजन सम्बन्धी—दो भागों म बाँटकर फिर गान के अवसरों के अनुसार उनका विभाजन किया है।[1] श्याम परमार न मुक्तक और प्रबन्ध दो श्रेणियों म गीतों को बाँटकर फिर छ प्रकार बताये हैं।[2] श्री कृष्ण देव उपाध्याय न संस्कारों का क्रियाओं की अवसरानुकूल भाव भंगियो से उत्पन्न हुए माधुर्य और संगीत को तथा ऋतु परिवर्तन द्वारा उत्पन्न हुए गीतों के भेदों की दृष्टि म रखकर भोजपुरी लोक-गीतों का वर्गीकरण किया है।[3] तथा डा० रामसिंह इत्यादि न

---

1 देखिये ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन (डॉ० सत्येन्द्र) पृ० 118

2 भारतीय लोक साहित्य (श्याम परमार) पृ० 64 65, 66

3 भोजपुरी लोक-गीत (कृष्णदेव उपाध्याय) पृ० 20 21

सारे लोक गीतों को गायकों की दृष्टि से पुरुष गीत, नारी गीत और बालक-बालिकाओं के गीतों में विभाजित करके फिर विषयानुसार उनके भेद उपभेद बताए हैं।[1] गायकों की दृष्टि से किया हुआ विभाजन तो पीछे लिखे अनुसार दोषयुक्त और अपूर्ण है ही, श्याम परमार और कृष्णदेव उपाध्याय के वर्गीकरण किसी भी सम्पूर्ण दृष्टिकोण को लेकर किए नहीं प्रतीत होते-गीतों की सूची में खण्ड मात्र से प्रतीत होते हैं। इन सब में डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण ही सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है क्योंकि यह एक ठोस दृष्टिकोण से किया गया है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न गीत गाए जाते हैं-इसलिए इस रूप के वर्गीकरण में समस्त गीतों की विधाओं का समावेश हो जाना चाहिए।

सारे गीतों को मरियो लीच ने दो नाम दिए हैं—फंक्शनल एण्ड एस्थटिक। वास्तव में यह विभाजन भी शुद्ध नहीं है क्योंकि गीतों के फंक्शनल और एस्थटिक तत्वों को नितान्त अलग नहीं किया जा सकता। फंक्शनल गीतों में भी एस्थटिक तत्व रहता ही है।

सब दोषों और अभावों का परिहार करते हुए लोक-गीतों के विषय वैविध्य की विशिष्टता को दृष्टि में रखकर विषयानुसार वर्गीकरण करना समीचीन प्रतीत होता है।

जन्म और विवाहादि संस्कारों के गीत तो भारत के लगभग सभी प्रान्तों में विविध पाए जाते हैं और व्यवसाय सम्बन्धी गीत जो श्रमपरिहार निमित्त व्यवसाय करते समय गाए जाते हैं भारत में एवं पाश्चात्य देशों में भी समान रूप से उपलब्ध हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त मेले-त्यौहारों के गीत, देवी-देवताओं, सिद्ध पुरुषों, ऐतिहासिक व्यक्तियों, सतियों और बाल्यों एवं पितर पितराणियों आदि के गीतों ने भारत के लगभग सभी प्रदेशों में अनन्य प्रकार मिलते हैं। अतः विषयानुसार वर्गीकरण सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। इस दृष्टि से लोक-गीतों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) संस्कार सम्बन्धी गीत,
(2) व्यावसायिक गान
(3) आवसरिक गीत तथा
(4) क्लासिक अथवा मनोरंजन सम्बन्धी गीत।

इन चार भेदों में लोक गीतों के लगभग समस्त प्रकार सम्मिलित हो जाएंगे। चाहे किसी भी दृष्टिकोण से परखने पर गीतों का कोई प्रकार नहीं छूट पायेगा न हो एक प्रकार के गीत दूसरे प्रकार के अन्तर्गत समावेश कर पायेंगे।

1 संस्कार सम्बन्धी गीत —

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक जो विभिन्न संस्कार किए जाते हैं उनसे सम्बन्धित गीत संस्कार विषयक होते हैं। कुल 16 संस्कारों में

1, राजस्थान के लोक-गीत पूर्वार्ध व उत्तरार्ध (ठा० रामसिंह श्री नरोत्तमदास स्वामी तथा स्व० श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित)

गीतों में सम्बन्धित प्रमुख संस्कार चार होते हैं—जन्म, उपनयन, विवाह और मृत्यु। इन चार संस्कारों के विभिन्न गौण अङ्ग हैं उनके अनुसार संस्कार विषयक समस्त गीतों के आठ भेद हुए एवं प्रत्येक भेद में भी कुछ के कई प्रकार के गीत होते हैं।

(क) जन्म सम्बन्धी संस्कारों के गीत —
1–सीमन्तोन्नयन के गीत,
2–प्रसव सम्बन्धी गीत, तथा
3–नामकरण, अन्नप्राशन, झडूले तथा कर्णछेदन के गीत।
(ख) उपनयन तथा विद्यारम्भ संस्कारों के गीत।
(ग) विवाह संस्कार के गीत —
1–सामान्य गीत,
2–कन्या पक्ष के गीत, तथा
3–वर पक्ष के गीत।
(घ) मृत्यु सम्बन्धी गीत।

2 व्यवसाय सम्बन्धी गीत —

व्यावसायिक गीत दो प्रकार के होते हैं जीविका सम्बन्धी और व्यवसाय करते समय श्रम परिहार निमित्त गाने के गीत। जिन गीतों को गाकर लोग जीविकोपार्जन करते हैं वे प्रथम श्रेणी के गीत हैं और खेती, ऊँट लाना कुँआ चलाना चक्की या चरखा चलाना अथवा अन्य कोई भी व्यवसाय करते समय गाये जाने वाले गीत दूसरी श्रेणी में आते हैं। इन दोनों के निम्नलिखित प्रकार हैं[1] —

(क) जीविका सम्बन्धी गीत —
1–नृत्य तथा नाट्य गीत,
2–रातिजगा कथागीत पौराणिक गीत भजन और हरजस आदि, तथा
3–विविध।
(ख) व्यवसाय करते समय श्रम परिहार निमित्त गाने के गीत —
1–कृषि सम्बन्धी ऊँट वालों के चरवाहों के,
2–कुआ चलाने के वालों गाने कुएँ पर पानी भरने वालियों के गीत
3–चक्की और चरखे के गीत तथा
4–अन्य व्यवसाय मजदूरी आदि करने वालों के गीत।

3 आवसरिक गीत —

अवसर विशेष पर गाये जाने वाले गीतों को आवसरिक कहा गया है। वास्तव में संस्कारिक गीतों के अतिरिक्त सभी अवसर विशेष पर गाये जाते हैं।

---

1 इनमें नृत्य गीत नाट्य गीत एवं रातिजगे के विभिन्न गीत केवल मनोरंजनार्थ भी गाये जाते हैं, जिनमें जीविका का ध्येय नहीं होता, इसलिए दोनों श्रेणियों में हैं।

अत इस श्रेणी के अन्तर्गत संस्कार सम्बन्धी और व्यावसायिक भी लाये जा सकते थे, परन्तु गीतों के वर्गीकरण की कठिनाई को सुलझाने और अधिक स्पष्ट रूप भेद करने के लिये संस्कार सम्बन्धी और व्यवसाय सम्बन्धी गीतों की अलग अलग श्रेणियाँ कर दी गई हैं। इस प्रकार आवसरिक गीतों का तात्पर्य यहाँ वर्ष के विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों से समझना चाहिए। आवसरिक गीतों के निम्नलिखित प्रकार हैं —

(क) देवी देवताओं के गीत —
1–देव चरित तथा देवी चरित,
2–पौराणिक और सिद्ध पुरुषों तथा
3–सतियों और पितर पितराणियों के गीत।

(ख) मेले त्योहारों और व्रत सम्बन्धी गीत —
1–होली के गवर के घुड़ले के तथा तीज के,
2–अन्य त्योहारों मेलों और व्रतों के गीत।

(ग) आस्था और भजन आदि के गीत —
1–भजन हरजस सबद सतवाणी सतगुरु और
2–तीर्थ यात्रा सम्बन्धी गीत।

4 वैलासिक गीत —

जो गीत संस्कार त्योहार अथवा व्यवसाय आदि किसी अवसर विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं और केवल मनोरंजन के लिये गाये जाते हैं—वे वैलासिक गीत हैं। त्योहार उत्सव या अन्य मांगलिक अवसरों पर व्यावसायिक गायकों से मनोरंजनार्थ गीत गवाये जाय वे भी इसी श्रेणी में आ सकते हैं, परन्तु गायकों का उद्देश्य जीविकोपार्जन होने के कारण हमने उन्हें इसमें सम्मिलित नहीं किया। जो गीत समय-समय पर बिना किसी आशय के परस्पर भावाभिव्यक्ति निमित्त गाये जाते हैं वही इस श्रेणी में आयेंगे। इन वैलासिक गीतों के निम्नलिखित प्रकार हैं —

(क) शृंगार रस के गीत —
1–रूप वर्णन
2–संयोग पक्ष तथा
3–वियोग पक्ष।

(ख) नृत्य गीत।
(ग) नाट्य गीत।
(घ) ऋतु सम्बन्धी गीत–जाड़ा, बसन्त गर्मी चौमासा और बारह मासा।
(ङ) पारिवारिक व्यक्तियों से सम्बन्धित सुखी गृहस्थी के गीत।
(च) भोज्य पदार्थों के गीत।

इन सब प्रकार के गीतों में निम्नलिखित गीत पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले हैं एवं कुछ गीत बाल्य जीवन से सम्बन्धित हैं जो अधिकतर बालिकाओं द्वारा गाये जाते

हैं। शेष सभी गीत नारी के हृदय की मधुर ध्वनि हैं। पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले गीत हैं —

(1) व्यावसायिक गीत प्रायः सभी पुरुषों के हैं।

(2) आवसरिक गीतों में से देवी देवताओं के कुछ गीत, तीर्थ यात्रा के, रातिजगा पर गाने के और होली की धमालें पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं।

(3) बलासिक गीतों में नृत्य गीत अधिकतर पुरुषों के हैं।

बाल्य जीवन से सम्बन्धित गीत निम्नलिखित हैं, जो अधिकतर बालिकाओं द्वारा गाये जाते हैं और साधारणतया उनमें इन्हीं के जीवन चित्र रहते हैं। हाँ कुछ गीतों में बालकों के गेंद आदि खेलने और ननिहाल जाने आदि के वर्णन हैं —

(1) संस्कार सम्बन्धी गीत।

(2) व्यावसायिक गीतों में—खेती की चराई आदि प्रकृत जीवन के गीत।

(3) आवसरिक गीतों में —

(क) राजस्थान में गणगौर और घुम्ले के गीत,

(ख) राजस्थान व उत्तर प्रदेश एवं कुछ दक्षिणी प्रदेशों में सांझी व झांझी टेसू के गीत कुँवारी कन्याओं तथा कुमार बालकों द्वारा गाये जाते हैं।

(ग) तीज के गीत जिनके अन्तर्गत झूले, वर्षा एवं ससुराल के दुःख व्यंजक और ससुराल जाने आदि के गीत होते हैं।

(4) बलासिक गीतों में —

(क) घूमर और लूर आदि नृत्यों के गीत राजस्थान में प्रायः बालिकाएँ गाती हैं।

(ख) मातृप्रेम के गीत-लोरियाँ और गेंद आदि खेल के तथा ननिहाल जाने के।

(ग) विवाह के बाद के गीत—पति और ससुराल का वर्णन करते वक्त सखी-सहेलियों के गीत प्रायः भारत के विभिन्न प्रान्तों में पाये जाते हैं।

इन गीतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नारियाँ हैं पर बालिकाओं के जीवन में आरम्भ से ही हृदय की भावुकता का परिचय मिलता है। बाल्य जीवन से ही वे घुड़ला घुड़ला नाजरा गौरी पूजन और सहेलियों आदि विषयों पर अनेक गीत गाती चली आती हैं। किशोरावस्था के समीप पहुँचने पर तो एक नया जीवन का रूप सामने आने लगता है जिसकी सुमधुर एवं विषय रूप वाणी कल्पनाओं में उनके हृदय में हाहाकार मचकर गीतों का सागर उमड़ पड़ता है।

राजस्थानी लोक गीतों की झाँकी

लोक-साहित्य में विविध रूपों में लोक गीत अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। लोक कथा और कहावतों आदि विधाओं की अपेक्षा लोक गीतों में कहीं अधिक भावात्मय और रंजन शक्ति है। जब-जब मानव हृदय प्रबल भावावेग में आप्लावित होकर अत्यधिक हर्ष या शोक अनुभव करता है तब-तब उसके मानस से स्वर लहरियाँ फूट पड़ती हैं। मौखिक परम्परा से प्राप्त इन गीतों द्वारा विभिन्न कालों और स्थानों की बोलियों सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति और ऐतिहासिक व राजनैतिक पहलुओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्येक विषय का अध्ययन करने हेतु लोक गीत हमारे लिये साधन उपस्थित करते हैं।

विदेशी विद्वानों ने भी लोक गीतों के सामाजिक महत्व पर बल दिया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार तो लोक गीतों को मनुष्य की उत्पत्ति, विलास और रीति रिवाजों की विद्या ही बना दिया गया है।[1] वास्तव में लोक गीतों में व्यंजित आचार विचार रहन-सहन खान-पान रीति रिवाज, धर्म विश्वास और मान्यताओं के आधार पर मनुष्य के सामाजिक इतिहास का अध्ययन श्रेष्ठ होता है।

स्काटलैण्ड के देशभक्त फ्लैचर ने कहा था— किसी भी जाति के लोक गीत उसके विधान से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। हमारे ये लोक गीत राष्ट्रीय सन्तुलन बनाए रखने और विश्व-बन्धुत्व की भावना स्थापित करने के परम साधन हैं। लोक गीतों में आत्म-तत्व की प्रधानता एवं प्रबलता होने के कारण आत्मा के विकास की पूर्ण सामर्थ्य है। आत्मा का विकास ही वस्तुतः विश्व-बन्धुत्व की ओर प्रेरित करता है। इसीलिये लोक गीतों में व्यक्तिगत भावों की व्यंजना के स्थान पर सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। यह आत्म-तत्त्व अव्यक्त होने के कारण आधुनिक विज्ञान के बाहर की वस्तु है—इसी से विज्ञान के द्वारा केवल भौतिक समृद्धि बढ़ रही है परन्तु आत्मिक विकास के अभाव में मानवीय भावनाओं का विकास सम्भव नहीं फिर विश्व बन्धुत्व की स्थापना कल्पनातीत ही होगी। आत्मभाव के प्रसार से ही विश्व प्रेम जागृत हो सकता है और लोक गीत इस आत्मतत्व के स्रोत हैं।

---

1 No sharp boundary is drawn by English practice between the folk lore and that of Social Anthropology

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोक गीतों को 'प्रकृति के उद्गार' और महात्मा गांधी ने इन्हें "समूची संस्कृति के पहरेदार" बताया है। पर्ल के अनुसार "लोक गीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है।"

राजस्थानी लोकगीतों में यह उल्लास, उत्साह, उमंग और भावातिरेक विश्व भर के लोकगीतों से तुलना करने पर भी सर्वाधिक पाया जायगा। जब लोक मानस आनन्द में गद्गद हो उठता है या वेदना का स्रोत प्रवाहित होने लगता है तो स्वतः प्रेरित भाव लहरियाँ लोक मानस से प्रवाहित होने लगती हैं—ये ही लहरियाँ लोक गीत नाम से अभिहित होती हैं—न इनकी रचना का कोई स्वरूप है न नियमावली। न लोक गीतों के मूल रचयिता का पता है,[1] न रचना काल का। कौन गीत कब किस कंठ से निकला था इस विषय की खोज का कोई साधन नहीं। जन जीवन के विविध प्रसंगों में जन मानस में जो भी भाव उमंग बन कर फूट निकले वही गीत का रूप धारण कर गये हैं—पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परम्परा से प्राप्त ये गीत आदिम काल से लोक जीवन में व्याप्त हैं। समय के प्रवाह में गीतों की कुछ कड़ियाँ टूट जाती हैं कुछ नई जुड़ जाती हैं और कुछ समाज व परिस्थिति के अनुरूप भावों के आवेग में नई प्रवृत्ति हो जाती हैं—इस प्रकार राजस्थान में विविध अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों की झाँकी प्रस्तुत की जाती है।

लोकगीतों का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमें हमारे समाज और देश के प्राचीन गौरव और आदर्श की उच्च भावनायें प्रत्यक्ष रूप में व्यंजित होती हैं। एक एक गीत में कितना उच्च भाव भरा हुआ है यह इन गीतों के अध्ययन से विदित हो सकता है। राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास, यहाँ की सांस्कृतिक परम्परायें, लोक देवी देवताओं के प्रति आस्था, मनोरम तीज-त्यौहार तथा पुत्र जन्म विवाहादि उत्सवों पर उच्छलित भावावेग और चित्ताकर्षक स्त्रियों की चटकीली भड़कीली पोशाक व आभूषणों की झनकार सभी ने लोकगीतों को जन्म देने में विशिष्टता उत्पन्न की है।

विदेशी अभ्यागत 'कर्नल टाड' ने अपने 'एनल्स एण्ड एण्टिक्विटीज' ग्रन्थ में अनेक ऐसे वर्णन दिये हैं जिनसे राजस्थान के प्राकृतिक वैभव और वैविध्य का दिग्दर्शन मिलता है जिससे यह भूमि लोक मानस की उर्वरता के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र बन गई। इसी कारण यहाँ लोक साहित्य और लोक वार्ता का एक अखण्ड भण्डार मिलता है।[2] कर्नल टाड ने इस बिखरे हुए लोक वैभव को श्रद्धा भरी दृष्टि से देख कर राजस्थान के लोक जीवन का अध्ययन करके उचित परिप्रेक्ष्य में अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। टाड ने यहाँ के शौर्य के साथ धार्मिक मान्यताओं और रंग बिरंगी वेश भूषा आदि का ऐसा मनोहारी सजीव चित्रण किया है जिससे लोकगीतों की स्वर लहरियाँ प्रवाहित होना स्वतः सिद्ध है।

---

1 लोक गीतों की पगडण्डियाँ पृष्ठ 160

2 लोक गीतों की पगडण्डियाँ

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक गीता के रसोद्रेक का उल्लेख करते हुए लिखा है "लोक के साथ सम्पर्क में रह कर हमारे जीवन में रसे हुए स्रोत फूट कर बहने लगेंगे और रस ग्रहण करके टूटे हुए तन्तु फिर अपने तार से जुड़ सकेंगे।"[2] क्या ही मर्मस्पर्शी तथ्य है जो लोक गीता का सामाजिक महत्त्व प्रतिपादित करता है। राजस्थान के लोक गीतों में भावों का यह अगाध भण्डार प्रचुरता से दर्शनीय है। क्षण क्षण के भाव उनमें बंध गये हैं। भावों की गहनता और व्यापकता उनमें कलात्मक एवं आश्चर्यजनक ढंग से घुलमिल गई है। इस प्रकार का एक बधाव का गीत है जिसमें सास बहू का वार्तालाप कितना भावाभिव्यंजक एवं मनोहारी है—एक आदर्श गृहस्थ के पारस्परिक स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का अभिव्यंजक—

> बहू रिमझिम महलां से ऊतरी।
> बहू कर सोलह सिंगार आज म्हारी आमली फलियोजी टेक।
> म्हारा सासू जी पूछे ए बहू थारा गहना रो अर्थ बताए।
> सासू गहना जी गहना के करो–सासू गहना म्हारो से परवार।
> म्हारो सुसरो गढारी राजवी, सासूजी म्हारा अर्थ भण्डार ॥
> म्हारा जैठ बाजूबद बांकड़ा, जीठाणी म्हारी बाजूबदरी लूम।
> म्हारा देवर चुड़ला दांत को, दोरानी म्हारी चुड़लारी टीप॥
> म्हारी ननद कसूमल कांचली, नणदोई गज मोतियां री हार।
> म्हारा कंवर जी कुल का दीवला, म्हारी बहू म्हारे दिवला री जोत॥
> म्हारी धीयल कलीय अनार की, म्हारा जंवाई चपल्यारा फूल।
> म्हारा साहिबा सिर का सेवरा, साहिबाणी म्हारी सिवरारी लूम॥
> आज म्हारी आमली फलियोजी॥

सासूजी के उद्‌गार हैं—

> म्हे तो वारा जी बहूजी थारी जीव न।
> लडायो म्हारो सो परिवार।
> म्हे तो वारां जी सासूजी थारी कोख न।
> थे तो जाया अर्जुन वीर।
> म्हे तो वारा जी बाईजी थारी गोद न।
> खिलाया थे तो अर्जुन भीम॥ आज म्हारी आमली०

अनेक आवश्यक वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि राजस्थान की भूमि में वे तत्त्व विद्यमान हैं जिनके दर्शन से मानव में लोक मानस से स्फूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं—वे स्फूर्तियाँ अवचेतन के स्तरों को बाँधकर चेतन में क्रीड़ा करने लगती हैं, जिससे लोक गीत स्फुरित होते हैं। ये गीत निम्नलिखित प्रकार के विविध अवसरों पर गाये जाते हैं—

---

2 आमुख धीरे बहो गंगा देवेन्द्र सत्यार्थी

1 संस्कार सम्बन्धी गीत।
2 पर्वोत्सवों के गीत।
3 वैलासिक अथवा मनोरंजन सम्बन्धी गीत।
4 व्यवसाय सम्बन्धी गीत।

इन भेदों में लोक गीतों के प्रायः सब प्रकार आ जाते हैं—उनमें से यहाँ कुछ विशिष्ट विधाओं के अत्यन्त लोकप्रिय गीतों का सोदाहरण चित्रण किया जाता है।

1 संस्कार सम्बन्धी गीत—हिन्दू शास्त्रों में वर्णित मनुष्य के जन्म से मृत्यु पर्यन्त 16 संस्कारों में से चार प्रमुख माने गए हैं—जन्म, उपनयन, विवाह और मृत्यु। इन सभी अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में जन्म और विवाह सम्बन्धी गीत सर्वाधिक संख्या में मिलते हैं और विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(क) जन्म सम्बन्धी गीतों में राजस्थान में पुत्र जन्म के अवसर पर हालरे या साहरे गाई जाती हैं और नाल काटने के गीत, पीपली, झूँटणा पगल्याँ, पालना, पीलिया चिणुटियाँ घूघरी तथा जलवा पूजन आदि के गीत अत्यन्त हृदयग्राही होते हैं। बालक के जन्म के अवसर पर आरम्भ में जो-जो भाव हृदय में उठते हैं उन्हीं के अनुसार स्त्रियाँ गीत गढ़ लेती हैं। सारे गीत इसी भाव जगत की सूत्र बद्ध कड़ियाँ हैं। कुछ नमूने देखिये—

शिशु जन्म से पूर्व प्रसव पीर से विह्वल जच्चा की मनःस्थिति का व्यंजक 'साहरे' गीत—

'सुसरा सा ने बेग बुलाय हताया सूँ,
यूँ म्हारे काले कमर में पीड़ अब नहीं जोऊँगी।
म्हारा सासूजी ने बेग बुलाय रसोइयाँ सूँ,
यूँ म्हारे काले कमर में पीड़, अब नहीं जोऊँगी।।''

पुत्र को जन्म देने वाली जच्चा के महत्व की अभिव्यक्ति में गीत के बोल हैं—

जच्चा ए थारे माथे ने अमर स्यायो।
महल में आवजो जी जच्चा ए, थारे कानां में कुंडल स्यायो।।
महल में आवजो जी, नवराली महल में आवजो जी।''

राजस्थान में बधाई रूप जच्चा के पीयर का 'पगल्या' भेजने की प्रथा है।[1] इस भाव का द्योतक गीत है—

---

1 सफेद कपड़े के चारों कोने पीले रंग कर बीच में बालक के पाँवों का चित्र माँड कर आस-पास स्वस्तिका बना देते हैं। गुड़ बाँध कर नाई के साथ पीयर भेजते हैं।

जच्चा राणी ने जन्म्या है पूत, पगल्या तो भेजोजी,
कँवर सा म्हारे म्हारे बाप क।
बाबोसा म्हारा कहीजे दातार,
याने नेवगो जी, देसोजी हस्तो झूमतो,
माऊजी म्हारी कहीज दातार,
थान देसो नेवगो गला का बाडला ॥

जच्चा को जो जा मसाले मवा शिशु जन्म पर न्यि जात है सभी पर गीतो की रचना हुई है—गूद सूठ जीरो अजवाइन आदि। पीपली इनम प्रतिनिधि लाकगीत है इसम जाप की सम्पूर्ण विधि पर प्रकाश डालने के अतिरिक्त जच्चा के लाड चाव का भी उल्लेख है—

"हे म्हारे उत्तर दिखणरी ए जच्चा पीपली।
हे म्हारे पूरब नमि नमि डाल रे।
हे म्हाने घणी ए सुहाव, जच्चा पीपली
हे थारे गीगो[1] ए जलमियो आधी रात ए,
हे थारे गुड बटेगो परभात।
हे म्हाने घणी ए सुहावे जच्चा पीपली ॥

आगे गात म जापे की सारी प्रथाओं का वणन है। शिशु जन्म के दसव न्नि दसोठन सस्कार होता है उसे माथा धोणा भी कहते है—अन जच्चा का स्नान कराने का भी गीत है—

"लाडडले सू ऊतरी, पाटल हेट पग धारिया ॥ पाटल०
पग धरती सूरज को मुख देख्यो।
भला सूरज को मुख देखता साँई को मुख देखियो ॥'

बुआ बालक के लिए कपडे लत्तर आती है वस्त्राभूषणों के नाम न-ल वर गाये जाने वाले न्न गीतों को बधावा कहते है। भाई-बहन के सात्विक प्रेम का उज्ज्वल रूप इन गीतों म झलकता है। बधावे के गीतों म सांस्कृतिक भावों का सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

हरियल डाब और गुड़ नारियल आदि मांगलिक अनुष्ठानों के सांस्कृतिक प्रतीक रूप हैं।

छठी बारहवें क न्नि सूर्य पूजा होती है—राजस्थान म सूर्य पूजा के समय जच्चा पीयर से आया हुआ पीलिया बड़े चाव से पहनती है—पीलिये के गीत भी बडे भावगर्भित होते हैं—

---

1 गीगा=बच्चा।

2 दक्षिय पूरा गीत राजस्थानी लोक गान पूर्वार्द्ध—गीत संख्या १२२।

"हाँ ए जच्चा माथा ने मैंमद लावजो ए जच्चा रखड़ी रतन जड़ाय,
सिरदार जच्चाए उमराव जच्चाए थे तो महोल बधन रो पीलो ओढो।"[1]

नामकरण संस्कार के दिन 'जलवा' पूजन होता है, उसी दिन गेहूँ की घूघरी बाँटी जाती है—इस प्रसंग का गीत बड़ा मनोरंजक है। इन गीतों में ननद भौजाई के मनमुटाव की व्यंजना मिलती है—जच्चा कहती है नाई से कि इधर उधर सब जगह घूघरी बाँट आना पर ननद बाई के घर मत देना—आदि आदि।

शिशु जन्मा है उसके लाड चाव में लोरियाँ गाई जाती हैं, जिनमें टाबी उछाल बोठना पहनाने और दूध पिलाने आदि सारी क्रियाओं पर प्रकाश पड़ता है।

जन्म से पूर्व गर्भवती स्त्री के मन की साधें पूरी करने के गीत भी होते हैं। खान पीन की एक-एक चीज पर गीत रच गये हैं—गोरी का निबुड़िया पर मन जाय गोरी रा लापस्या पर मन जाय[2]—आदि आदि।

(ख) विवाह सम्बन्धी गीत तीन प्रकार के होते हैं—कन्या पक्ष के द्वारा गाये जाने वाले वर पक्ष द्वारा गाये जाने वाले और सामान्य विनायक स्थापना लगन के गीत महदी लगाने के आरता, उबटन, पीठी व तेल के गीत नौत के गीत और मायरे के गीत दोनों पक्षों में समान होते हैं। इनमें सर्वाधिक मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना वाले मायरे (भात) के गीत हैं जिनमें भाई बहिन के उत्कृष्ट प्रेम के मनोहर चित्र मिलते हैं। भात भरना भाई का कितना महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है यह भात के गीतों में चित्रित होता है। विवाह-पूर्व बहिन अपनी सास ननद जिठानी आदि को साथ लेकर पीहर भाई को निमन्त्रण देने जाती है—इसे भात न्योतना कहते हैं। इस अवसर का गान कितनी पवित्र भावनाओं का व्यंजक है—

"पान सुपारी पानरो बिड़लो, मैं तन रे बीरा न्यूतण आई।
राजन साथीड़ा वास आई न्यूतण आई॥"

इसी प्रकार न्योते हुए भाई की बाट जोहती हुई बहिन के भावोद्गार गीतों में प्रकट हुए हैं—

"उड बायड़ा म्हारा पीवर जा ने बैठ पियरे मातवी जे,
मत सुनो रे म्हारा बाह् बवर सा बीर, भलो भतीजा भावजो न।"
भारत बीरा, भावज ने उढाय, म्हाने घणा मोला री चूंनड़ी जे।
सुसराजी ने बीरा, सिरमो उढाय, सासूजी ने साड़ी सापड़ जे।
म्हारे जेठा न बीरा साल दुसाल, देवरा न पिलण मोलाय जे।
म्हारी ननदो ने दिखणी चीर, देराण्या जेठाण्या ने पीला पोमचा जे।
उड बायड़ा०

1 पूरा गीत संग्रह राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2 गीत संख्या 32।
2 इस विषय के कई गीत राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2 में दिये गये हैं—गीत संख्या 38–48 तक।

भाई द्वारा उढ़ाई जाने वाली चूनडी का गीत है—

"आयो छ माँ को जायो बीर, हीरा जड ल्यायो
ओढ़ूँ तो हीरा रे बोरा झड पड़ें,
मेलूँ तो तरसे बाई रो जीव, हीरा जड ल्यायो ॥"

गृहस्थ जीवन की अनेक उलझनों के मध्य भी भाई बहिन के उज्ज्वल पुनीत प्रेम की ज्योति छिपी रहती है जो अवसर पाकर इन भात के गीतों में प्रकाशित होती है जिसकी मधुर स्मृति सांसारिक जीवन के कटु अनुभवों का सुखद रूप दन म समय होती है। रातिजगे में देवी-देवताओं के गीत और भजन आदि गाये जाते हैं। राजस्थान में विवाह के अवसर पर रोडी पूजने की प्रथा है—इस गीत में वर कन्या के भावी जीवन में सुख समृद्धि की कामना की जाती है—

अणी रोडी पूज्यां म्हाने लादो मोतीडारो हार,
अणी रोडी नूँतता म्हाने लादो जडियो धन रो।
धन सूँ व्यापार चला दियो म्हें तो वणग्यो माला माल।[1]

कन्या पक्ष के गीत—कन्या पक्ष के सामान्य गीत बनडी नाम से अभिहित होते हैं जिन्हें उत्तर प्रदेश में सुहाग बोलते हैं। इनमें प्राय कन्या अपने बाबा बाप आदि से अनुरोध करती है कि मुझे ऐसे घर देना वैसे घर मत देना आदि—किन्हीं में कन्या के शृंगार व वस्त्राभूषणों का वर्णन तथा बारात देख कर सखियों द्वारा बनडे की प्रशंसा आदि पाया जाता है।[2] विशेष रस्मों पर गाये जाने वाले राजस्थान के विशिष्ट गीत हैं—तोरण समेला कामण चवरी का गीत जुआ-जुई सलावें, सम्वालन आदि। इनके अतिरिक्त कन्या की विदा के समय गाये जाने वाले लोकगीत अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं करुण रस से ओत प्रोत होते हैं। विदा के इन गीतों का विशिष्ट नाम भी है—ओलूँ कोयल मीजलिया और बधावे भी होते हैं। बधावों में कन्या के मर्म स्पर्शी चित्रण के साथ ससुराल पहुँचने पर उसके परिवार की मंगल कामना एवं सौभाग्य समृद्धि हेतु आशीषों की भावना अभिव्यक्त होती है।

बारात की अगवानी के समय पुरोहित मन्त्रोच्चारण के साथ दोनों पक्षों का सम्मेलन करवाता है उस समय स्त्रियाँ समेला गाती हैं—

हालो बन्ना हालो नी तोरण चालाँ,तोरण छडी लगावो जी।
हालो बन्ना हालो सहेला चाला, सहेले में सब रंग ल्यास्याँ जी राज।
हालो बन्ना हालोनी मायाँ[3] चालाँ, मायाँ में मंगल गास्याजी राज ॥

---

1 पूर्ण गीत देखिये—राजस्थानी लोक गीत (डा० स्वर्णलता) पृष्ठ 74।
2 गीतों के नमूने देखिये—राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2 के संख्या 78–84 तक।
3 घर के भीतर थापा आदि रखकर विवाह कार्य से पूर्व जहाँ विनायक स्थापना होती है उसे माया कहते हैं। तोरण की रस्म के पश्चात् बनडे को माया में पूजा हेतु ले जाया जाता है।

बारात के स्वागत के समय हास्य विनोद होता है—'कामण' गीता मे बारातिया पर उपहास रूप मे गालिया की बौछारें होती है। बनडे के सामन गाया जान वाला नखशिख वर्णन है—

> "थे घर लखपतियां र जन्म्या, सुण्यो ए सुजान चन्दजी।
> सुण्यो म्हारी बाईजो घणा हुकम उठावणा, धनडा ओ रे,
> थारो ओलडियां रो पाणी, झीणी केसर छाणी।"

कुंवर कलेवा जनवास मे लेकर स्त्रियां आती हैं वहा गया जान वाला जला' गीत अत्यन्त विनोदपूर्ण और मनोरजक होता है। इस प्रकार के गीता म बनडे पर उलाहना की बौछारें होती हैं। 'हथलेवा' की प्रथा राजस्थान की अपनी है। वर कन्या के हाथ महन्दी स जोड वर कन्या के भाई भावज उन्हे विवाह मण्डप म ले जाते हैं—पाणि ग्रहण सस्कार के लिय पुरोहित 'हथलेवा' जोडता है उस समय के गीत हथलेवा कहलाते हैं—विवाह मण्डप को चेंवरी' कहते हैं—मण्डप की सजावट चन्दनवारा जल कलश और रोला महदी हल्दी व पुष्पादि मागलिक द्रव्या से चौक पूर कर की जाती है जो आधुनिक बिजली क रग बिरगे बल्वा तथा रगमी झिलमिलाती झालरा से सजाई गई वदी की अपेक्षा कही अधिक सुन्दर मनोहर एव सास्कृतिक भावनाओं का विकसित करने वाली होती है। इस चेंवरी के भी गीत होते हैं—

> "इण चेंवरी इण चेंवरी रामचन्दरजी न सीताजी चढ्या,
> ज्यां थे चढो हो रग भीना।
> इण चेंवरी इण चेंवरी सूरज जी न राणा दे चढिया।
> ज्यां थेई चढो हो केसरिया"

फेरा के पश्चात् हथलवो, पीरियारो धम तथा फेरा के अन्य गीत गाये जाते हैं जिनम राजस्थान म पाणिग्रहण सस्कार की पूरी प्रक्रिया पर प्रकाश पडता है अा, फिर जुआ-जुई[1] सलोवे[2] आदि के गीत होते है। बारात जीमते समय गान क गीतो म एक तम्बाकन' गीत मुख्य है जिसम बड व्यग्यपूर्ण ढंग स भगवान् क अवतार और पौराणिक पुरुषों के गुणगान व शृगार भोग प्रसाद आदि का आलकारिक वर्णन है।

विदा के गीतो क नमून है—

> "वन खण्ड की ए कोयल वन खण्ड छोड कठ चली
> थारो आले दिवाले गुडियाँ धरी॥ वन खण्ड को०"[3]

---

1 कँगना खलने की प्रथा का राजस्थान म जुआ-जुई कहत हैं।

2 फेरा के बाद वर कन्या को माया' म ले जा कर मत्र स्त्रियां व्यग विनोद हास परिहास करती हुई वर स सलोवे कहलवाती और नग दती हैं।

3 पूरा गीत देखिये राजस्थानी लोक गीत प्रथम खण्ड, पृष्ठ 82

कोयल से जाती हुई कन्या की उपमा में क्या ही भव्य कल्पना है। जिस प्रकार कोयल के चले जाने पर उपवन में वसन्त की शोभा नहीं रहती उसी प्रकार बिटिया के ससुराल चले जाने पर माता पिता का घर माधुर्य हीन हो कर विसूरने लगता है। पूरे गीत में समग्र परिवार की विरहावस्था का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

हाड़ौती भाषा के एक कन्या की विदा के गीत में बाई के रथ के पीछे-पीछे नंगे पाँव भागते हुए दादाजी, काकाजी, वीराजी का अत्यन्त मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।[1]

धानू —कन्या पीयर की याद कर-कर के रुदन करती है—

> "ओलूँ मामासा री आवे है।
> ओलूड़ी आवो सा री आव हो हजा माह नहीं हाथू थाँरोड़ देस।
> ओलूं थारी मादलिये मेंडाऊ हे माता राणी, ले चालूँ म्हारोड़े देस।।"

कन्या पक्ष के गीतों का कोई अन्त नहीं आर-पार नहीं - स्त्रियों के हृदय की भाव लहरियाँ अनेक रूपों में प्रवाहित हो उठती हैं—विदा का दृश्य तो होता ही हृदय विदारक है। महाकवि कालिदास की शकुन्तला की विदा के समय वीत राग कण्व ऋषि के भी हृदय के बाँध टूट गये थे। विदा के एक गीत में माँ बेटी का पालन की मुसीबता का वर्णन करके कहती है—

> "ओ सासू गाल मत दीज्यो।

एक और गीत में पति को परदेसी सूवटा कहा है—

> "आयो परदेसी सूवटो, टेग्यो टोली मे सु टाल
> कँवर बाई सिध चली ए।"[2]

इनके अतिरिक्त मुरलाव के गानों में जवाई जाजाजी नणदोइजी आदि अनेकों गीत हैं जो हास्य विनोद से पूर्ण होते हैं।

वर पक्ष के गीत—वर पक्ष के गीतों में प्रारम्भिक रस्मों के सामान्य गीतों के अतिरिक्त बनड़ा घोड़ी सेवरा और जान के गीत होते हैं तथा नव वधू के स्वागत में वधावे गाये जाते हैं। बनड़ा आदि गीतों में बनड़े के शृंगार घोड़ी की सजावट सेवरा का अलंकारिक वर्णन के साथ-साथ बना बनी की भावी उमंगों और दादा-दादी काका-काकी बहिन बुआ आदि के लाड प्यार का चित्रण होता है।

बनड़े की पोशाक तैयार करने के एक गीत में चरखे से सूत कात-कात कर बनाने का वर्णन भी है जिसमें आधुनिक गाँधीवादी युग की झलक मिलती है।

---

1 गीत संचय—राजस्थानी लोक गीत—खण्ड 2 क संख्या 104

2 गीत संचय—राजस्थानी लोक गीत—खण्ड 2 क 87

राजस्थान में विशेषकर जैसलमेर की प्रथा है कि बनड़े के ससुराल वाले अपने घर पानी लाकर विवाह वाले दिन स्नान कराते हैं—यह स्नान का गीत सभी जगह गाया जाता है।

"न्हायले धोयले हो लाडकड़ा थारे पगलाँ रे हठ गगा बहै।
जिठ म्हारो धणा पखारो मामाजी रो प्यारो न्हायले।
जिठ सूरजजी ए म्हारे राणादे जो आय सो।
राणा दे जी रे घर बधावणों ए बाई सूरज जी।"

बारात (जान) चलते समय के 'जान' गीत में बनड़े के मन की उमंग की हृदयहारी अभिव्यक्ति हुई है—

"केसरियो लुड लुड पाछला घेरे,
जाने म्हारी जानडली बाबोसा पधारे॥"[1]

बधावे के गीतों में वधू के भव्य स्वागतार्थ मांगलिक भावनाओं की प्रतीक वन्दनवार बाँधना, चौक पूजना, हरी हरी डाली सहित वधू के शिर पर जल पात्र कलश रखना आदि का वर्णन होता है—

"फूला भरिया छाबड़ो रामा, मालण तू सिध जाय।
भद जी घरां बधावने जी बांधूलो बादरवाल॥
बधाओ दीनानाथ रो हरि राम बाधूलो बांदरवाल॥"

बना-बनी के प्रथम दर्शन के गीत 'सुहागरात' कहलाते हैं—इनमें बने की ओर से बनड़ी के रूप और शृंगार की प्रशंसा एवं घूँघट खुलवाने का आग्रह अत्यन्त हृदयहारी होता है। एक ऐसे गीत में घूँघट का हार जड़ा और उसकी ज्योति १६ सूरज उगने के समान बताई है जिसमें बनड़े के हृदय की उमंगों की सुन्दर व्यंजना हुई है।[2]

2 पर्वोत्सव सम्बन्धी तीज त्यौहारों के गीत—धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के असंख्य गीत देश भर में बिखरे पड़े हैं जिनमें साधारण जनता के हृदय में प्रवाहित भक्ति के स्रोत का अनुमान हो सकता है। धार्मिक आस्था सम्बन्धी गीतों से सैकड़ों पीढ़ियों की आत्मा का परिचय मिलता है।

राजस्थान में इस श्रेणी के गीतों में अनेक प्रकार के गीत प्रचलित हैं—जिनमें मुख्य हैं देवी देवताओं के गान सतियां बाबा पितर पितराणियां एवं भामियों के गीत, भजन हरजस और तीर्थ यात्रा से सम्बन्धित गीत।

यहाँ अनेक देवी-देवताओं की मान्यता है—पौराणिक देवतागण विनायक हनुमानजी शिवजी सत्यनारायणजी, सूर्य देवता और शनि देवता आदि के अतिरिक्त

---

1 गीत संग्रह—राजस्थानी के लोक गीत (पूर्वार्द्ध) संख्या 89।

2 इसी प्रकार परिवार के सभी बारातियों के नाम लेकर गीत आगे बढ़ता है।

राजस्थान म स्थानाय लाक देवी दवता अनका हैं। इन सब पर गाय जान वाल गीत व्रत अनुष्ठान तथा तीथ यात्रा स जुडे हे। कई गीता स राजस्थानी नारी की गहन आस्था का आभास मिलता है—यहाँ तक कि घर के आगना म भी दवरो (छाट छाट देवस्थान) की स्थापना का उल्लेख है— 'पावनी रा देवरो म्हारे आग णिया र बीच।

बालाजी के गीता म हनुमानजी की राम के प्रति भक्ति और पूँछ स लका भस्म करन क वर्णन द्वारा उनक अलौकिक महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

> कौन तेरी माता, कौन तेरा पिता, कुण ने नाम धरया री हनुमान,
> जय बोलो बालाजी री"[1]

अनुष्ठानादि अवसरा पर सूय की मान्यता अधिकता स है—

> "सूरज थान पूजस्यां, भर मोत्यां रो थाल।"

लोक दवी-दवताआ मे—भराजी रामदवाजी, पाबू राठौड तजाजी (जाट) गागा (चौहान), जांभजी भभूता सिद्ध भामिया[2] जीण माता और सकराय माता राजस्थान म अत्यधिक मान्यता प्राप्त हैं—इन सभी पर रच हुए गीता स जनमानस म प्रवाहित भक्ति क स्रोत का परिचय मिलता है। य सभी प्रकार के गीत रातिजगा म तीथ यात्रा म दय यात्रा म गाय जात हैं और मालीगण खेता म पानी दते समय श्रम परिहार हतु गा गाकर भक्ति का स्रोत प्रवाहित करते हैं।

राजस्थान म पावनी मगल और जानकी मगल जन काव्या की कथा आयोजित करना पुण्य कृत्य माना जाता है—कथा की समाप्ति पर कथा गायक के भेंट चढाइ जाती है। इन जन काव्या म वर्णित अवतारा के विवाहादि की कथाओ म भी साधारण लोक जीवन की प्रथाओ का रग दिया गया है यह इन की विशेषता है। जस—

> महादेवजी तोरण आया जद,
> सखियाँ रल कामण गाया।" आदि आदि

पाबूजा के भक्त भाप कहलाते है—य पाबूजी के शौय के चित्रित फड लिय सब जगह घूमत है और रावण हत्था लाक वाद्य पर गा गाकर भक्ति भाव स नत्य भी करत है। राजस्थान क उदयपुर और भीलवाडा क्षेत्रा म भीला की बस्ती है उनक महान आराध्य दव भरव हैं—उनके गीत व मान्यता अखिल राजस्थान म फली हुई ह। भीला म विवाहादि अवसरा पर गाय जाने वाल गीत अत्यन्त सरस और अथ पूर्ण हात है—

---

१ पूरा गीत उद्धत है राजस्थानी लोक गीत पृ० ९७।

२ पितर पित णिया की भाँति ही कँवार मृत्यु का प्राप्त हानवाल जन भामिया कहलात हैं।

भरु थाने पूजां।
भरू झालर नो झमको लागे, थान पूजा॥

राजस्थान के लोक जीवन म प्रचलित गगा यात्रा के सामूहिक गीत बड मधुर और भक्ति भाव से पूर्ण हैं। जब ये गीत समवत स्वर म हरै द देर गाय जात ह तो समस्त वातावरण गूंज उठता है।

पर्वोत्सव सम्बन्धी गीतो म त्यौहारा और मेला ग्रनो के गीत ग्रपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। त्यौहारा और मेला का यथार्थ स्वरूप लोक जीवन म मिलता है— राजस्थान इस दृष्टि से सर्वोपरि है। विभिन्न मेला और त्यौहारा पर गाये जान वाल लोकगीत इस देश की ग्रमूल्य थाती हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। लोकगीतो की विशिष्टता की दृष्टि म राजस्थान म तीज और गणगौर क त्यौहार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। धार्मिक ग्रास्था के साथ साथ ही इन त्यौहारा पर ग्रायाजित मल है जिनसे सम्बन्धित गीत ब॰ मनोहर मधुर ग्रार सांस्कृतिक भावनाग्रो के परिचायक होत हैं।

राजस्थान के मरु भागा म जितन ग्रधिक मेले होत हैं उतन ग्रन्यत्र नहीं। मरु भूमि म जहां भी छोटी मोटी ताल-तलया पहाडी या प्राकृतिक सौन्दर्य की भूमि हुई वहां पूवजो ने किसी न किसी दवी-दवता की स्थापना कर दी और उस जगह हजारो की सख्या म जनता इकट्ठी होन लगी—उन मरु सम्मिलन जीवन म मनोरजन क साधन बन गय जो मल नाम स ग्रभिहित हुए।

मल और पर्व एक दूसर स सम्बन्धित है। शास्त्रानुबन्धित पर्व पर्व कहलात ह ग्रौर लोकानुबन्धी मनोरजनात्मक ग्रवसर उत्सव कहलात हैं। इनस सम्बन्धित गीत सदा स जातीय जीवन म प्रवाहित होत ग्राय हैं।

गणगौर घुडले ग्रौर तीज क गीत—गौरी पूजन भारतीय सस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण ग्रग है—उसीका एक रूप राजस्थान म गणगौर नाम स विहित है जो वष म दो बार चत्र सुदी तृतीया चतुर्थी ग्रार भाद्रपद सुदी तृतीया चतुर्थी को राजस्थान क बड-बडे नगरो म मन क रूप म मनाया जाता है। इन मलो म छोट नगरा ग्रार गावो की जनता भी बड हर्षोल्लास सहित ग्राकर सम्मिलित होती हुई ग्रानन्द मनाती है। राजस्थान म कु वारी कन्याग्रो तथा सौभाग्यवती स्त्रियो के वष के सर्वाधिक हर्षोल्लासपूर्ण पवित्र सांस्कृतिक पर्व है। इन ग्रवसरो पर जब व व्रत रखती, कहानी सुनती है ग्रौर कसर कसुम्बल रगो की गाट बनार स भिलमिलाती हुई पोशाको तथा ग्राभूषणो स सुसज्जित गवर क गीत गाती हुई झुंडो म निकलती है—वह दृश्य दखने योग्य होता है। गवर ग्रौर तीज क इन गानो म महिला जगत की मनोभावनाग्रो की झांकियां मिलती हैं।

"गवर गढां सूं उतरी ए।
हां ए गवरजा हाथ कवल सिरफूल, बाग मे चालए।

बागा रो काई देखवो ए गवरजा देरया अलवर सहर बाग मे चाल ए
थोटी वासक नागरी रे हाथ कवलरो फूल, बाग मे घालए ॥
गवर गढ़ा सूं॰

गवर के एक गीत म गवर का अत्यन्त मनोहारा नख शिस वणन है। विदेशी अभ्यागत कनल टाड न इन मेला और गीता से प्रभावित होकर अपनी पुस्तक म गौरी स्नान आदि का अति सुन्दर वणन किया है।

भात के गीता की भांति राजस्थान के तीज के गीता म भी भाई बहिन के पावन प्रम की सुन्दर व्यजना हुई है। तीज पर बुलावे आने के लिय भाई की प्रतीक्षा और पीहर जान की प्रबल आकांक्षा की अभिव्यक्ति के अनेक गीत हैं जिनमे नारी के निष्कपट हृदय की भाव लहरो प्रस्फुटित हुई है। तीज के गाना म राजस्थानी नारी के हृदयोदगार देखिय—

'आयो आयो तीज त्यू हार, रमस्यां आंगण म।"
वन खड मे हिंडोलो माडयो रेशम की पटडोर,
"राणी रणादे हींडा बठया, धरती झेले म भार थोजी
धरती झेले न भार॥"

क्या ही उच्च कल्पना है—राणी रणाद के हिंडोल का आगे गीत म सूरज चन्द्रमा ब्रह्मा और ईसरजी ललकार देते है धरती भार झेलती नहीं।

तीज के गीता म शृगार रस की सुन्दर उदभावनाएँ हुई है। गणगार और तीज के अवसर पर यदि कोई प्रियतम घर न लाट ता उलाहना की भरमार हा जाती है—

"होली नहीं आयो, गिणगोरियां नहीं आयो।
नहि आयो तीज्योह।
म्हा वालो मोल्यो मिले ओलमो दीज्योह।"

नायक भी इन त्यौहारा पर आतुर रहता ह। राजा की चाकरी म बध हुए विरही नायक की मनोदशा का चित्रण एक गीत म है —

"बादल चमके बीजली, गाजे बरसे मेह,
काग उड़ावे कामणी, राजा सीख[1] न देह।"

इन गीता में मरु भूमि की सारी सस्कृति बिखरी पडी ह। स्त्री पुरुषा के हृदयोल्लास उमग और आनन्द की इतनी सुन्दर व्यजना अयत्र सम्भव नहीं। मरु भूमि के निवासियों के लिय मनोरजन के परम साधन य मन त्यौहार है।

३ क्लासिक गाता म शृगार रस क गीत तथा नत्य व नाट्य गीत प्रमुख है। इनक अतिरिक्त ऋतु सम्बधा व ऐतिहासिक आदि कइ प्रकार क गान प्राय श्रम परिहार के लिय कुआ वात खेती करत आटा तान्त अथवा स्त्रिया चक्की पीसता चरखा कातती हुई गाती है।

1 सीख=छुट्टी। शब्दिक अय है विदा देना

(अ) शृंगार रस के गीत तीन प्रकार होते हैं—

१ रूप वर्णन २ संयोग पक्ष और ३ वियोग पक्ष।

दाम्पत्य प्रेम हृदय का स्वाभाविक गुण है अतः प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा के साहित्य में तत्सम्बन्धी विशाल साहित्य है और लोक जीवन भी दाम्पत्य प्रेम की भाव भीनी झाँकियों से ओत-प्रोत है। परन्तु राजस्थानी शृंगार रस के गीत अपनी निराली छटा रखते हैं। यहाँ के लोग प्रायः व्यापार के लिये अन्य देशों में जाते रहे हैं—प्रियतम के पीछे वियोग विह्वल पत्नी के हृदयोद्गार विशेष करुणाजनक हैं अतः इसी प्रकार के गीत सर्वाधिक पाये जाते हैं। तीनों प्रकार के प्रतिनिधि गीत निम्न लिखित हैं—

१ रूप वर्णन के—मूमल' रैणादे तथा इडाणी - इन में रूप सौंदर्य का मनोहारी चित्रण हुआ है।[1]

२ संयोग पक्ष—बड़ वृक्ष को दाम्पत्य सुख का प्रतीक माना जाता है—इसके उपमान द्वारा युवती के हृदयोद्गारों की सुन्दर व्यंजना हुई है

यो बडलो गहर घुमेर डालालो पांना जोबन भर रह्यो।
मत कोई तोडो बडलारो पान, मत कोई सतावो हरयेदल नै॥"

इसी प्रकार नीबड़' के प्रतीक द्वारा गार्हस्थ्य सुख और दाम्पत्य स्नेह का स्वाभाविक रस गीतों में मिलता है।

अन्य गीत हैं—पोमचा चूंदड़ी रिडमल भुरमो काजल रतन राणा मारूजी, पणिहारी,[3] लहरियो मामनी साडी और पीपर जान व हठमलीवल के गीत।

शृंगार वर्णन के सारे गीत अति उच्च, पावन तथा शुद्ध भावों से ओत प्रोत हैं। मनोहर जीवन के गीतों में भी दाम्पत्य प्रेम की झांकी के साथ शृंगारिक भावनाओं की उद्भावना हुई है जैसे—

"मण सायब मिल लावांगा।
डरा मांय मतीरा लाग्या, भर भर लारला लावांगा।
चार मास चौमासे रहू तो हिलमिल खेत कमावांगा।
मण सायब मिल लावांगा॥

३ वियोग पक्ष—प्रमुख गीत हैं झूंपुना मुगन परवाना, पपैया कुरंजा सूवटा, ओळूं खीव जमाई राणारा गीत जैसा भार नाना माड आदि। झूंपूं और गनना विरह पक्ष के विशिष्ट गीत हैं—इनमें विरहिणी की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है—

---

1 गीत देखिये—राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2ग-पृष्ठ 57
2 गीतों के नमूने देखिये—राजस्थानी लोकगान खण्ड 2 में
3 गीत देखिये राजस्थानी लोक गान खण्ड 2 पृष्ठ 58।

'म्रोल्यू'— "म्हारा सांवरिया सिरदार, थांरी म्रोल्यू म्रावेजी,
नणदल रा वीरा, थारी म्रोल्यू म्रावेजी ।
जायर बठ्यो ढोलो मालव जी, म्हारी सुध-बुध दीनी बिसार,
माईजी रो वीरा, म्रोल्यू म्रावेजी ।"

'सपनो'— सोती थी म्हैं रंग महल मे जो, सोती भँवर सा न देख्या जी
सपन म्हारा भँवर मिलाया जी ।
क्यूँ तो थे म्हान ढोरा मिल्या, क्यूँ थे दिया टाल,
कर जोड़ विनती करूँ, रिमझिम लागू पाय ।
सपना रे थे तो म्हने रुमाई रे । सोती थी०

(म्रा) नृत्य नाट्य सम्बन्धी गीत—नत्य नाट्य के गीत विविध प्रकार के होते हैं—इनकी स्वर रचना तथा रागों का माधुर्य इतना मनोहारी होता है जो शास्त्रीय गीतों को मात करदे । नत्य गीत लय प्रधान होते हैं उनमें ताल स्पष्ट आता है—इन गीतों में सामान्यतः कहरवा ठेका चलता है । नत्य नाट्य गीतों में कथा की प्रधानता होने के कारण उनकी तान और संगीत ध्वनि कथा के साथ चलती है । लोक नत्य के स्वरूप की दृष्टि से प्राकृतिक स्थिति के अनुसार राजस्थान के इस विधा के गीतों को तीन भागों में विभाजित किया है—

1 उदयपुर भीलवाड़ा कोटा और सिरोही के पहाड़ी प्रदेशों में भील मीणा और बंजारा आदि की बहुलता है—ये लोग नत्य गीत आदि में अपना काफी समय लगाकर मनोरंजन करते हैं—यहाँ के प्रमुख नत्य व नाट्य हैं घूमर गैर गौरी नत्य तेजा बनजारा के नत्य गरासिया के नत्य कान बेलिया के ईडाणी और पणिहारी आदि तथा भवाई नत्य ।

2 बीकानेर जोधपुर और जसलमेर रेगिस्तानी क्षेत्र है—यहां के लोगों का जीवन निर्वाह हेतु अत्यधिक श्रम करना पड़ता है अतः मनोरंजन की अधिकता नहीं है—नत्यों की अपेक्षा गीतों का अधिक प्रचलन है । इनके नत्य हैं—घूमर भमर बीकानेर का अग्नि नत्य जालौर का ढोल नत्य तथा डीडवाना के पादरल का तेरह ताली ।

3 पूर्वी राजस्थान में गंगावाटी तथा जयपुर आते हैं—ये भाग समृद्ध हैं और जीविका निर्वाह कठोर नहीं है अतः धनी लोग मनोरंजन पर व्यय करते हैं । यहाँ के लोकप्रिय नत्य हैं गीन्द और चंग के नत्य सांसिया और कंजरों के नत्य, कच्छी घोड़ी तथा चौक च्यानणी नत्य ।

ये सभी नत्य गीत सामान्यतः अवसर विशेष पर मनोरंजन के लिये गाये जाते हैं—कुछ अनुष्ठान सम्बन्धी हैं अन्य त्यौहारों आदि पर गाये जाते हैं—जिनका उपयोग जीविकोपार्जन के लिये भी होने लगा है । भैरव पूजा और गौरी नत्य आदि प्रथम श्रेणी में आते हैं—

"भल मादल नो धमको बाज थान पूजां,
भल भालर नो भमको बाज थांन पूजां,
भल पगा ना रमजद बाजे थांन पूजां,
भल नौरतना खड़ग बाजे थांन पूजा।।"

घूमर राजस्थानी महिलाओं का सर्वाधिक लोकप्रिय जातीय नृत्य है—भिन्न भिन्न क्षेत्रों में कई रूपों में प्रचलित है—जिनमें निम्नलिखित घूमर सर्वोपरि है—

"म्हारो घूमर है नखराली ए माय घूमर रमवा म्हे जासां
म्हाने रमती ने काजल टीका लादो ए माय घूमर रमवा म्हे जासां
म्हाने रमती ने लाडूडो लादो ए माय।
म्हाने सिसोदिया री सीस गु थाव ए माय"

नृत्य गीतों के साथ लोक वाद्य भी निरन्तर ही प्रयुक्त होते हैं—ढोल, मृदंग रावण हत्था, मंजीरे, पूंगी खजरी आदि विभिन्न नृत्यों के अलग अलग वाद्य होते है। वेश भूषा भी सबकी अपने-ढंग की होती है।

राजस्थान के उत्तरप्रदेशवर्ती भाग में भरतपुर व अलवर हैं। इन पर ब्रज भूमि का प्रभाव होने के कारण रासलीला, रामलीला और नौटंकी का अधिक प्रचलन है।

नाट्य गीत—राजस्थानी लोक नाटकों को ख्याल कहते हैं—नाट्य गीतों के विषय विविध होते हैं। समाज में धार्मिक भावना के प्रचार हेतु प्राय नाट्य पौराणिक व ऐतिहासिक लोक कथाओं पर आधारित होते हैं जैसे—राजा हरिश्चन्द्र, नलदमयन्ती, रुक्मणी मंगल, गावनी मंगल, पृथ्वीराज चौहान, हमीर हठ, राजाभोज और हाड़ा राणा आदि कुछ नाट्य गीत और पूजा की भावना द्योतक यहाँ के वीरों व चरित्रों पर है।

राजस्थान के ये नाट्य गीत राज्य का इतिहास बनाने में और सांस्कृतिक व सामाजिक परम्पराओं के निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं।

4 राजस्थानी लोक गीतों की चतुर्थ श्रेणी के व्यावसायिक गीत अलग वाद विशेष नहीं होते—वग विशेष के लोग जैसे भाटे, ढाढिय स्वामी कामरिया मीरा ढाडन लगर आदि इन में से कुछ गानों का जीविकोपार्जन हेतु गाते फिरते हैं विशेष कर नृत्य एवं नाट्य गीत।

राजस्थानी लोक-गीतो मे संगीत

लोक गीतो मे संगीत की प्रधानता एक सर्वमान्य सत्य है। लोक गीत किसी देश की संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं[1] जबकि रात्रि के निस्तब्ध वातावरण में दूर से आये हुए किसी पुरातन लोक-गीत के स्वर हृदय में आनन्द या वेदना का संचार करते हैं तो काव्य की अपेक्षा गीत का संगीत-पक्ष ही हमारी आत्मा के तार हिलाने में समर्थ होता है।

परन्तु लोक-गीत का यह प्रभावशाली संगीत शास्त्रीय संगीत के कृत्रिम लाक्षणिक बन्धनो के नियमो में नही बाधा जा सकता। हाँ इस सहज संगीत में स्वर ताल, राग रागनियाँ और धुनें सब कुछ विद्यमान है।

लोक गीतो के संगीत और शास्त्रीय संगीत के बीच एक अदृश्य सी कडी है। ये दोनो ही देश की सांस्कृतिक प्रतिभा के प्रतीक है। लोक-संगीत का निर्माण स्वाभाविक है। जब उसका विश्लेषण करके नियमबद्ध किया गया तो उसने शास्त्रीय संगीत का रूप धारण किया। लोक संगीत निसर्ग निर्मित है और सरल है। वह जीवन एवं संगीत के स्वाभाविक सम्बन्ध का परिचायक है। लोक संगीत हृदय है तो शास्त्रीय संगीत बुद्धि है। लोक-संगीत जीवन में रमा हुआ रहता है—यही कारण है कि वह मानव समाज का इतना प्रिय है।

शास्त्रीय संगीत के लक्षणो की दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि इन गीतो में अनेक राग रागिनियाँ स्वर ताल और ध्वनियाँ पाई जाती है। विभिन्न विषयो के गीत विभिन्न रागो और विभिन्न समयो में गाये जाते हैं।

राग रागिनियाँ—राजस्थानी लोक गीतो में बिलावल काफी देश सोरठ सारंग भूपाली कालिंगडा सोहनी पूरिया जोगिया आसावरी भिभोटी पीलू एवं हिंडोल आदि अनेक राग प्रयुक्त होती हैं। इनमे भी बिलावल, काफी और भीमपलासी आदि का प्रयोग शुद्ध और मिश्रित दोनो रूपो में मिलता है। तिलंग और कामोद जैसे कठिन रागो पर भी गीत मिले हैं।[2] परन्तु सर्वाधिक गीत देश सोरठ और सारंग पर पाये जाते हैं।

---

1 प्रस्तावना धरती गाती है।

2 लोक-कला प्रेमी डॉ० देवीलाल सामर ने सारे राजस्थान का दौरा करके समस्त रागो के गीत एकत्रित किये हैं।

तिलंग और कामोद को मिलाकर एक राग बनता है—तिलक-कामोद। इसमें निम्नलिखित गीत गाया जाता है —

उड जाऊंगो ए मां पांख लगाय, थोडा दिनां को पावणो।
म्हारा दादाजी घडाई सोना साकली, म्हारी दादया ओ मूंडे तो बोल,
म्हे कोई नतकई आवां छा॥

बिलावल के अन्तर्गत तो सभी शुद्ध स्वर वाले गीत आ जाते हैं, जैसे गणगौर पर गाने के घूमर गीत की धुन और स्वरों की व्यवस्था को देखकर उसे बिलावल थाट के किसी राग पर अवलम्बित समझा जा सकता है।

राजस्थानी नाच गीतों का सर्वाधिक लोकप्रिय राग माड बिलावल थाट में ही पड़ा होता है और मेवाडा भी। कुरजा गीत मेवाडा राग में गाया जाता है। देश और सोरठ वास्तव में एक ही राग हैं नाम मात्र का भेद है। देश राग में शिकार का एक गीत सुमरिया लिया जा सकता है। देश राग में गाने के अन्य शिकार के गीत हैं —

ओ जी म्हारो बेण सुन लीजो,
कब की मैं ऊभी ठाडी।
अपने मन्दरवा अरज करसा वालो राज।

तथा

मारूडो रमे छ शिकार,
नणदल हे हरियाला डूंगर बन घणा हो।
म्हारो मारूडो रमे छ शिकार, बटन दा हरिया दल
बजन मायो प्राण आधार। ॥ नणदल हे ॥

मारू राग का एक गीत है —

एक लमां दूजा लमो, लमां लमां वह देस।
चोड लमा हाडा राव ने, सौतियों घणो उमेस॥

मारग का उदाहरण है —

अरे ओ आ बाला मोटयार,
पाछो मुडकर आजे गोरी कर गई सिंगार।
आंख म काजल लोली लोली नथलो खबरदार,
कान में पैरया झूल झूमका गल मोत्या रो हार॥

अथवा

आई – आई म्हारा बनमा,
कोटा का दरवाजा प मझो मोरडो।

भूपाली का गान है —

छोड दे बलम म्हारे पामचा को पल्लो,
म्हं तो घर रडवा को मांडूगी।

कालिंगडा राग का गीत है बिणजारा । इस गीत म भरव के स्वर मिलत ह । कालिंगडा आश्रय राग भरव स ही निकला ह । इस राग का एक गीत दाहनी है —

अमलां री वे बाता म्हाने को न दारूडा री श्रो बाता
म्हा से को न राज ।
कोई रात रा मुजरा री बाता म्हा से को न,
थारी रे बलमा मन भाव ज्यू राज, खरबूजा री फाक
प्यारी प्यारी थाल ॥

कालिंगडे के अन्तगत परज राग भी ह इस राग म गाये जाने वाले गान है —

अधिक छकायो जी थे मरवण माभली रात,
रग भर रूडो मारू ढोलो आयो छ
किन छिरगारो गोरी बार थाने पाई ।
निपट करो छो बात मन रग प्रीतम चेत करो ने-
सायबा हो वन लागी प्रात

तथा

घू घटडो म्हाने खोलो राज ।
हाथ न घालो म्हे कई गाल उठाश्रो,
दिन दिन रन तुम बरसन लाग पिया ॥

और

बाल्डलो मारूजी दारूडी पीव है श्राव छ री ।
डगमगी चाल म्हाने भाव छ म्हारी हेली ॥ बाल्डलो० ॥
ए सुन तान गाव, राग भेद बनाव ।
मन रग मन मोहनी बात बात बनाव ॥ म्हारी० ॥

साहना पूरिया और जागिया रागा के गीत निम्नलिखित है —

साहना —

म्हाने ही बुलाव दावर नणी री मारणीगरे,
म्हे काई जाणा म्हारो मनडो लाग्यो छ
पौढी म्हाने मन राम श्रान जगावे ॥ दावर नणी० ॥

पूरिया (गीत श्रारूडा) —

कोठ गया हो राजद्र म्हाने अकली नार ।
निदिन म्हारी हेली श्रोलू श्राव जिया घरे सन
रग भेग नाद मिलाऊँ काई करा म्हारी न राखो पास

जागिया —

हू तो थाने जावण नहीं देस्या हो जी म्हारा राज ।
हू तो थारे दासी जनम–जनम री छ तो म्हारा राज ॥

आसावरी राग —एक भाग गीत म भाग के गुणा का वर्णन है—यह गीत बडी सु दर राग म है—साधारणतया इस आसावरी कहा जा सकता है परन्तु गाधारी राग के भी अत्यन्त निकट है, गीत है —

भाग तो मिजाई छ राज,
आव या ढोला ने रग री बाता ॥ आव० ॥
भाग कहे सो बावरो, विजिया कहे सो कूर।
मेरो नाम कमला-पति, रहे नसे मे चूर ॥

झिझोटी —इस राग का हाडाती क्षेत्र का एक ओजपूर्ण गीत है —

जाग-जाग बू दोपल हाडा थारी प्रजा दु ख पावे रे,
हाडा जाग रे।
काजर थारा राज माई ने लूट कोस मचाय रे,
और थानादार सिपाई वा से तनखा पावे रे,
हाडा जाग रे ॥

इसी राग म शिकार-गीत देखिये मगरा —

जाग जाग हे जगल का राजा मारयो जासी रे।
बनी का राजा मरयो जासी रे, मगरो छोड दे ॥
उम्मेदसिंह जी राजा आया सिकारी, मारयो जासी रे।
मगरो छोड दे० ॥

पीलू —शेखावाटी का अत्यन्त लोकप्रिय गीत घूमर पीलू राग में ही गाया जाता है —

गोरी घूमर रमवा म्हे जासा
घेरदार घाघरो गुलाबदार साडी,
केसरिया री बोली प्यारी लागे ए मा
म्हारी घूमर [illegible] नखराली ए मां,
घूमर रमवा म्हे जासां।

गणगौर के अवसर पर गाया जाना वाला उदयपुर का एक गीत है —

रगड रगड पग धोवती हो रसिया,
धोवती पिछोला थारी पाल,
मारूजी म्हारो मन मयो छ, हो नादान बादियो।

शास्त्रीय दृष्टि म इस राग को मिलनो शिलावर थाट क रागा म होनी चाहिए और इस गाया भी राग का ही जाता है।

पिछोला झील के किनार गणगौर का बीच म रखकर इस गीत क साथ महिलायें सामूहिक नृत्य करती है। यह भी घूमर के नाम म प्रसिद्ध है।

हिंडोल राग में झूले और वर्षा के गान गाये जाते हैं। तीज के झूले के गीतों की गति ही हिंडोले जैसी वर्षा में मदराती हुई सी प्रतीत होती है।

काफी राग का एक गीत है —

ब्रज मे हरि होरी मचाई कन्हाई,
इतसे निकसी कुंवर राधिका, इतसे श्याम कन्हाई,
खेलत फाग परस्पर हिलमिल,
सो सुख बरणो न जाई।
सो घर घर बजत बधाई॥

भीमपलासी का उदाहरण निम्नलिखित गीत में मिलता है।

अब तो सुन ले बन के कगवा अब तो सुन ले।
कगवा छ्व के पियरवा ऊठे उड जावो अटरिया रे॥
॥ अब तो० ॥

माड तो यहाँ के गीतों की विशिष्ट राग है। माड की धीमी धार वक्र गति में इस प्रान्त की प्रकृति का सुन्दर चित्र भी प्रतिबिम्बित होता है। रेत के टीलों में मांड का स्वर तैरता हुआ दूर तक लहराता है। पहाडी गीतों के प्रतिध्वनिपूर्ण लोक-गीत की तुलना में रखकर माड की ध्वनि का भाव स्पष्ट किया जा सकता है। माड 12–15 प्रकार की होती है—कुरजा लूर घूमर, पीपली पणिहारी मूमल, आलू बधाव धूसा जलो और काछवा तथा कागमिया आदि लम्बी ढाल (विलम्बित लय) के लगभग समस्त गीत माड राग में गाये जाते हैं। माड राग का एक गीत है लसकरिया —

म्हाने लारा लेन पधारो जी म्हारा लसकरिया,
ऊँची पाल तलाव की म्हासे चढ़ियो न उतरियो जाय,
जी म्हारा कमधजिया।
कागद हो तो बाचलू जी करम न बाच्या जाय, जी म्हारा लसकरिया।

और भी अगण्य गीत इस राग में अनेक ढंग से गाये जाते हैं।

सुल्तान-निहालदे का भी ऐसा मस्त राग है कि श्रोता झूम उठता है। ढलती रात में समा बंध जाता है और कतारिये गा-गाकर रेगिस्तान की मंजिल पार कर लेते हैं। होली के गीत बहुधा धमार और लावनी में गाये जाते हैं।

अधिक लोकप्रिय गीतों के आधार पर राजस्थानी की मौलिक राग रागिनियाँ भी बन गई हैं जिनमें शास्त्रीय लक्षणों की खोज होने पर उनके शास्त्रीय संगीत में सम्मिलित होने की संभावना है। यहाँ की मौलिक राग रागनियाँ टालों के नाम से जन-देशीयों में मशहूर हैं। पणिहारी घूमर जलो नागजी माम्द सूवटा बणजारो, बींझू कागमिया आदि राजस्थान की ऐसी ही मौलिक राग हैं जिनमें गाये जाने वाले उन्हीं नामों के गीतों का उल्लेख लेखिका के शोध ग्रन्थ में हुआ है।

इन समस्त रागो के अतिरिक्त कई कठिन रागें राजस्थानी लोक-गीतों में पाई जाती हैं। जैसे आसा और ताली का उल्लेख शास्त्रीय संगीत की भरत-खण्ड पुस्तक तक में नहीं है। ये इतनी कठिन राग हैं कि बी० ए० के विद्यार्थी भी सरलता से नहीं सीख पाते परन्तु राग रागनियों की संगीतज्ञता से अनभिज्ञ अपढ़ स्त्रियाँ लोक गीतों में बिल्कुल शुद्ध रूप में ये रागें गाती हुई पाई जाती हैं जैसे—आसा राग का चित्र देखिये —

करेलुवा पे लटपट छाई नागर बेल,
महलां फोडो काकडी, छाजा, राल्या बीज,
आप पधारया चाकरो म्हारो कौन सुनावे सीख।

इसी प्रकार दीपक राग शास्त्रीय संगीत में प्रचलित नहीं रहा, प्राय लोप सा हो चला है परन्तु लोक संगीत में अब भी दिवाली के त्योहार पर ग्रामीणों द्वारा गाये जाने वाले गीतों में सुना जाता है।

मेवाडा राग शास्त्रीय संगीत में जो बनी है वह लोक गीतों की मेवाडा राग पर ही बनी प्रतीत होती है। मेवाड प्रान्त में गाई जाने वाली ध्वनि अत्यन्त प्रचलित होने के कारण उसे संगीत शास्त्र में भी स्थान प्राप्त हुआ है। 3-4 सौ वर्ष प्राचीन बनी रागों में भी इस राग का कोई उल्लेख नहीं है। मेवाडी राग का एक गीत दिया जाता है जो पहले लोक गीत था और नोटेशन में बंधकर कालान्तर में इस शास्त्रीय संगीत में स्थान प्राप्त हो गया। परन्तु इतने प्रचार में नहीं आया कि राग के नियम भी बनाये जाते —

कुंजडली है संदेसो हमारो, जाय बालम रजये जी रे।
थारे कांटा ने म्हने नाना पलक,
हेडडी उडी ओले सावे जइये जी रे,
कुंजडली है सदेसो हमारो आइये जी रे,
हे सलजो हमारो पालडली रे।

ताल—जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में ताल के बिना गायन नहीं हो सकता, उसी प्रकार लोक गीतों में भी ताल का होना आवश्यक है। लोक संगीत में स्वरों का उतार चढ़ाव और ताल या लय का स्वरूप भी ग्रामीण होता है। ताल की दृष्टि से राजस्थान के लोक गीत सम्पन्न हैं। सामूहिक लोक गीतों में ताल का ही विशेष महत्व होता है।

राजस्थान के रसिया, उदयपुर की होरियां भीलों के घूमर, बीकानेरी चुनरी के गीत मेवाड़ी घूमरें जयपुरी लहरिये, मारवाड़ी मांडें जैसलमेरी दारूड़ा तथा अनेकों त्यौहारों विवाहों और समारोहों के गीत जिन्होंने सुने हैं उन्हें ज्ञान होना होगा कि राजस्थानी रागों में कितना माधुर्य है और कितनी मनमोहकता है।

लोक गीतो के साथ साज प्राय कम ही प्रयुक्त होते है ग्रामीण लोग अपना प्रयोजन प्राय पूजा की थाली खजडी या डफली आदि से साध लेते है। ताल की दृष्टि से ढोलक ताल मजीरे नगारे चग डफ अपग मृदग, डमरू और माट आदि ताल वाद्य रहते है जिनसे लोक गीत म भी निश्चित बधन (ताल का नियमन) आ जाता है।

राजस्थानी लोक गीतो म अधिकतर निम्नलिखित तालो का प्रयोग होता है —

(1) दादरा 6 मात्राएँ
(2) चाचर 7 मात्राए
(3) तीव्रा 7 मात्राएँ
(4) कहरवा 8 मात्राएँ

ये ताल तबले और नगारे के स्वरूप को स्पष्ट करती है। डफ व चग पर अधिकतर कहरवा बजाया जाता है। लोक गीतो म प्रयुक्त होने वाले तार-वाद्य है— रावणहत्था इकतारा सारगी तम्बूरा माण्डल कामायचा मुरल और अलगोजा। शख और पूगी मुख से बजाये जाने वाले वाद्य है। तार-वाद्यो म भी ताल बताने का विधान होता है जैसे रावणहत्थे म राग पर धुन के ताल का ही काम देते है एव भजन के साथ इकतारा स्वर भी देता है और ताल भी। ऐसे ही अन्य वाद्य भी है।

अतएव लोक-गीतो म भी शास्त्रीय सगीत के ताल वाद्यो की भांति तालो का विचित्र जाल फैला हुआ पाते है। राजस्थानी लोक गीत की प्रसिद्ध गान पद्धति माड म अधिकतर दादरा चलता है किन्तु अन्य मुख्य मुख्य गीतो म तीव्रा चाचर अथवा कहरवा। तालो म सभवतया कहरवा ही ऐसा ताल है, जिस दिल खोल कर बजाया जा सकता है। सामूहिक लोक गीतो म तो विशेषकर ताल ही प्रमुख रहती है। चाचर व तीव्रा ताल शास्त्रीय सगीत म उतनी प्रचलित नही है जितनी लोक गीतो म। व्यावसायिक (जीविका सम्बन्धी) नृत्य गीतो म नई-नई तालो का प्रयोग होने लगा है। जैसे त्रिताल चौताल और रूपक। घूमर गीत म सब ताल चलती है।

नारी और पुरुष समुदाय द्वारा जो अवर्णनीय सगीतमय प्रवाह उनके आयोजनो म दृष्टिगोचर होता है सगीत के स्वरो के साथ नृत्य के लय और ताल म जो समानता और उतार-चढाव प्रस्तुत किया जाता है उसका वर्णन शब्दो म करना सभव नही। उनके सगीत का आनन्द तो देख सुनकर ही लिया जाता है। धीरे धीरे उठते हुए गीत के स्वर द्रुत होने लगते है और उन्ही के साथ तेज होती जाती है पैरो की थिरकन और मगते करने वाले साजो की आवाज।

इस प्रकार सामूहिक लोक-गीत नृत्य की थिरक के साथ राजस्थान के विभिन्न भागो म प्रस्तुत होते हुए गाये जाते है। राष्ट्रीय पर्वो और उत्सवो पर भी इस प्रकार की मण्डलियो का आयोजन रखा जाता है। इनका एक एक गीत श्रावक और दर्शक मण्डली को अपनी मादकता म आनन्द विभोर कर देता है।

ध्वनि—राजस्थानी लोक-गीतों में ध्वनि की विभिन्नता शास्त्रीय संगीत शास्त्रियों ने भी स्वीकार की है। मद्रास में सन 1954 में होने वाले अखिल भारतीय लोक-नृत्य और नाट्य उत्सव (फेस्टीवल) में विभिन्न प्रांतीय लोक-गीतों में से राजस्थान के गीत ध्वनि की विशेषता के कारण संगीतज्ञों के द्वारा अधिक पसन्द किए गए और इन्हें तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना गया।

स्वर रचना—राजस्थानी लोक गीतों की स्वर रचना अत्यन्त सरल है, साधारणतया इनमें स्थायी अन्तरा नहीं होते पूरा गीत एक ही राग में गाया जाता है। आदिवासी भीलों और मीणों के गीत और अधिक सरल हैं। हाँ, व्यावसायिक (जीविका सम्बन्धी) लोक गीतों की स्वर लिपि कुछ जटिल है उनमें स्थायी अन्तरे भी होने लगे हैं। यहां के गीतों में सोरठ, देश और मारू की छाप पाई जाती है।

लोक-संगीत नाना प्रकार की धाराओं में प्रवाहित होता है, उसमें विविध विषय रहते हैं। एक देश के जन पदों के लोक-संगीत में भी अपनी कुछ निजी विशेषताएँ रहती हैं, इसी प्रकार राजस्थान का लोक-संगीत अपनी विशिष्टता लिए हुए है, जिनका अनुभव इन गीतों में रमने से ही हो सकता है। राजस्थान के विभिन्न भौगोलिक विभागों के संगीतों में भी भेद पाया जाता है। पहाडी प्रदेशों में रहने वाले आदिवासी मीणों के गीत गायकों की कल्पना-शक्ति सीमित होने के कारण स्वर प्रधान हैं उनमें शब्द चयन कम विचार शक्ति कुंठित और वातावरण संकुचित होने के कारण गूंज कम है। इनके विपरीत मरुभूमि के गीत कल्पना और विचार प्रधान तथा भावनात्मक होते हैं और उनमें आलाप और गूंज अधिक है। पणिहारी कुरजा, आंख सपना हिचकी गोरबन्द और ईडुणी एवं संगीतात्मक काव्य पूर्ण गीतों के उदाहरण हैं जो मन के कोमलतम भावों की अभिव्यक्त करते हुए काव्य और संगीत के सम्मिलन में प्रतीत होते हैं। राजस्थानी लोक गीतों की श्रुति माधुर्य भाषा के अनभिज्ञ श्रोता को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहती। स्त्री पुरुष सम्मिलित अथवा अलग अलग सामूहिक रूप में जब मेलों त्योहारों अथवा मांगलिक अवसरों पर बगीचों तालाबों अथवा घर के आंगनों में आनन्द विभोर होकर गाते हैं तो सुनने वाले चमत्कृत हो जाते हैं।

बहुत से देशों के लोक गीत नगरों के काव्य और संगीत से भी प्रभावित हो जाते हैं। परन्तु यह प्रभाव पश्चिमी देशों के ढंग पर अधिक है। भारतवर्ष के विशेषकर राजस्थान के लोक गीतों में इस प्रकार का प्रभाव दृष्टि में नहीं आता। इनका कवित्व और संगीत अपनी स्वच्छता को सुरक्षित रखे हुए है।

श्रम परिहार सम्बन्धी राजस्थानी लोक-गीत

जन जीवन के प्रत्येक पहलू में आल्हाद और मस्ती के दर्शन होते हैं। विवाह, संस्कार, मेले और त्यौहारों के अवसरों पर यह आल्हाद और मस्ती सामान्यतः नारी जीवन में प्रकट होता है। कलात्मक गीतों में शृंगार रस के गीत—संयोग एवं वियोग पक्ष—भी अधिकतर स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। होली आदि के अवसर पर अवश्य ग्रामीण लोग ढोल, चंग एवं नगाड़े आदि बजाते हुए गाते नाचते मस्ती में झूमते हैं। परन्तु श्रम परिहार के गीत अनेक प्रकार के पुरुषों द्वारा व्यवसाय करते समय गाये जाते हैं। ग्रामीण जीवन में पुरुषों के खेती, बायनी, चराई, पिसाई अथवा कुआ से पानी भरना प्रत्येक कार्य में आल्हाद और मस्ती छाई रहती है। उनकी यह मस्ती व्यवसाय करते समय गाये जाने वाले गीतों से अभिव्यक्त होती है।

राजस्थान के लोक जीवन में भी हर क्षेत्र में श्रम करने वाला व्यक्ति गाता हुआ मिलेगा—उसका कोई कार्य गीतों के माधुर्य से विहीन नहीं। कठिन से कठिन काम करते हुए गीत की मस्ती में मनुष्य को श्रम का बोझ अनुभव नहीं होता और गीतों से कार्य का बोझ हल्का हो जाने के कारण उसकी कार्य-कुशलता बढ़ती है एवं काम में सुचारुता आती है।

खेतों पर काम करने वाला किसान गाता है, गउएँ व भेड़ें चराने वाले चरवाहे गाते हैं, कुँआ से पानी खींचने वाले कारिए गाते हैं जिन्हें कारती गीत कहते हैं और ऊँट लादने वाले कतारिए गाते हैं। कुआ पर पानी भरने वाली स्त्रियाँ गाती हैं, आटा फाड़ने वाली मजदूरिनें गाती हैं और गाती हैं महिलाएँ आटा पीसते समय एवं चरखा चलाते समय। और भी जो श्रम साध्य काम नित्य प्रति के होते हैं जन जीवन में गा गा कर किये जाते हैं जिससे श्रम की कठोरता कार्यकर्ता को अनुभव नहीं होती। *गाने की मस्ती में तन्मय होकर मनुष्य श्रम की कठोरता को भूल जाता है। गीतों के माधुर्य से कठोर से कठोर कार्य माधुर्य में परिणत होकर मनोरंजन का साधन* बन जाता है। स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर ने श्रम परिहार के गीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि मनोविज्ञान के विद्वानों तथा कार्य-दक्षता के विशेषज्ञों ने भी स्वीकार किया है कि गीतों से कार्य की उत्पादन शक्ति बढ़ती है।[1]

---

1 Music in raising work-productivity is acknowledged by psychologists and efficiency experts

—Standard Dictionary of Folklore

स्वाभाविक ही है कि काम की कठोरता अनुभव न होने से मन पर बोझ नही रहता और गीत के माधुर्य में चित्त की प्रफुल्लता से कार्य करने में उत्साह और मस्ती उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की कार्य क्षमता तीव्र होने के साथ-साथ कार्य में सुचारुता आती है। इसके विपरीत थकावट अनुभव होने की स्थिति में श्रम का बोझ मन पर होने से मनुष्य अनिच्छा से कार्य करता हुआ शीघ्रातिशीघ्र कार्य मुक्त होना चाहता है—इसमें वह काम बेगार रूप बनकर न भली प्रकार सम्पन्न होता है न अधिक परिमाण में फलीभूत होता है।

श्रम परिहार के गीतों की पृष्ठभूमि में लोक जीवन की आस्था भी निहित है। हमारा प्रत्येक कार्य धार्मिक आस्था से आरम्भ होता है। अपनी कार्य सिद्धि हेतु मनुष्य देवी-देवताओं की मनौती करता है। जिस प्रकार मांगलिक कार्य के प्रारम्भ में गणेश पूजा आदि की जाती है उसी प्रकार कोई भी व्यवसाय करते समय व्यक्ति हृदय में परमात्मा के प्रति नतमस्तक होकर अपने व्यवसाय में सिद्धि की कामना करता है। अन्य देवी देवताओं की स्तुति से आरम्भ करके कभी कृषि आदि व्यवसाय को ही देवी रूप में मानता हुआ व्यवसायी भाव विभोर हो गाने लगता है और कभी व्यवसाय के साधना व्यवसाय की प्रक्रिया का वर्णन करता हुआ परिणाम में प्राप्त होने वाले फल की कल्पना में आनन्दित होकर परमात्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने लगता है। चक्की और चरखे के गीतों में माताएं देवी-देवताओं के गीत भजन और हरजस ही गा गा कर अपना चित्त भगवान के चरणों में लगाती हुई श्रम को भूल कर घण्टों तक कमरत होने की क्षमता प्राप्त कर लेती है।

इसी प्रकार खेतों का व्यवसाय बारेती आदि (कुएं पर खड़े होकर खेतों में पानी देना) कार्य आरम्भ करते समय माली हनुमानजी का स्मरण करके देवी-देवताओं की स्तुति करता है—उनके दोहों का मुख्य स्वर देव स्तुति ही होता है। राजस्थान के भीना मीणा और लगा के श्रम परिहार के गीतों में भी मुख्यत देवी-देवताओं और प्रतापवासा के गीत होते हैं जिनमें उनके धार्मिक विश्वास और आस्था की अभिव्यक्ति होती है।

राजस्थानी श्रम परिहार सम्बन्धी गीतों के मुख्य भेद निम्नलिखित है —

(1) कृषि के गीत (2) पशु चराने के गीत (3) कतारिया[1] के गीत (4) बारेती गीत[2] (5) पणिहारी गीत (6) भाटा फोडने समय गाने के गीत (7) चक्की और चरखे के गीत (8) भील मीणा और लगा के गीत।

कृषि गीत—खेती करता हुआ किसान और उसके परिवार के सभी सदस्य मानो सृष्टि रूप परमेश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़कर आनन्द मग्न हो कृषि कार्य करने

---

1 ऊंट लादने वाले।

2 कुंआ से पानी निकाल कर खेतों में पानी देना बारा लेना कहलाता है अत इन मालियों के गाने बारेती गाने कहलाते हैं।

है। खेती की सफलता निमित्त कृषक खेती को देवी स्वरूप मानकर उसकी स्तुति और आराधना करता है। खेती में होने वाली फसल पर ही उसकी सुख समृद्धि आधारित है—खेत माता स्वर्ण की खान है जिसमें वह अपने श्रम द्वारा वर्ष भर के लिये सोना उपजाने वाला है जो न केवल किसान के बल्कि देश भर की समृद्धि का आधार बनेगा। देवी की स्तुति से आरम्भ हुए किसान के गीतों में खेती सम्बन्धी सभी विषय सम्मिलित हो जाते हैं। कृषक जीवन का पूर्ण चित्रण इन गीतों में मिलता है कृषि कर्म की विवेचना और इस व्यवसाय के सुखद परिणामों का परिचय। जहाँ खेती के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली समृद्धि की कल्पना किसान के हृदय का हर्षोल्लास व्यक्त करता है वहाँ इस व्यवसाय में आने वाली कठिनाइयों से खीझ कर कृषक इन गीतों में अपने मन का क्षोभ भी व्यक्त करता है।

खेती के प्रति सुरम्य भाव व्यक्त करता हुआ कृषक गाता है—

"सुरंग ऋतु आई म्हारे देस।
यो कुण बीज बाजरी ए वदली, यो कुण बाव मोठ मेवा मिसरी।
सुरंगी ऋतु आई म्हारे देस भली ए सुरंग ऋतु आई म्हारे देस॥
सवाई बिरखा लाई म्हारे देस।"

राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में मुख्य उपज मोठ बाजरी है। पूरे वर्ष यहाँ के लोग मोठ बाजरी की रोटी खाते हैं खीचड़ा बनाते और मोठ की बड़ी पापड़ भुजिया आदि अनेक रूपों में उपयोग करके स्वादिष्ट भोजन बनाते हैं। अतः बाजरे और मोठ को इस गीत में मेवा मिसरी के समान बता कर मन का आल्हाद व्यक्त किया है।

इसी प्रकार एक गीत में सुन्दर खेती की कल्पना से आनन्द विभोर हुई गृहणी के उद्गार देखिये —

धण सायब मिल लावांगा,
डेरा माय मतीरा लाग्या, भर भर खारला लावांगा।
धण सायब मिल लावांगा।
खेता माय काकड़िया पाक्या भर भर खारला लावांगा। धण सायब०
खेता माय बाजरी पाकी, भर भर गाडा लावांगा॥ धण सायब०
खेता माय मू गड़ला पाक्या भर भर गाडा लावांगा॥ धण०
च्यार मास चौमासे में तो रिलमिल खेत कमावांगा॥धण०

काकड़ी[1] मतीरा[2] भी रेगिस्तानी भागों की मुख्य उपज है। सामान्य लोक जीवन में खेतों में काम करने वाले मजदूरी करने वाले तथा अन्य साधारण स्थिति के

---

1 उत्तर प्रदेश आदि में पैदा होती है—उससे मिलता हुआ एक फल है—इसका साग भी बनता है।

2 अन्य प्रान्तों में तरबूज कहलाते हैं—पर दोनों की फसल का समय अलग होता है।

लोग दिन दिन भर काकडी मतीरे पर निकाल देते हैं। जिन क्षेत्रा म पानी कम मिलता ह वहा मतीरे के पानी म हा प्यास बुझा लेते है। खेती करत-करत य गीत गाता हुआ किसान परिवार आत्म विभोर हा जाता है।

देवी माता की स्तुति म स्यावण माता का गीत भी श्रम परिहार हतु गाया जाता है। इन सब गीता के नमून राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2 म तथा श्री नरोत्तम दास एव ठा० रामसिंहजी आदि द्वारा सकलित राजस्थान क लोक गीत पुस्तका म मिलेंगे।

पशु चराने के गीत—राजस्थान म चरवाहा के गीत अधिकतर वर्षा स सम्बन्धित हाते हैं। भेड बकरी चरान वाल गडरिय और गउए चरान वाले ग्वाला क निर्द्वन्द्व जीवन की झलक उनक गाता म मिलती है। इन गीता म ग्रामीण जीवन क पारिवारिक चित्र भी प्रस्तुत हाते हैं। पशु चराने क लिय रेवड का ल जात हुए चरवाहा अथवा उसकी पत्नी निर्द्वन्द्व भाव स गीता की मस्ती म बह जात हैं कभी इन्द्र की स्तुति[1] करते है कि इन्द्र दवता मावली (प्रचुर) वर्षा करे जिसस पशुआ क लिय घास उगे और गर्मी का प्रचण्डता दूर हा कभी बादल उमडत देख हर्षाभिव्यक्ति करत हैं। इन गीता म बादल गरजन बिजली चमकन और धीरे धीरे वर्षा की बूद पृथ्वी पर गिरन का मनोहारी वर्णन रहता है जस —

'बादलिया घरराव छ।
आया आया जेठ असाढ़ ओ स्याम इदरियो घरराव छ।
मेहा रो मस आई ओ स्याम बादलियो घरराव छ।
हलिया रो साज सवारो ओ स्याम बादलिया घरराव छ॥"

× × × ×

"ओ किन बादल गाज आ किन चमक बीजली।
म्हार डरा बादल गाज आ नाला चमक बीजली।
ओ किसोक बादल गाज आ किसोक चमक बीजली।
ओ गहरो गहरो गाज आ ल ल चमक बीजली।
ओ मधरो मधरो गाज आ चम चम चमक बीजली।'

इसी प्रकार चौमास बारहमास गीता म चरवाहा तथा कृषका का उद्गार मिलता ह—प्रत्यक महीन म ऋतु अनुसार हान वाली फसल की कल्पना कर कर क ग्रामीण जन आनन्दित होत हैं—इस स्वाभाविक एव स्वत स्फुरित आनन्द की लहरा म पशु चरान और खेती करने क श्रम का ग्लान की महती शक्ति निहित ह। बारहमास का एक सुन्दर आल्हादपूर्ण गीत देखिय राजस्थाना लोक गीत क द्वितीय खण्ड म पृ० 74 पर जिसकी अंतिम लाइना म ग्रामीण दम्पति क हृदयगत उल्लास की

---

1 गीत देखिय—राजस्थानी लोक गीत (खण्ड 2) पृष्ठ 70

भनक दर्शनीय है। प्रत्येक महीने में होने वाली विभिन्न फसल का वर्णन करती हुई गृहिणी आनन्द विभोर हुई गाती है —

' साढ महीने बिरखा लागी, बाजरिया री बाह
मारूजो म्हारे मातो साव, वाहरे साईं बाह।

× × × ×

बसाखा मे धूप पडसी, तावडिये री ताह,
पडछाया मे पडिया रहसा, वाह रे साईं वाह।
जेठ महीने धूप पडसो तावडिये री ताह,
खेजर चढकर खोखा खासाँ, वाह रे साईं वाह।"

किसी गीत में माता–पुत्र के वार्तालाप द्वारा बछ की मान मनौवल का मन मोहक चित्र है। छोटा सा लाडले ग्वाले का गउएं चराने जाने हेतु मां मनाती है—बेटा अनेक प्रकार के बहाने करता है।[1] इसी प्रकार जयपुर के एक गीत में बालक कहता है—दादा मुझे तो पाटी बस्ता ला दे मैं गाय चराने नही जाऊगा—मै तो पढ लिख कर नाजम बनू गा।[2] एक अन्य चरवाहे के गीत में वर्षा के कारण पशुओं को चराने जाने की असमर्थता प्रकट की है —

"डूगरा मे मेह बरस।
कठ चर म्हारो रेवडियो, ए कुण गया गुवाल ॥ डूँगरा मे०
डूगरा मे गयो म्हारो रेवडियो, कोई मारूजी गया गुवाल ॥ डूँगरा मे०
किसोक बरस मेहडियो, किसोक भरिया ताल।
मूसलधारा मेहडो बरस कोई भिलमिल भरिया ताल॥" डूँगरा मे०

कतारियों के गीत—ऊट को राजस्थान का जहाज माना जाता है—कारण कि रेतील क्षेत्रों में सब प्रकार का सामान इधर से उधर ले जाने का काम ऊट से ही लिया जाता है। पक्की सड़कों के अभाव में प्राचीन काल में गावों में यात्रा भी ऊट द्वारा ही होती थी—अब भी बहुत से स्थानों तक पहुचने का साधन ऊट ही है। ऊट के पावों की बनावट इस प्रकार की है कि उस मरुभूमि में चलने में कठिनाई नहीं होती। उसके तलुओं में गद्दियाँ बनी होती है और गले में पानी रखने की थैलियां होती हैं जिनमें वह इतना पानी सचित कर लेता है कि रेतीले मैदानों की लम्बी लम्बी यात्रा में पानी न मिलने पर भी ऊँट आनन्द पूर्वक धीमी धीमी चाल से चलता जाता है। राजस्थान के ग्रामीण जीवन में यातायात का प्रमुख साधन ऊट है व्यापार के लिये अनाज काकड़ा मतीरे पशुओं के लिये चारा भवन निर्माण हेतु ईंट चूना कंकर आदि सामान इधर से उधर ले जाने का काम ऊट से ही लिया जाता है। अन

---

1 गीत देखिये—राजस्थानी लोक-गीत पृष्ठ 220
2 गीत देखिये—राजस्थानी लोक गीत (खण्ड 2) पृष्ठ 136

ऊँटों पर सामान लाद कर ले जाते हुए पुरुष गीत गा गा कर अपना श्रम परिहार करते हैं। इनके गीत सामान्यतः 'बिणजारा' संज्ञा से अभिहित होते हैं और एक प्रमुख गीत है 'गोरबन्द'[1]। इस गीत में गोरबन्द चोरी होने पर ऊंट वाले कतारिये की मनःस्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है —

"खारा समदर सूं कोडा मगाया, जूनेगढ़ सूं पायो रे, म्हारा गोरबन्द
प्रसि कोडा तो ऊजला, बिच, हडबो कांच [illegible]डायो रे।
गोरबन्दिये रे कारण म्हारा बारे को होन पड गयो रे॥ म्हारा गोरबन्द०
गोरबन्दिये ने बणावता म्हाने महीना लाग्या रे॥"

इसी प्रकार ऊँट पर जाते हुए कतारियों के मुख से अन्य गीतों की ध्वनि भङ्कृत होती रहती है जिनके विषय अधिकतर अपने व्यवसाय से सम्बन्धित होते हैं और कुछ भजन व पौराणिक गीत भी गाये जाते हैं।[2]

एक बिणजारा गीत में पति पत्नी के वार्तालाप में पत्नी द्वारा कर्त्तव्यनिष्ठा की प्रेरणा देते हुए पारस्परिक प्रेम भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है —

"बिणजारा रे लोभी,
लोग तो दिसावर न जाय, तन पर अठया बधू सर। बिणजारा०
बिणजारी ए लोभण, औरा क पल्ले [illegible] दाम,
म्हारे तो पल्ले काय नहीं, बिणजारी ए लोभन।
बिणजारा ए लोभी, ले आ गले के रो हार,
बाव पग रो लेज्या टोडरो।" बिणजारा०

इसी प्रकार पत्नी अपने अन्य आभूषणों के नाम ले ले कर पति को व्यापार हेतु दिसावर जाने को प्रेरित करती है।

बारेती गीत—राजस्थान के कुएं अत्यन्त गहरे होते हैं—इसीलिये इन कुँओं के नाम के साथ प्रायः 'सागर' लगा रहता है—अलख सागर कुँआ, नवल सागर कुँआ, अमृत सागर कुँआ आदि। आधुनिक युग में तो विज्ञान के बल से बड़े नगरों में बिजली की शक्ति से कुँओं का पानी सर्वत्र प्रसारित किया जाने लगा है परन्तु प्राचीन काल में कुँओं के पास की बाड़ी और खेत सींचने हेतु पानी निकालने में अत्यधिक श्रम करना पड़ता था। अब भी जिन क्षेत्रों में गाँवों तक बिजली से पानी निकालने की व्यवस्था नहीं हुई है ग्रामीण जन स्वयं ही यह श्रम साध्य कार्य करते हैं। रात भर माली चरस की सहायता से पानी निकाल कर हौज जैसे स्थान पर संचित करता है—प्रातः उससे खेतों और बाड़ियों की सिंचाई होती है।

---

1 गोरबन्द ऊंट पर सामान लादने का बन्द थैला सा होता है।
2 बणजारा गीत देखिये—राजस्थानी लोक गीत (खण्ड 2) पृष्ठ 133। भजन और पौराणिक गीत भी इसी पुस्तक में अन्यत्र पृष्ठ 108–110 तक मिलेंगे।

यह पानी निकालने का कृत्य राजस्थानी भाषा में 'बारा' न्ना कहलाता है और पानी निकालने वाले को 'बारती' कहते हैं। राजस्थान का यह 'बारती' यथार्थ में पृथ्वी पुत्र है। उसका जीवन प्रकृति श्रम में आनप्रोत है—श्रम परिहार हेतु गाये जाने वाले उनके गीतों में इस प्रकृति प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। प्रकृति में उनका जीवन रमा हुआ है—यही प्रकृति प्रेम की धारा उनके गीतों में स्फुरित होती है जिसके प्रभाव में कुए में पानी निकालने का कठोर काम उनके नित्य मनोरंजन में परिणत हो जाता है। कुएँ पर खड़े होकर पानी निकालना खतरे से खाली नहीं है फिर भी माली इस खतरे की परवाह न करता हुआ आनन्द-मग्न होकर मस्ती में गाता है—उस निरक्षर कवि के गान स्वाभाविक रूप में स्वतः स्फुरित होने के कारण सरस और सरल होते हैं। खतरे के स्थान पर खड़ा हुआ यह पृथ्वी पुत्र सर्वप्रथम देव स्तुति करता है—सर्वप्रथम बजरंगबली का स्मरण करके अन्य देवताओं की वन्दना होती है। फिर ऋतु विधान का परिचय देता हुआ वीर रस के दोहे भी बोलता है।

माली के गीतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रेमी प्रेमिकाओं की भावमयी गाथाएं होती हैं। ढोली जमाल, मावी ग्रौसल आदि की प्रेम गाथाएं बारती गीतों में पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ कुछ दोहे दिये जाते हैं—

'ढेलो पानी बीनती रे, परमेसर को जाप।
पर हाथा मा कीजिये रे, करिये आपो आप॥"

× × × ×

"या तन की भट्टी करूँ रे, मन को करूँ कलाल।
नणा का प्याला करूँ रे, भर भर पियो जमाल॥"

× × × ×

"धानी के घर धन बठ रे, ज्यू कूव को नीर।
सापुरसां के आदव रे, सब काहू को सीर॥
सिर मटको कसर भरी रे, चल गयद ज्यू श्राल।
पाछी मुड कर देखती रे, कद को लडो जमाल।'

माली के स्वरों में वीर रस की धारा भी दर्शनीय है—

पूत जण तो दोय जण रे के दाता के सूर।
नातर रहजे बांझडी तू, मती गमाजे नूर॥

बारती को स्वर का पूरा ध्यान रहता है और वह स्वर बनता है चरस की चाल से। चक्कर खाते हुए चरस का स्वर ही माली को गाने की प्रेरणा देता है। जैसे बादलों की उमंग देखकर मोर नाचने लगता है, उसी प्रकार चरस के भूणं की आवाज पर माली मस्ती में आकर गाने लगता है। किसी गाँव में कई कुएँ होते हैं तो आधी रात के समय सब जगह से चरस के साथ बारती के गान के स्वरों से समां बंध जाता है। इस प्रकार गीतों के सहारे से बारती का अत्यन्त श्रम साध्य कठोर काम सरल व सरस बन कर स्वाभाविक रूप में सम्पन्न हो जाता है।

पणिहारी गीत—सिर पर मटकी व गूनिया[1] रख रख कर कुएँ से पानी लाती हुई स्त्रियाँ भी गीत गा गा कर श्रम परिहार करती हैं। इन गीतों को मुख्यत पणिहारी नाम से अभिहित किया जाता है। यद्यपि गीतों के विषय विभिन्न होते हैं—पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रसंग इन गीतों में मिलते हैं परन्तु शृंगार रस से पगे हुए दाम्पत्य जीवन की झाँकी इनका मुख्य स्वर माना जाता है। इस भाव के गीत विशेष राजस्थान में पणिहारी नाम से प्रचलित हैं।[2] यह गीत राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ एवं अत्यन्त लोकप्रिय गीतों में से है। ग्रामीण जीवन में प्रातःकाल रंग बिरंगे केसरिया कसुम्बल ओढ़न ओढ़े सिर पर इंडणी और इंडणी पर पानी के लिये घड़े व गूनिये रक्खे हुए कुँओं पर जाती हुई स्त्रियों का दृश्य बड़ा मनमोहक होता है। अड़ोसन पड़ोसन कुएँ पर इकट्ठी होकर अठखेलियाँ करती और गाती हैं। इनके गीतों में कभी-कभी सास बहू एवं परिवार के अन्य सदस्यों से झगड़ों का भी उल्लेख रहता है—और इंडणी' का वर्णन करते-करते आत्म विभोर हो जाती है। इनके अतिरिक्त चूँदर लहरिया आदि तीज के गीत भी गाती हैं। ईंडूणी[3] गीत का एक नमूना है —

"म्हारी सवा पाव की ईंडाणी म्हारो सवा तार को सूत गमगी ईंडूणी।
म्हारी मावजी बणायी ईंडूणी,
म्हारा मामोजी कात्यो सूत, गमगी ईंडूणी,
मोतीडां जड़ी म्हारी ईंडूणी,
कोई हीरा जड़यो म्हारो सूत, गमगी ईंडूणी
म्हारी सवा लाख री ईंडूणी,
म्हारो सवा लाख रो सूत, गमगी ईंडूणी।
म्हे और कातस्यां सूत, गमगी ईंडूणी
मोतीडा जड़ास्यां ईंडूणी,
म्हे हीरा जड़ास्यां सूत, गमगी ईंडूणी॥"

भाटा फोड़ने वालियों के गीत—राजस्थान के कुछ भागों में पत्थर का काम होता है—यहाँ मजदूर स्त्रियाँ भाटा तोड़ते समय पत्थर टूटने की आवाज के साथ स्वर मिलाती हुई सुन्दर गीत गाती है। काम के साथ साथ गाये जाने वाले गीतों की राग उस कार्य के स्वरूप से निर्धारित होती है—काम की तीव्र गति के साथ गीत की राग मिलकर सरस संगीतमय वातावरण की सृष्टि करते हैं जिसमें भाटा

---

1 पीतल के छोटे-बड़े टाकनी जैसे पानी के बर्तन को राजस्थान में गूनिया कहते हैं।
2 पणिहारी गीत प्राय अनेक संकलनों में उपलब्ध हैं।
3 सिर पर घड़े को टिकाने के लिये गोल-गोल चकरी जैसी बनी हुई होती है—इस साधारण सी चीज पर ही पणिहारी हर्षोन्माद की मनःस्थिति में भावपूर्ण गीतों की रचना कर लेती है।

ताल्ग जम कठोर श्रम की कठोरता का भान ही नहीं होता। जयपुर के दौसा क्षेत्र में गाये जाने वाला इस प्रकार का एक गीत यहाँ दिया जाता है —

> मालण की डूंगरी मे चाल द्य मसीन,
> माटा फोड र लोड्यो, म्हारो देवरियो चाल र ए खाम।
> इक्लो सकडो ना जन र, नाय उजाला होय,
> लछमन भूसा मादा राम भरेसी होय। मालरा की०

एस ही एक और गीत म ग्रामीण जीवन के दाम्पत्य प्रेम की मनोहर झाँकी मिलती है —

> "मालनी की डूंगरी मे भमडा चल,
> रोडो फोड रे टावरा को बार्वासयो।
> दिन की उगाली घर सु निकस्यो, दोपहर दिन चढ्यो आवतो
> मालरी की०
> रोटी खाय ढोल हुक्को भरियो, जब म्हारे जीव मे जीव जी आयो॥'
> मालरी की डूंगरी मे०[1]

चक्की चरखे के गीत—ग्रामीण महिलाए प्रात चार बजे स उठकर आटा पीसती हैं—चक्की चलाते समय आनन्द मग्न हुई गीत गाती हैं—य जांत[2] के गीत कहलाते हैं। इन गीतों म चक्की क अतिरिक्त प्राय भजन प्रभाती और हरजस आदि होते हैं। इसी प्रकार दिन म फुरसत के समय स्त्रियाँ सूत कातती हैं—चरखा चलाते समय आनन्द मग्न हुई चरखे के घूमने की आवाज क साथ-साथ स्वर मिलाती हुई गीत गाती ह। भजन हरजस तो श्रम परिहार क लगभग सभी अवसरों पर गाये जाते हैं—चरखा कातते समय चरखे पर बनाए हुए गीत भी गाये जाते ह —

> चरखा हिरद को चाव घण्या।
> काहे को तेरो बण्यो चरखलो, काहे को रे जडाव जडियो
> अगर चनण को मेरो बनो चरखलो, सोने को रे जडाव जडयो
> क मासा को तेरो बण्यो चरखलो, क मासा को जडाव जडियो
> दस मासा को मेरो बण्यो चरखलो, नौ मासा को जडाव जडियो
> कुण स सहर मेरा बण्यो चरखलो, कुण स सहर जडाव जडियो
> दिल्ली ए सहर मेरो बनो चरखलो जयपुरिये मे जडाव जडियो।

इन सभी श्रम परिहार के गीतों म श्रम की महत्ता स्थापित होती ह जिसके फलस्वरूप श्रम साधना म स्त्रियों क मन के उत्साह उल्लास और स्वाभाविक रस मयता का परिचय मिलता है।

---

1 पूरा गीत देखिए राजस्थानी लोक-गीत (खण्ड 2) पृष्ठ 139
2 जांत = चक्की

भील, मीणे और लगों के गीत—राजस्थान क पहाडी भाग उदयपुर और बांसवाडा क्षेत्र म भील, मीणे और लगा की बस्ती है। पहाडी जीवन की कठिनाइयो स संघर्ष करके जीवनयापन करन हेतु ये लाग मनोरंजन के साधन गान नाचने का आश्रय लेते हैं। मनोरंजन की प्रवृत्ति के कारण य लाग कठिन स कठिन परिस्थिति म भी प्रसन्न रहत हैं। इनके गीतो के विषय अन्य राजस्थानी गीता की भांति देवी देवताओ के प्रतापवासा संस्कारो एव विविध हास्य रस के, ऋतुओ और तीर्थों के वीरता और प्रेम प्रहसन आदि हाते हैं परन्तु य गीत सुनन म औरो से निराले प्रतीत हाते हैं—इनके स्वर ताल अपने है। भाषा भी इनकी अपनी हाती है। भीला के कुछ गीतो म उनके धार्मिक विश्वास, रहन सहन, रीति रिवाज और जातीय एकता का वर्णन भी मिलता है। प्रात चक्की चलाने का एक गीत है जिसे प्रभाती कहते है —

'राइवे केर्वा बोले रे,
चकड़ा री माले हरज (सूरज) ऊगो रे, जागो म्हारो माता हरज ऊगो रे।[1]

इन पहाडी जातियो के गीतो को श्रम परिहार के गीतो की श्रेणी म इसलिय लिया गया है कि गीतो के सहारे य लोग अपने जीवन की कठिनाइयो को सुगमता स पार कर पाते हैं वस्तुत श्रम परिहार हेतु अलग म गान के इनके विशेष गीत नहीं हैं।

---

1 पूरा गीत देखिय राजस्थान के भील गीत, दूसरा भाग, पृष्ठ 76

राजस्थानी लोक गीतो मे सास्कृतिक अभिव्यक्ति

संस्कृति मानव के आन्तरिक एवं बाह्य जीवन की अभिव्यक्ति है जिसके अन्तर्गत जीवन के भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सभी मूल्य आ जाते हैं। प्रत्येक देश और समाज के ये मूल्य परम्परा के प्रवाह लिए हुए आते हैं जो उस देश व समाज की संस्कृति कहलाती है। इस संस्कृति की आधारशिला वहाँ का लोक समाज होता है। लोक समाज के आचार विचार, रहन-सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है वह लोक साहित्य कहलाता है। अतः लोक साहित्य में किसी भी राष्ट्र व समाज की संस्कृति चित्रित होना निर्विवाद सत्य है।

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध हैं। आपने साकोलोव के रशियन फोकलोर नामक ग्रंथ में अभिव्यक्त विचारधारा का भी उल्लेख किया है कि लोक साहित्य में प्राचीन संस्कृतियों का अवशेष प्रधान तत्व है।

राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है जो सदियों से जमा होकर समाज में छाया रहता है। जिसमें हम जन्म लेते हैं हम जो कुछ भी करते हैं उसमें हमारी संस्कृति की झलक होती है। लोक जीवन में यह संस्कृति अपने मौलिक रूप में पायी जाती है जबकि शिष्ट समाज में इसका परिष्कृत रूप सभ्यता का आवरण धारण करके प्रकट होता है। लोक साहित्य की अभिव्यक्ति में इस शुद्ध स्वच्छन्द लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं। आदि काल से जो हमारे लोक काव्य और दर्शन की रचना होती आयी है एवं चित्र व मूर्तियाँ निर्मित हुई हैं उनमें हमारी संस्कृति का सच्चा रूप प्रतिबिम्बित है।

संस्कृति वह वस्तु मानी गई है जो हमारे जीवन में व्याप्त है परन्तु सभ्यता के आवरण में लुप्त हुआ प्राचीन संस्कृति का सच्चा स्वरूप हमें लोक गीतों के वातायन में ही मिलना सम्भव है। किसी भी देश या काल के गर्भ में सोई मौलिक संस्कृति लोक गीतों द्वारा पुनः उद्घाटित हो सकती है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक गीतों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि ग्राम गीतों का महत्त्व उनके काव्य सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है उनका

एक बहुत बड़ा कार्य है—एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो विस्मृति के गर्भ में लुप्त हो गई है। लोक समाज का एक विशाल जीवन दर्शन होता है जिसे वह अपना धर्म मानता है और जो उसके आचार विचार तथा दैनिक कार्य-कलापों में मुखरित रहता है। महात्मा गाँधी ने लोक गीतों को संस्कृति के पहरेदार कहा है। राजस्थानी लोक गीतों में वहाँ के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सजीव रूप प्रतिबिम्बित है। जन-जीवन की सादगी सरलता और आमोद प्रमोद के साथ उनमें सरसता पूर्ण रूपेण दर्शनीय है। यही वहाँ की लोक संस्कृति का स्वरूप है। राजस्थान के साधारण गृहस्थ का जीवन आत्मतुष्टि का व्यंजक प्रतीत होता है। सम्मिलित परिवार की प्रथा जीवन की आवश्यकताओं की सीमित परिधि बुद्धिवादिता का अभाव इस जीवन को सुखी और स्पृहणीय बनाये हुए हैं। उसमें नृत्य संगीत चित्रकला और काव्य प्रेम आदि ललित कलाओं के भी दर्शन होते हैं। लोक जीवन की अल्हड़ता को ये ललित कलाएं कोमलता का स्पर्श देकर उसे सरस तथा मनोरंजक बनाती हैं। पारिवारिक जीवन के अनेक स्वाभाविक चित्र लोक साहित्य में मिलते हैं। भाई-बहिन के भावनामय प्रेम सास-ससुर का लाड पति के प्यार और माता पिता के वात्सल्यपूर्ण स्नेह सारांश में सम्बन्धित गृह चित्र रेखाएँ राजस्थान के लोक गीतों में उभरी मिलती हैं।

सुखी जीवन का एक चित्र है—पुत्र वधू अपने सास श्वसुर का अभिनन्दन करती हुई कहती है—

> ससुराजी म्हारा घर रा राजा सासूजी ठकुराणी औ।
> सुसरोजी हुकम को ठइया वाल सासड़रो रावलिया जी॥

इसी प्रकार सर्वसम्पन्न गृह की स्वामिनी के उमंग भरे उद्गार देखिए—

> बेटा तो पोता म्हारे मोकलो ए सइयां।
> बेटा तो म्हारे पूरा दड़ सौ ए सइयां।
> पोता रो अन्त न पार,
> गुजस्यो तो मरयो म्हारे लूडिया सइया।
> लूँटो तो लूटी डगरिया धोलिया सइयां झाल्या रो अन्त न पार।
> पोता तो झूले सोवण पालणे ए सइया, बेटा तो खेले गाव गुवाड़।
> बेटा तो पोता म्हारे मोकला ए सइया॥

आज परिवार नियोजन योजनाओं के सामने दूध सा बेटे अनन्त पोतों की बात असम्भव प्रतीत होती है परन्तु राजस्थानी गृहिणी के ये उद्गार प्राचीन भारत की सुखसमृद्धि के परिचायक हैं। भारत की शस्य श्यामला भूमि में न अन्न की कमी थी न जन की। गो पालन और गोवर्धन धार्मिक कर्त्तव्य माना जाने के कारण दूध की नदियाँ बहती थी। उस युग में अधिकाधिक सन्तान का होना परम सौभाग्य माना जाना स्वाभाविक था।

होली के अवसर पर गाने का आम्बा मोरिया गीत पारिवारिक सुख के चित्रण का सुन्दर नमूना है। सुखी कुटुम्ब के प्रतीक आम के वृक्ष की समृद्धि से गीत आरम्भ होता है। इस समृद्धि से पूर्व वसन्त ऋतु के आगमन पर एक दिन गृहिणी अपनी सहेलियों के साथ महल से उतरी और सगुणी सास ने उससे कहा कि बहू आज मुझे गहने पहन कर दिखाओ इस पर बहू उत्तर देती है कि मेरे आभूषण तो समस्त परिवार के सदस्य हैं। वह सभी पारिवारिक व्यक्तियों को अपने आभूषण उपमानों द्वारा वर्णन करके पारिवारिक सुख का परिचय देती हुई अन्त में कहती है सासूजी आपकी कोख को धन्य है जिसने मेरे पति को जन्म दिया। यह देखिए गीत की अन्तिम पंक्तियों में सास बहू के पारस्परिक प्रेम की झलकी—

म्हे तो वारया बहूजी थारा बोल ने,
लडायो म्हारो स परिवार,
सहेल्या ए आंबा मोरिया
म्हे तो वारया जी, सासूजी थारी कूंख ने।
सहेल्यां आबा मोरिया

यह है राजस्थान की संस्कृति, जिसकी झांकी यहां के लोक मानस से स्फुरित स्वर लहरियों से विभिन्न रूपों में दर्शनीय रहती है। इसी प्रकार के अन्य पारिवारिक प्रेम के गीतों से राजस्थान के सांस्कृतिक भावों की व्यंजना होती है। जिठानी के मुख से देवरानी के प्रति लाड और देवरानी द्वारा पगा लगने की भावना प्रकट करने वाला एक गीत है—

मेमद चढायो, देवर परणी ने परावो जी।
परणी ने परावो, म्हारे पगां लगावो जी॥

इसी प्रकार पूरे गीत में गहनों के नाम ले लेकर देवरानी के प्रति प्रेम प्रकट किया गया है।

दाम्पत्य प्रेम के गीतों में भी भारतीय संस्कृति की विविध झांकियां प्रस्तुत हुई है। संयोग व वियोग दोनों प्रकार की शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति इन गीतों में प्रचुरता से पायी जाती है।

रूठी हुई पत्नी को मनाते हुए पति के बोल सुनिये—

खोलो खोलो गोरी जड़िया किवाड
बाहर आयो थारो सायबो जो राज।

म्हारा सायबो शब्द में राजस्थानी नारी के पतित्व धर्म का सुन्दर झलकियां मिलती हैं। एक ही चिरकाल पश्चात् परदेश से आये पति के प्रति प्रेम प्रदर्शित करती हुई पत्नी के हृदयहारी भाव देखिये—

रग, रग जिमास्या जो कोडका खूब करास्यां जो,
मणदल वाइए, रावल जिमास्यां जो।

नई सभ्यता में रंगे हुए स्त्री पुरुषों में दाम्पत्य प्रेम के इस उज्ज्वल स्वरूप का दर्शन दुर्लभ सा हो गया है।

आदर्श प्रेमिका के रूप पंखा झलती हुई पत्नी कहती है—

म्हे झाल डुलाऊँ, फूलां रो पंखो म्हारे हाथ मे,
ऊँचो मेड़ी रावलो ए चौमुं डा दिवला जोय,
ढोल्यो पलंग निवार को सो गयो सायबो,
मजो म्हे झाल डुलाऊँ फूलारो पंखो म्हारे हाथ मे।

पृथ्वीराज चौहान हमीर हठ, अमरसिंह मालदे, हाड़ीरानी, महाराणा राजा भोज और जसल आदि की यश गाथाएँ राजस्थान संस्कृति में वीर पूजा की द्योतक हैं। प्राचीन काल में नगाड़ा-नगारी ढोलक और सारंगी आदि लोक वाद्यों की संगत में इन गाथाओं पर बने हुए ख्यालों का अभिनय करती हुई रास मण्डलियाँ काल-काल में राजस्थानी संस्कृति का प्रचार और प्रसार करती पायी जाती थी। सभ्यता के विकास से सिनेमा घरों की वृद्धि के साथ इन लोक मनोरंजनकारी प्रवृत्तियों का लोप होता जा रहा है।

विवाहादि संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक गीतों से देवी देवताओं के प्रति आस्था भाई-बहिन का प्रेम और आमोद प्रमोद की भावना के विभिन्न रूप व्यंजित होते हैं। विनायक भैंरो रामदेव आदि के गीत देवी-देवताओं में उनकी अनन्य भक्ति के प्रतीक हैं। भात के गीत भी राजस्थानी लोक संस्कृति में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। मायरे में बहिन के हृदय की धड़कन अनुभव करने का विशेष महत्त्व है वर्णन का नहीं— जैसे—

आयो छ माँ को जायो बीर हीरा जड़ ल्यायो।
ओढ़ूँ तो हीरा रे बीरा झड़ पड़,
मैलूँ तो तरसे बाई रो जीव हीरा जड़ ल्यायो।

पान सुपारी व पान का बीड़ा लेकर भाइयों को न्यौतने जाना बहिन की मार्मिक भावना का द्योतक है—मायरा[1] लेकर भाई जाता है बहिन को चूनड़ उढ़ाता है इस अवसर के चूनड़ी गीतों में बहिन की स्नेहपूर्ण आत्मा का छलछलाना हुआ प्रेम दर्शनीय है।

राजस्थानी लोक गीतों में यहाँ के खान पान और वेशभूषा आदि में भी अन्तर लोक संस्कृति झलकती है। मनुष्य जीवन की स्वाभाविक आवश्यकताएँ समान होते हुए भी विभिन्न क्षेत्रीय परिस्थितियों व परम्परागत मान्यताओं से आहार विहार और वेशभूषा आदि में भेद उत्पन्न हो जाते हैं। राजस्थान के अधिकांश भागों में

---

1 बहिन के घर विवाह में वस्त्राभूषण आदि लेकर भाई आता है वह मायरा या भात कहलाता है।

प्रकृति कोप से हरी भरी साग-सब्जियों के अभाव होने के कारण निराले ढंग के भोज्य पदार्थ बनते हैं। मोठ, बाजरी, मक्का आदि सुलभ अनाजों और गोरस के योग से पौष्टिक और स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करके राजस्थानी गृहिणी हरे शाक, फल आदि के अभाव की पूर्ति करने में अपनी दक्षता का परिचय देती है।

त्योहार व अन्य मांगलिक अवसरों पर लापसी बनाने और अतिथि को सीरा, पूरी व घी शक्कर के साथ भात खिलाना यहाँ की संस्कृति का अंग बन गया है। अन्य विशेष व्यंजन हैं— धूंगी राबड़ी, मोठ बाजरी रो खीचड़ो और चूरमा। केर कूमटे, टींटी, खेलरा, फोगलारो और सांगरियाँ आदि यहाँ के विशिष्ट साग हैं, इनसे मिलकर पचमेला तैयार किया जाता है। इसका एक लोक गीत में सुन्दर उल्लेख हुआ है— गृहिणी कहती है—

यो पचमेला रो साग देवतड़ो ने भी नाय मिलेगी राजी,
मीठा मीठा काचरा, मतीरफली, कचनार
मही मनी मिरची पिसो, छियो राम रस डार,
माउफली मुंगफली मांय मसीरो मिलासे।
तेला रा म्हे छूंकण दीनी, दीनी हाण्डी चढ़ाय ॥ यो पच०

शुद्ध दूध, दही और घी की यहाँ प्रचुरता है। गोरस का धीणा मना से व्यक्त किया जाता है। घर में धीणा का होना परिवार की सम्पन्नता का लक्षण समझा जाता है।

म्हारे घर धीणो घणो कोई दूभण दोय दोय भोट,
म्हारे घर धीणो घणा।

शिष्टतापूर्ण आधुनिक जीवन की खान-पान पद्धति में औपचारिकता मिलेगी, आडम्बर मिलेगा और उसमें कलात्मकता के दर्शन भी होंगे परन्तु उसमें लोक जीवन में व्याप्त हिलोर दृष्टव्य नहीं।

राजस्थानी लोक गीतों में व्यक्त खान-पान में यहाँ की संस्कृति की सरसता और सादगी के साथ लोक मानस का उछाह एवं रंगीलापन झलकता है।

लोक गीतों में अभिव्यक्त राजस्थानी वेशभूषा से भी यहाँ की संस्कृति के सम्यग दर्शन होते हैं। राजस्थानी लोक गीतों में वर्णित पोशाक का चटकीला भड़कीला और रंगीला छबीलापन व्यक्त होता है। पुरुषों की पोशाक में मुगल राज्य का प्रभाव अब भी दृष्टि में आता है—भद्र पुरुषों की दरबारी पोशाक अचकन चूड़ीदार पजामा और पगड़ी है। पचरंग पगड़ी दयाल और सोसनी रुमाल का उल्लेख लोक गीतों में मिलता है।

"परण्यो ने रंगासूं एक सोसनो रुमाल"

राजस्थानी महिला की पोशाक म घूमदार घाघरा ओढना कुर्ती काचली के अतिरिक्त त्योहार विवाह पुत्र जन्म आदि विशेष अवसरा पर पहन जाने वाले लहरिया पोमचा चूनडी और चीणटियो (पीलिया) आदि वस्त्र यहाँ की कलात्मक रुचि एव मा यमयी प्रकृति के परिचायक है। तीज के त्योहार पर लहरिया ओढना विवाहादि मागलिक अवसरा पर चूनडी एव पुत्रवती माता को चीणटिया उढाना सास्कृतिक महत्व रखते हैं।

लोक गीता म इस प्रकार के अनेक प्रसग आते हैं—

"माँ तीज नवेली आयी ए कुण ओढावे चूनडी
लाये हो जी भँवर म्हाने चीणटियो।"

राजस्थानी नारी की वेशभूषा एव शृगार सम्बन्धी अनेक लोक गीता म स्त्रिया के आभूषणा का वर्णन है। सौभाग्यवती स्त्रिया मस्तक पर बोरिया और हाथा म हाथी दाँत का चूडला आदि पहनती हैं, जो यहाँ की सस्कृति की द्योतक है। तीमणिया टुस्सा कडला और टड्डा आदि भारी भारी सोन के आभूषण लोक जीवन की समृद्धि का गान गान के साथ राजस्थानी नारी की शृ गारमयी भावनाओ के परिचायक हैं।

त्योहार और मले—विभिन्न मेले और त्योहार पर गाये जाने वाले गीतो से लोक सस्कृति का उज्ज्वल रूप परिलक्षित होता है। गीता म निहित लोक के आनन्द उल्लास और सामाजिक रीति रिवाजा की छाया देश के उस ऐश्वयपूर्ण युग का स्मरण दिलाती है जबकि लोगा का रोटी कपडे के लिए व्यग्र नही होना पडता था न ही भौतिकवादिता के प्रपच न उनके मानस को विचलित बनाया था। इन त्योहारा और मेला पर गाये गाने वाले गीता से राजस्थान की सस्कृति का रगीलापन परिलक्षित होता हुआ मानस का उत्साहपूर्ण आनन्द उद्वेलित होता है।

राजस्थान म त्योहारा व मेला का विशेष बाहुल्य है। तीज और गनगौर के मेला पर रग बिरगी केसरिया कसुमल पोशाका म हस हस कर गीत गाती हुई राजस्थानी स्त्रिया के झुण्ड के झुण्ड सडका पर गलियो म निकलते हुए अनुपम आनन्द की हिलोरें प्रवाहित करते हैं। लोक साहित्य म इन गीता व पोशाका का वर्णन लोक सस्कृति का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। त्योहार मनाने के उत्साह और गाये जाने वाले गीतो से जीवन के हर्षोल्लास और आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। भाई-बहिन सम्बन्धी एव सौभाग्य सम्बन्धी त्योहारा के गीता म लोक जीवन की आन्तरिक स्नेह भावनाएँ दर्शनीय हैं।

गौरी पूजन भारतीय सस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अग है। उसी का एक रूप गनर का मेला राजस्थान भर म एक विशेष अवसर है। यहाँ के बडे बडे नगरा म यह मेला धूम धाम से लगता है। केसरिया कसुम्बल रग बिरगी गोटे किनार की पोशाक पहन आभूषणा से सुसज्जित सौभाग्यवती राजस्थानी महिलाएँ तथा कुँवारी कन्याए

हुने देखकर गवर के गीत गाती हुई जब मन म निकलती हैं तो एसा समां बंधता है मानो राजस्थानी संस्कृति मुंह बोले खडी हो। इन गीतो म राजस्थानी नारी की मनो भावनाम्रो की मनमोहक झलक मिलती है। राजस्थानी भाषा के परम विद्वान एव लोक साहित्य प्रमी श्री दीनदयाल ओझा ने अपनी पुस्तक राजस्थान का वास्तविक पव गणगौर म गणगौर का सुन्दर सास्कृतिक चित्रण किया है। गौरी के प्रति गाय जाने वाले विविध भावनापूर्ण गीतो का कुछ अश यहां दिया जाता है जिसम राजस्थान की रंगीली सस्कृति झलकती है—

> "गवर गढा सू ऊतरी ए,
> हो ए गवर रजा हाय केवल सिरफूल, बाग मे खास ए।
> बागा रो काई देखबो ए गवरजा देखो अलवर सहर
> बाग मे खाल ए।"

एक गीत म गवर का नखशिख वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेका गीत हैं। सिंहासन की सजावट गौरी पूजन के पुष्प चयन करने व पुष्प लेकर घर जाने के मह्न्दी सीचने बाटने के गीत हैं जिनम गवर के प्रति लोक जीवन की अटूट श्रद्धा और भक्ति भावना की अभिव्यक्ति होती है। इस मेल के अवसर पर लोक जीवन की रग रेलियाँ तथा जीवन का रंगीलापन पराकाष्ठा पर पहुँचा प्रतीत होता है।

इसी प्रकार तीज और गुडल के गीत राजस्थानी सस्कृति की मनोहर छटा के प्रतीक हैं।

राजस्थानी लोक-गीतो मे कलात्मक सौंदर्य

प्रत्येक अभिव्यक्ति के दो पहलू होते हैं—एक वस्तु विषयगत दूसरा रूपगत। अभिव्यक्ति के इन दो पहलुओं में से कला का सम्बन्ध रूप से है। रूप सौन्दर्य ही कला का प्रधान विषय है।[1]

वास्तव में लोक साहित्य मानव के हृदय में स्वत उद्भूत भावों का प्रकटीकरण है। न उसके लिए कोई शास्त्रीय नियम बने न उसके सृष्टा ने वे सीखे। जिस प्रकार पक्षियों के कंठ में राग स्वाभाविक रूप से निकल कर गान का रूप धारण कर लेते हैं और मनुष्य को वह कितना प्रिय लगता है वैसे ही कोयल की सुरीली कूक और पपीहे की मधुर पी पी की भांति मानव के कंठ में भावों के प्रबल आवेग में जो वाणी या कूक निकली उसे लोक गीत संज्ञा दी गई—न तो लोक गीत में सौन्दर्य का ध्यान है न भाषा छन्द और अलंकार का। और न ही रस ध्वनि आदि का उसमें महत्त्व है। परन्तु साहित्य के समीक्षकों ने कहा है कि स्वाभाविक रूप में निकले हृदय के भावों में स्वत ही कविता उत्पन्न हो जाती है।

यद्यपि लोक गायक का ध्यान गीत के कलात्मक पक्ष की ओर नहीं होता फिर भी कभी-कभी भाषा और छन्द अलंकार आदि के प्रयोग बड़े चमत्कारपूर्ण मिलते हैं।

लोक-गीतों की साहित्यिक विशेषता है रस से ओत प्रोत होना। भावनाओं के आवेग में आत्मा के रस विभोर होने पर ही लोक-गीतों की सृष्टि होती है और उसमें रस की ही वर्षा होती है।

परिस्थिति के अनुकूल समुचित रस के आस्वादन कराने की विचित्र शक्ति इन लोक-गीतों में पाई जाती है। रस की प्रतिष्ठा की स्थिति इनमें मनीषी साहित्य से भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ रस उतना वस्तु सामग्री में शास्त्रीय उपादानों में परिपक्व नहीं होता जितना अभिप्रेत रहता है और गीत-लहरियों की उद्दाम गति में परिपुष्ट रहता है।

---

1 ब्रजलोक साहित्य—डॉ० सत्येन्द्र पृ० 253

राजस्थानी लोक गीतों में भी रस परिपाक की यही स्थिति अपने स्पष्ट रूप में दर्शनीय है। यहां के गीत भावों से लबालब भरे हुए हैं और उनमें साहित्यिक अंश पर्याप्त मात्रा में है। विशेषकर शृंगार रस और करुण रस के तो इन गीतों में मानो स्रोत उमड़े पड़ते हैं। विवाह तथा सौंदर्य के गीतों में शृंगार रस का सुंदर नमूना और मंद हास का उज्ज्वल दृष्टान्त मिलता है। दाम्पत्य प्रेम के गीत तो हैं ही शृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष के उदात्त भावों से पूर्ण रस के सागर।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है "मारवाड़ जैसे सूखे प्रान्त में भी मधुर प्रेम और करुण रस के झरने प्रवाहित मिले। वहाँ भी ग्राम कविता का विकास इसी उत्साह के साथ हुआ है जैसा भारत के अन्य प्रान्तों में।" आगे आप लिखते हैं कि "वीर रस की तो यहां कमी नहीं पर संयोग और वियोग शृंगार में भी यह प्रान्त किसी से पिछड़ा नहीं है।"[1] वास्तव में राजस्थान के लोक गीतों में शृंगार रस का परिपाक अत्यधिक हुआ है। राजस्थान के प्रत्येक भाग में दाम्पत्य प्रेम के गीत गांव गांव में बिखरे पड़े हैं। उत्सव त्योहार विशेषकर तीज होली आदि तथा संस्कार, आमोद प्रमोद आदि के लोक गीतों में एवं ग्राम्य जीवन के अन्य गीतों में सर्वत्र शृंगार रस के स्रोत प्रवाहित हुए दृष्टि में आते हैं। राजस्थानी नारी के एक एक गीत में दाम्पत्य प्रेम की पीर और तज्जन्य शृंगार रस की निष्पत्ति हुई है। काव्य शास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ नारी के हृदय से सीधे निकले हुए ये प्रकृत गान स्वतः ही मानों शास्त्रीय नियमों में बांधा जाने को तत्पर हो गए हों। राजस्थान के प्रचलित गीतों में पपैया नाम के गीत से यहां के गीतों की रस सृष्टि का अनुमान हो सकता है।

मा ए काली रे कलायण ऊमटी
मा ए गुडलसा बरसे मेह
पपइयो बोल्यो हरिये बाग में।

इस गीत की ध्रुव टेक हृदय में रस स्रोत उँडेलती सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार राजस्थान के प्रसिद्ध गीत घूमर पणिहारी पीपली और जला आदि गीतों में रस का समुद्र उमड़ा चला आता है।

लोक गीतों का मन्थन और अध्ययन कभी भी काव्य शास्त्र की कसौटी पर परखने के लिए नहीं किया गया। आदिम काल से अब तक सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के बीच गुजरते हुए मानव की हृदयगत भावनाओं को जांच कर उसमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए लोक साहित्य का अध्ययन किया जाता है। यही आशय लोक-गीतों का भी है। अतः स्पष्ट है कि कला का चमत्कार लोक गीतों का उद्देश्य नहीं। लोक-गीतों में कला स्वतः उद्भूत हो जाने के कारण शास्त्रीय रूप से

---

1 मारवाड़ के मनोहर गीत।

उसका पर्यवेक्षण कर लिया जाता है। उनके रस, अलंकार, भाषा और छंद आदि बाह्य उपकरणों को काव्य शास्त्र के नियमों पर नहीं कसा जा सकता है। काव्य शास्त्र के नियम शिष्ट समाज और शिष्ट साहित्य के आधार पर बने हैं। पर लोक-गीतों का मानव की प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है। इनके काव्य शास्त्र का आधार लोक जीवन है और वह लोक परम्पराओं पर प्रतिष्ठित है।

लोक-गीतों की भाषा में प्रयुक्त शब्दों में अपनी ही स्वाभाविकता टपकती है जो एक बार अंतरंग के भावों को झकझोरे बिना नहीं रहती। यदि उनके शब्दों को हटा कर कोई पर्यायवाची शब्द रख दें तो उसका सम्पूर्ण माधुर्यमय सौन्दर्य और सहज भाव नष्ट हो जायगा।

शास्त्रीय नियमों की दृष्टि से उद्दीपन, आलंबन विभाव और संचारी भाव आदि रस निष्पत्ति के तत्वों को यदि लोक-गीतों में खोजा जावे तो उनमें रस के ये तत्व उस रूप में नहीं मिलते। लोक साहित्य की रस निष्पत्ति की शैली साहित्यिक कविता की शैली से नितान्त भिन्न है। साहित्यिक रचना का कवि किसी वस्तु, मानव या स्थिति के वर्णनकर्त्ता के रूप में तटस्थ भाव से चित्रण करता है इसलिये आलंबन, उद्दीपन आदि तत्वों के रूप में वर्णन सामग्री का आश्रय लेकर उपादानों का प्रयोग करना पड़ता है। तब कहीं उन उपादानों के सहारे से रस की भाव भूमि तैयार होकर रस निष्पत्ति की स्थिति बनती है। परन्तु लोक गीतों के गायक के हृदय में पारिवारिक सम्बन्धों के कारण मनोवैज्ञानिक सान्निध्य में मन की भाव भूमि में विशेष प्रकार के रस की स्थितियाँ स्वभावतः उत्पन्न हो जाती हैं जिनके फलस्वरूप ध्वनि और व्यंजना उद्भूत होती है। इस प्रकार लोक गीतों के सृष्टा के हृदय में रस परिपक्वावस्था को प्राप्त होकर शब्द ध्वनि द्वारा व्यंजित होता है। यहाँ रस निष्पत्ति के लिये उपादान के रूप में आलंबन, उद्दीपन विभाव और संचारी की आवश्यकता ही नहीं। शब्दों का उपयोग केवल मात्र भावों के प्रतीक रूप में किया जाता है। प्रतीकों के साथ एक परम्परा बनी हुई है वही गायक या श्रावक को रस की भाव भूमि अर्थात् रस परिपाक की स्थिति तक पहुँचा देती है। लोक कवि में मनीषी कवि की भांति तटस्थता नहीं होती। वह वर्णनकर्त्ता मात्र न होकर स्वयं रस का अनुभव करने वाला होता है। उसे रस को उपादानों के सहारे तैयार नहीं करना पड़ता यदि उसके निजी हृदय में रस के स्रोत उमड़ते हैं। गीतों को सुनकर या पढ़कर हम स्वयं अनुमान हो जाता है कि इन शब्दों को बोलते समय गायक की क्या मनोदशा होगी—कारण कि स्वर में स्वयं ही उद्दीपन की शक्ति होती है जिससे कण्ठ ध्वनि में रस परिपाक होकर स्वभावतः रस की अभिव्यक्ति हो जाती है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है "लोक-गीत जनता के अवचेतन मानस की सर्वाधिक स्वयंभूत आत्माभिव्यक्ति है।" इस प्रकार लोक-गीतों के स्वतः स्फूर्ति रस में सम्प्रयोग उत्पादित रस वाली मनीषी कविता के शास्त्रीय नियमों वाले तत्व नहीं मिलते।

लोक साहित्य का कवि मन्त्र-द्रष्टा होता है। शास्त्र की वह कभी अपेक्षा नहीं रखता। उसकी प्रेरणा का प्रत्यक्ष पक्ष स्वानुभूत होता है। लोक जीवन की भाव भूमि तथा इन सबकी दीर्घ परम्परा अवश्य उसकी प्रेरणा के प्राण की भाँति व्याप्त होती है। फलतः लोक गीत की मर्यादाएँ ही इस लोक-रचना की मर्यादाएँ होती हैं। जन मानस अन्य मर्यादाओं की किंचित भी चिन्ता नहीं करता। जब मानस विकास की ओर बढ़ने लगा और उसने लिखने पढ़ने का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया तो सर्वप्रथम उसने अपने लोक-साहित्य को ही लिपिबद्ध किया। कालान्तर में शास्त्रीय नियम छन्द आदि बने और तदनन्तर वह नियमों की परिधि में पनपने लगा। इस प्रकार लोक साहित्य से ही शास्त्रीय साहित्य की उत्पत्ति हुई। अब लोक साहित्य तथा शास्त्रीय साहित्य दोनों साथ साथ पनपने लगे—एक स्वच्छन्दता से खुले मैदान में तो दूसरा कृत्रिमता की तंग चहारदीवारी में। लोक गीतों की रचना शैली और अभिव्यक्ति सभी कुछ सामूहिक चेतना और अनुभूति पर आधारित रहे हैं इसीलिए उसमें एकरूपता अथवा शास्त्रीय पूर्णता की रूढ़िवादी परम्परा की छाया ढूँढ़ना उचित नहीं। मर्मस्पर्शी भावना आलंबन और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लोक गीत सर्वोपरि हैं। अलंकार और रस इनमें साधन रूप में व्यक्त होते हैं साध्य रूप में नहीं।

लोक-गीतों में अनुभूति और अभिव्यक्ति में इतनी एकरूपता है कि उनमें सीधे घुस जाने की क्षमता है। व्यंजना में इतनी मार्मिक संवेदना है कि उनके प्रभाव के लिए मानसिक तर्क वितर्क की आवश्यकता नहीं। वह सीधे हृदय में घुस जाते हैं और उस पर अपने अनुकूल रस का बोध सहज ही करा देते हैं।

अभिजात कविताओं में रस छन्द अलंकार आदि की मर्यादाएँ निश्चित हो चुकी हैं। किन्तु लोक कविता में इतना सरल सौन्दर्य होते हुए भी कोई मर्यादा नहीं। लोक-जीवन ही उसकी मर्यादा है। जैसे बच्चे की तोतली वाणी में रूप और शिष्टता नहीं होने पर भी उसमें सरल हृदय का सरल आनन्द कम नहीं होता वैसे ही लोक कविता अपने सहज उद्गारों में रसमय और प्रभावपूर्ण होती है।

भारतीय इतिहास के विद्वान सर यदुनाथ सरकार ने लोक-गीत की व्याख्या करते हुए लिखा है "प्रबन्ध का द्रुतगति शब्द विन्यास की सादगी विश्व व्यापक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोराग सूक्ष्म भाव विश्लेषण के बजाय व्यापार की प्रधानता स्थूल किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र चित्रण क्रीडा स्थलों अथवा देश काल का स्थूल अंकन साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनातिन्यून प्रयोग या सर्वथा बहिष्कार सच्चे लोक-गानों की यह नितान्त आवश्यकताएँ हैं।"[1]

इस विवेचन से प्रकट है कि लोक-काव्य में कला पक्ष को किंचित भी महत्व प्राप्त नहीं होता। लोक-गीत कलात्मक साहित्य का अंग नहीं है। साहित्यिक कविता और लोक-गीत की प्राकृतिक कविता में रात दिन का अन्तर है।[2]

1 ढोला मारू की प्रस्तावना पृ० 42

2 वही पृ० 42

अंग्रेजी गीत काव्यों के अनुसंधानकर्त्ता प्रा० किटरेज ने भी लिखा है 'जनता का काव्य, कलापूर्ण काव्य से भिन्न है।'[1] परन्तु फिर भी लोक-काव्य के स्वतः स्फूर्ति भाव 'स्पान्टेनिटी' के फलस्वरूप कला स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है। वह कला इतनी मनोहर है कि शास्त्रीय नियमों से बद्ध होकर कलात्मक सौन्दर्य प्राप्त करने वाली साहित्यिक कविता की कला इसके समान प्रभावशाली हो ही नहीं सकती। प्रा० किटरेज लिखते हैं कि "गत दो शताब्दियों में लोक गीतों ने कलात्मक साहित्य को प्रभावित किया है, और सदैव ही ये साहित्यिक इतिहासकारों द्वारा कलात्मक साहित्य के समकक्ष माना जायगा।"[2]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक गीतों के कलात्मक रूप का वर्णन करते हुए लिखा है 'लोक-गीतों में चित्र काव्य की सी जो सौन्दर्य राशि सर्वत्र बिखरी पड़ी है उसमें हम बहुत कुछ हृदयंगम कर सकते हैं और नूतन काव्य सृष्टि में उससे बहुत सहायता भी मिल सकती है।' कलाकार की अभिव्यक्तियाँ परिभाषाओं का आश्रय नहीं लेती। वे स्वयं ही स्वाभाविक रूप में प्रकट होती हैं। अभिव्यक्तियों का कलामय होना किसी जाति के जीवन के कलामय होने पर निर्भर है। राजस्थान का लोक जीवन कलामय है। तीज त्योहार, विवाह-संस्कार और व्रत-पर्व आदि अवसरों पर होने वाली अभिव्यक्तियों के समान उनकी कला भी कलामय है। राजस्थान की सुकुमार अभिरुचियों ने लोक-काव्य के छन्द अलंकार रस ध्वनि आदि के ऐसे अलिखित विधान लोक मानस में बिठा दिये हैं जिनकी सहायता से लोककार रस की सृष्टि करता है तथा गायक और श्रोता रस का आस्वादन करते हैं।

राजस्थान के गीतों की कलात्मक कला पर पं० रामनरेश त्रिपाठी के निम्न कथन से सुन्दर प्रकाश पड़ता है 'यह तो मानी हुई बात है कि मारवाड़ी गीतों के रचने वाले कवि नहीं थे। पर उनकी रचना में कविता का मनोहर विकास हुआ है यह गीत सुनते ही मालूम होने लगता है।'[3]

लोक गीतों की भाषा छन्द और अलंकार आदि के सम्बन्ध में अलग अलग विचार करने पर विदित होता है कि काव्य के कलात्मक गुणों की उपेक्षा होते हुए भी उनमें भाषा सौष्ठव छन्द योजना और अलंकार विधान का सम्यक औचित्य पाया जाता है।

---

1 दयर इज स्पिरस्य डिस्कील इन फोक लोर इन पोयट्री आफ द आर्ट इन्ट्रोडक्शन टू स्कॉटिश एण्ड इंगलिश बैलड्स–किटरज।

2 द बलैड हैज इन द लास्ट टू सेंचुरीज एक्सरसाइज्ड ए पावरफुल इन्फ्लुएन्स ऑन आर्टिस्टिक लिट्रेचर, एण्ड इट विल ऑलवेज हैव टु बी रैकण्ड विद बाई द लिट्रेरी हिस्टोरियन्स–वही।

—प्रा० किटरज

3 कविता कौमुदी भाग–5 वीं भूमिका पृ० 4

प्रतीक और मुहावरे— लोक व्यवहार में बुद्धि वृत्त की अपेक्षा हृदय के स्पन्दन बहुत स्पष्ट होते हैं और इन्हीं में उनकी कला का रूप खड़ा होता है। किन्तु इस कला की अभिव्यक्ति भावात्मक शब्दों द्वारा नहीं होती, इसमें मूर्त्त चित्रों की भाषा का उपयोग होता है।[1] यही मूर्त्त चित्र साहित्यिक भाषा में प्रतीक कहलाता है। प्रतीकों के प्रयोग द्वारा भावों की व्यंजना में लोक गीत की कवित्व शक्ति द्विगुणित हो गई है, जैसे यौवन का प्रतीक 'वन वृक्ष', प्रेम का प्रतीक 'निम्बुड़ा', बनड़े का प्रतीक 'सूवटा' कहकर विदा होती हुई कन्या विलाप करती है —

"है आयो परदेसी सूवटो, हे बागा मांयलो सूवटो,
म्हें तो रमती सहेल्यां रे साथ, जोडी रो जालम ले चाल्यो।[2]

लोक-साहित्य में प्रतीक प्रयोग समास अभिव्यक्ति में परिणत होता हुआ साधारण अलंकार की स्थिति तक पहुंच जाता है।[3]

राजस्थानी लोक गीतों में सूर्य को तेज, शौर्य, शक्ति और प्रकाश का प्रतीक माना गया है और चन्द्रमा को सुकोमलता और सौम्य का। इसी प्रकार तारे, बिरल्यों और हिरणी आदि को भी सुन्दरता के प्रतीक रूपों में ग्रहण किया गया है —

"दल बादल बिच चमके जी तारा, साझ समै, पिव लागो जी प्यारा।

लोक साहित्य की प्रतीक योजना में यह विशेषता है कि शब्द एक वस्तु या भाव मात्र का प्रतीक न होकर शब्द प्रतीक अभिप्राय (मोटिफ) भाव और दृश्य का लोक मानस के अनुकूल एक संयोग विशेष उत्पन्न करके दृश्य विधान उपस्थित कर देता है। यही विशेषता राजस्थानी लोक-गीतों के प्रतीकों में पूर्णरूपेण पाई जाती है, जिस प्रकार दाम्पत्य प्रेम की अभिव्यक्ति के एक गीत में पति को हवा खाने के लिये पत्नी के साथ में 'फुंदड़ा री पखी' का प्रयोग पत्नी द्वारा पति के प्रति कोमल भाव की व्यंजना करता हुआ यथार्थ रूप में कोमल भाव का प्रतीक हुआ। इस गीत में प्रतीक द्वारा ही भाव विधान नहीं होता। गीत में वर्णनात्मकता है जिसमें कई कथा अभिप्रायों का भी उपयोग हुआ है। 'चमक दिवला' या 'चौमुख दिवला', 'ऊंची मेड़ी रावली' ये ऐसे ही अभिप्राय हैं जिनमें हमें प्रतीकात्मकता भी मिलती है। गायिका अथवा इस गीत की नायिका के 'सायबा' के लिये हो सकता है कभी भी 'दीपक' उपलब्ध न हो, 'ऊंची मेड़ी रावली' भले ही उसने स्वप्न में भी न देखी हो, पर 'फुंदड़ा री पखी' झलने वाली के लिये उसके 'सायबा' भाव विधान में वस्तुतः किसी से कम नहीं। अतः वह इन अभिप्रायों की संयोजना से ही अपनी भाव की उस महत्ता को प्रकट कर सकती है। प्रच्छन्न रूप से ऐसे लोक कल्पना में टोने की भावना भी रहती है। इन दोनों

---

1 ब्रज लोक साहित्य, पृ० 547
2 राजस्थान के लोक गान पूर्वार्द्ध, पृ० 189
3 ब्रज लोक साहित्य, पृ० 556

स्थितियों में ही ये शब्द 'अभिप्राय' के रूप में उपस्थित होकर 'प्रतीक' का भी काम करते हैं। इससे भाव विधान के साथ दृश्य-विधान का मेल हो जाता है।

इसी प्रकार की प्रतीक योजना राजस्थानी लोक-गीतों में प्रचुरता से हुई है—यही 'प्रतीक' रस की निष्पत्ति में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। क्योंकि ऐसे प्रयोगों में भाव, दृश्य और प्रतीकात्मक शब्द मिलकर एक हो जाते हैं।

मुहावरों का प्रयोग भी राजस्थानी लोक-गीतों में हुआ अवश्य है परन्तु साहित्यिक प्रयोगों से उनमें कुछ तात्विक भेद है। कवि भाषा सीख कर कविता रचना है और भाव सम्पत्ति को अर्जित कर एक विशेष बौद्धिक चतुरता से रचना करता है। अत उसकी भाषा में प्रयुक्त मुहावरों में बोध तत्व अधिक होता है। वह इन मुहावरों को लोक-साहित्य के क्षेत्र से ही ग्रहण करता है, पर वह लोक-साहित्य का क्षेत्र भी गीतों का क्षेत्र नहीं होता व्यावहारिक क्षेत्र होता है। लोक-साहित्य में बोध तत्व युक्त मुहावरे गीतों में कम काम आते हैं। गीतों में जो मुहावरे काम आते हैं वे ऐसे होते हैं जिनमें बोध तत्व कम भाव तत्व विशेष होता है। ये मुहावरे किसी मूर्त आधार से भाव संयोजन करते हैं। लोक गीतों में पुलवा रो पलो और गंगा जलभारी आदि को मुहावरों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इनमें कोई बोधगम्य तत्व दृष्टि नहीं आता—मन की भावना से पथ में कोमल भाव की स्थापना करके फुलवा का पला कह दिया और भावना के फलस्वरूप लाने में गंगा जलभरी भरी कल्पना करके उसे 'गंगाजल भारी' का रूप दे दिया। इन मुहावरों के शब्द प्रयोग में एक मन्त्र शक्ति विद्यमान रहती है।

लोक-गीत ज्ञान के लिये नहीं गाये जाते—उनके प्रत्येक अंग में जीवन तत्व रहता है। ये हैं राजस्थानी लोक-गीतों में प्रयुक्त मुहावरों के कुछ उदाहरण —

गोरा है पाकी बड बोर ज्यूं, बोर बटाऊ खाय।
ऊरां न भाव कावली, गोरां न भाव गात।"
'मिरग बिना मिरगी एकलड़।
मिरगो छोड़ गयो बन खंड मांय।'[1]
"स्याम बिना ब्रज ऐसो सूनो लाग ए,
डार सूनी ज्यों एक मिरग बिना।"[2]
"सूरज थाने पूजस्यां भर मोत्यां रो थाल।"
"फागण फीको ए सहेल्या, एक स्याम बिना, फागण फीको ए।"
'स्याम बिना फागण इसड़ो फीको लाग ए,
साग फीको एक लूण बिना।

1 राजस्थान के लोक गीत सं० 136
2 वही—गीत सं० 135

"मान फीको जाए खाड बिना,
नए फीका जाए काजल बिना,
हाथ फीका जाए मेहदी बिना
चुडलो फीको जाए बँगडी बिना
सावए फीको ए जाए हरियाली बिना
वन फीको ए मोर बिना।
गुड बिना ए सुगाया किसडो चौथ
राई बिना ए किसडो रायतो।
लूए बिना ए सुगाया किसडो साग
तेल बिना ए सुगाया किसडो खीचडो।
बूर बिना ए सुगाया किसडो भात
दाल बिना ए किसडो चूरमो।
माय बिना ए सुगाया किसडो पीर
सासू बिना ए किसडो सासरो।
बिछड्या बिछड्या ए सुगाया ज्या रा स्याम
बा री धए रो ए किसडो जोवणो।

(ख) राजस्थानी लोक-गीतो की छद योजना

जिस प्रकार लोक-जीवन से स्वतः उद्भूत अभिव्यक्ति में स्वभावतः अलौकिक रस का परिपाक और अलंकारों का चमत्कार उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार छंद शास्त्र के ज्ञान से रहित लोक के स्वर में बंधे हुए गीतों में कोई छंद भी हो तो आश्चर्य न होना चाहिए। इसी दृष्टि से राजस्थानी लोक-गीतों में छन्दों की खोज करने की चेष्टा की जा रही है। वस्तुतः यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि इसे अनुसंधान का विषय बना कर लोक-गीतों में नये छन्दों की खोज कर छन्द शास्त्र को संवर्द्धित किया जा सकता है।

निश्चय ही लोक-गीतों में लय और स्वर तान की प्रधानता होती है, पिंगल सम्मत मात्रा लघु-गुरु यति विराम आदि का इनमें कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं। लोक गीतों का जीवन में उद्भूत अपना निजी एक छन्द होता है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में लोक-गीत के इन छन्दों ने समय-समय पर संभ्रान्त नागरिक साहित्य और संगीत को भी नया जीवन प्रदान किया है।

राजस्थान के सम्पूर्ण लोक-गीतों की धुन लगभग एक सी नहीं है पर ब्रैहद और ताल में भेद है। इन भेदों में मात्राओं और वर्णों की गणना करके यति विराम खोज कर भी यह निर्णय करना संभव नहीं कि इन गीतों में निश्चय रूप से क्रम-क्रम छन्द प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि एक एक गीत की विभिन्न पंक्तियों में भी राग रागिनियों की प्रधानता के कारण सुर और लय के अनुसार मात्राएं घटती बढ़ती रहती है।

कही ए ए जी' रामा आदि स्वर-बधन शब्द लगा-लगा कर पद पूर्ति करना अथवा पत्तिया के अशा को दाहरा तेहरा कर राग बाधना लाक-गीतो क साधारण लक्षण है। साधारण रूप स यह कहा जा सकता है कि राजस्थानी लाक गीता म सनाके और मत वाणिया की भाँति सारठे और दूहे छन्द क लक्षण प्राय पाय जात है उनम भी उपयुक्त कारणा से अनियमितताएँ बहुत मिलती हैं।

वास्तव म लाक मानस की इस स्वाभाविक अभिव्यक्ति म शास्त्र सम्मत छन्द ढूंढना ही दुस्साहस है। यहाँ तो भावा को लय म बाँधने के लिय शब्द और भाषा का आश्रय लिया जाता है।

सक्षेप म हम कहेगे कि लाक-गीत हैं इसलिय छन्द की दृष्टि म उन्हे या ता टाला जा सकता है कि छन्द की भाँति गीत का आश्रय भी साधारण हैं किन्तु गीत म अपनी निजी विशेषता है जो कि छन्द के बधन स नही बधती। व विशेषताए हैं —

(1) गीत म राग पूर्ति के शब्द हाते हैं।
(2) गीत म लय बन्धन के शब्द होत ह।
(3) गीत म टक हाती है।
(4) गीत म सहारे के शब्द हाते हैं।
(5) गीत के स्वर क्रम म न्यनित्रम हाना है।
(6) गीत भावाच्छ्वास क साथ घटत बढत हैं।
(7) गीत म वविध्य होता है।

अत लाक-गीत वस्तुत छन्द की सीमा क अतगत नही आते। पिगल शास्त्र क लक्षण ढूढ कर इन गीता को रसपूर्ण तुकबन्दी मानना श्रेयस्कर हागा। इस तुकबन्दी म स नवीन छन्दा की खाज करके लोक गीता की छन्द योजना का निणय किया जा सकता है।

(ग) राजस्थानी लोक-गीतो मे अलकार

राजस्थानी लोक गीता म आलकारिक चमत्कार की भी कमी नही परन्तु उनके अलकारा म विचित्र सादगी सरलता और नवीनता है जो काव्य की कृत्रिम कविताओ म देखन को नही मिलती। काव्य म प्राय परम्परागत उपमाओ का प्रयाग पाया जाता है। व उपमाए बारम्बार प्रयुक्त हान स फीकी सी प्रतीत हाती ह परन्तु लाक-काव्य म नित्य नई और स्वाभाविक व उपमाए प्रयुक्त हाती है जिनका हमार दनिक जीवन स सम्बन्ध रहता है। नाक क ता मा की धार दात दाडिम क बीज और वाह चम्प की डाल नही किन्तु परिचित लाक जीवन क उपमान हैं उदाहरणाथ —

नाक ता री धार राय हा जी र आलीजा बाई आँखिया ना राम मन माहनी थारा नाडिया हा राज दाँत दाडम रा जा बीज राय हाओ र।

इसी प्रकार अन्यत्र बाह चम्पे की डाल बनाइ गई है।

सर्वोत्कृष्ट उपमाना का प्रयाग हुआ है ' मूमल के अग प्रत्यग रूप वर्णन मे ।[1] इसी प्रकार एक और गीत म स्त्री सौन्दर्य वर्णन म मार्मिकता से पूर्ण उपमान मिलते है ।[2] इन उपमाना म कल्पना की ऊहात्मक उडान नही है बल्कि उनम है आत्मा म रस घोलने वाली सुरुचि की पुष्ट व्यजना ।

उक्ति वचित्र्य स सम्बन्धित तथा सादृश्य मूलक अलकार लोक-गीता म विशेष पाये जाते है । समस्त अलकारा म उपमा, उत्प्रक्षा और रूपक ऐसे स्वाभाविक अलकार हैं जा वस्तुओ के रूप आकार प्रकार, गति और स्थिति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करके भाव का समझने म सहायक सिद्ध होते हैं । अलकारो म स इनका प्रयाग लोक-गीता म अधिक हुआ है ।

भोजपुरी लोक-गीता के लिये जसे लिखा है कि इनकी उपमाएँ ऐसी ही स्वाभाविक है जसा जगल का स्वय खिलने वाला फूल ।''[3] उसी प्रकार राजस्थानी लोक-गीता के लिये कहा जा सकता है कि इनकी उपमाएँ एसी सरल और स्वाभाविक हैं जसा माता का प्यार या ' बालक का हृदय ।

सहल्या के बीच अपने सासरे की प्रशसा मे किशोरी बालिका अपनी सास, ससुर और पति को क्रमश धरती अम्बर और सूरज जसा बताती है । तीना ही उपमान कितन सरल चिर परिचित और भाव व्यजक हैं । एक एक शब्द म सास ससुर और पति के लिय वाछित गुणा की व्यजना हुई है । यह है अपढ लाक जीवन की सूझ और बुद्धि की प्रखरता जो भावो की तल्लीनता के समन्वय मे बिना प्रयास ही उनके गीता म अलकारो का समावेश कर देती है । राजस्थानी लोक-गीतो की उपमाओ की सार्थकता केवल साम्य या सादृश्य म नही है बल्कि उनसे सम्बन्धित धारणाओ म निहित है । कुछ गीता मे प्रयुक्त उपमाओ म परिवार के कोमलतम सम्बन्धा का सूत्र मिलेगा । एक गीत म पुत्र वधू ने श्वसुर को अम्बर और सास को धरणी जसी कहा है तो दूसरे म श्वसुर का गढ राजवी कह कर एक सुखी परिवार के स्वामी प्रदर्शित किया है । सास जी को रत्न का भण्डार कहकर परिवार के लिय आवश्यक सम्पन्नता पूर्ण होना व्यक्त किया गया है ।

पुत्र कुल का प्रकाश और पुत्र-वधू दीपक की लौ है, जिसस फिर प्रकाश अर्थात् 'पुत्रोत्पत्ति की कामना उत्पन्न होगी ।

रतन राणे गीत म पति के वियाग म विरहिणी नारी विरहावस्था म पीली पडी हुई अपनी तुलना पक बोर स करती है । क्या ही विलक्षण उपमा है —

''मोरा दे पाकी बड बोर ज्यूँ,

---

1 देखिय मूमल गीत सख्या—117 (खण्ड 2) 'राजस्थानी लोक-गीत

2 राजस्थान के लोक-गीत सख्या—117

3 भोजपुरी ग्राम गीत—पृ० 29

यौवन की तुलना की है तो दही स —
दई जडी कसमसी।"

मालण गीत म काल नाग म वाला की उपमा दन से रूप वरान म चार चाँ लग गय हैं —

'सास सोने रो नारेल हाजो रे आलीजा,
कोई बेणईयो बासग बड मागण थारे नाग,
ज्यूं हो राज ॥ बाल काले नाग जसे।"

बीदणी के सौन्य की सराहना करते समय राजस्थानी लोक-गीता के रचयिता ने उस 'चदा बदणी घर नार' और दूल्हे क पौरप का तेज बखानने के लिय उस 'सूरजमल' कहकर सम्बोधित किया है—इसी प्रकार माता पिता म अपनी पुत्री क लिय सम्न पूनम का चाँद जसा और 'ऊगते सूरज के तेज" जसा वर खोजन की कामना बनी रहती है।

निम्नलिखत शृगार रस के गीत म अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक उदाहरण और दृष्टान्त आदि कई अलकारा का प्रयाग हुआ है —

ढोलो चाल्यो चाकरी धण चयोंकर जी सी जी,
पाणी मायली माछलो बिन पाणी मर जाय
स्याम बिहूणी गोरडो अन पाणी नहीं खाय
प्यारी मुकलामोडी नार सायल बिन खिरकासी जी,
बरसण कर भोजन कर बिन बरसण लग धार,
पिव बिछड्यो धण यू झूर ज्यो मिरगो चित डार,
पिया केरी प्यारी पलपल झुरसी जी
पाला बिन पलेरू तडफ सुत बिन तडफे बाझ,
पिव बिन तडफ गोरडी धण बिन तडफ स्याम,
थारो मिरगा नैणी थारे बिन झुरसासा जी।

कन्या की विदा क गीत म सागोपाग रूपक स्वय हृदयगत भावनाआ की प्ररणा स उत्पन्न हा गया है —

बन खड की ए कोयल
बन खड छोड कठ चली 1

इसी प्रकार विरहणी के गीत म कहा है —

मिरग बिना मिरगी एकलडी
मिरगो छोड गयो बन खड मांय '2

1 दक्षिण राजस्थान के लोक-गीत सख्या–91 —डा० रामसिह इत्यादि
2 दक्षिण राजस्थान के लोक-गीत सख्या–136 " "

जिस प्रकार मृग के कोमल मृगिणी को छोड़कर चले जाने पर वह अकेली वन खंड में विलाप करती फिरती है उसी प्रकार पति रूप मृग के बिना वह बेचारी अकेली रह गई। कितनी स्वाभाविक और मूर्त कल्पना है।

रूपक अलंकार का एक और सुन्दर भावपूर्ण उदाहरण है —

'म्हे तो वारया जी सासू जी थारी कोख ने
थे तो जायो अरजुण-भीम
सहेल्या ए आंबो मोरियो।[1]

यह वधू सास से कहती है हे सास! तुम्हारी कोख को धन्य है जो 'अर्जुन' 'भीम' रूप पुत्र को जन्म दिया।

साहित्य की भांति विद्वत्तापूर्ण उपमान ढूँढकर कवि कौशल दर्शाने का लोक-गीतों में प्रयास नहीं है। बिना प्रयास ही सहृदयता और भावों की तल्लीनता से लोक कवि के गीतों में अलंकारों का ऐसा चमत्कार उत्पन्न हो जाता है जो काव्य जगत के लिये नितान्त अनूठा और अपूर्व है। इसी भाव को डा० सत्येन्द्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

'अलंकार विधान निश्चय ही लोक-साहित्यकार की चेतन वृत्ति में उतना नहीं हुआ जितना जीवन प्रकृति, शब्द और अर्थ के यथार्थ एकीकरण (अपार्थकता) के कारण सम्भव हुआ है।'[2]

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने एक गीत में निराली उपमा का उल्लेख किया है —

रेलिया सवति मोर पिया लइके भागी[3]

रेल की तुलना सौत से करना एक विलक्षण कल्पना है। स्त्रियों के भावुक हृदय के लिये ही ऐसे मर्म की बात सम्भव है। ऐसी मार्मिक अभिव्यक्तियों में अपढ़ ग्रामीण स्त्रियों के कवितामय हृदय का प्रमाण मिलता है।

राजस्थानी लोक गीतों में शब्दालंकारों का भी सम्यक प्रयोग हुआ है।

गोरबन्द गीत में अनुप्रास और यमक अलंकारों के योग से गोरबंद के वर्णन की संगीतात्मक ध्वनि अत्यन्त मनोहारी हो गई है —

लड़ लूमालो लड़ लूमालो
म्हारो गोरबंद लूमालो।

इसी प्रकार एक 'भात' गीत की प्रथम पंक्तियों में देखिये यमक और अनुप्रास का चमत्कार —

---

1 देखिये राजस्थान के लोक-गीत संख्या-50 —डा० रामसिंह इत्यादि
2 भूमिका कौमुदी—पांचवाँ भाग-पृ० 22
3 ब्रजलोक साहित्य—पृ० 557

वीरा म्हारे माया ने मैमद लाज्यो,
म्हारी रसडी बठ घडाज्यो
म्हारे रिमक भिमक भातो आज्यो।''

रिमक भिमक शब्द का प्रयोग कितना सार्थक और ध्वन्यात्मक प्रयोग चित्र शली जसा प्रभावशाली बन पड़ा है। ''डुला'' गीत मे घ और ल की आवृत्ति स सुन्दर अनुप्रास का चमत्कार उत्पन्न हो गया है —

घडियो घडियो हौर बाजा शोवला
तन घडियो सात सुहार।

एक अर्थ गर्भित गीत म मुद्रालकार की सुन्दर योजना देखिये —

'बाणिआणी रसी नही रसी स थारी
सोना री जासी महीं कह मामी कुमारी।'

लोक गीतो के कवित्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते है कि लोक-गीतो की एक एक बहू क चित्रण पर रीतिकाल की सौ सौ मुग्धाए खडिताए और धीराएँ निछावर की जा सकती है क्योकि य निरलकार होने पर भी प्राणमयी हैं और व अलकारो म लदी होन पर भी निष्प्राण हैं। य अपने जीवन के लिय किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षिणी नही है य अपने आप म परिपूर्ण है। [1]

चारणो न अपने गीतो म अतिशयोक्ति पूर्ण चाटूक्तियो स राजपूतो का गुणगान भले ही किया हो अनुप्रासो के चक्कर म काव्यकारो न शिक्षित पाठको को चकित भले ही कर दिया हो पर हृदय को स्पर्श कर मान्य सत्य करने वाली सुन्दर साहित्य लहरियाँ जनसाधारण द्वारा रचे हुए और जनसाधारण द्वारा गाये जाने वाली लोक गीतो म मिलगी।

---

1 हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ० 1'1

राजस्थान के लोक वाद्य

लोक जीवन की दुनिया ही निराली है— आधुनिकता के रंग में रंगे जन मानस में बुद्धि की प्रबलता से सभी कुछ कृत्रिम एवं उच्चस्तरीय बाना पहन कर प्रकट होता है—किन्तु लोक मानस में स्वतः प्रेरित भावनाओं के फलस्वरूप स्वाभाविक रूप से जीवन यापन की सीमित आवश्यकताएं पूर्ण होने के साथ-साथ मनोरंजन और कला का समावेश भी स्वतः होता रहता है— न शास्त्रीय विधान का आश्रय लेना पड़ता है न किसी पाठशाला में जाकर संगीत कला अथवा मनोरंजन हेतु नाट्य आदि का अभ्यास करना पड़ता है— न ही ललित-कलाओं की सर्जना के लिये कारखानों में से साज सामग्री जुटानी होती है।

विभिन्न अवसरों पर भावाभिभूत होकर लोक मानस से जो स्वर लहरियाँ प्रस्फुटित होती हैं— उनके अनुरूप स्वरों के साथ ताल बाँधने के लिये जो भी साधन सरलता से उपलब्ध हो जाय उसी को वाद्य का रूप देकर गीतों की ध्वनि को प्रतिध्वनित करने के लिये उपयोग कर लिया जाता है— इस प्रकार लोक गीतों के गायकों ने अनेकों लोक-वाद्यों की सर्जना कर ली।

ढोल मजीरे और डफ आदि तो अखिल भारत में प्रचलित लोक-वाद्य हैं जो अत्यन्त प्राचीन काल से उपयोग में आते पाये जाते हैं— राजस्थान के लोक-वाद्यों में अनेकों निराले रूप लोक-वाद्यों के मिलते हैं जो विविध क्षेत्रों में लोक गीतों एवं नृत्य के साथ प्रयोग में आते हैं। यहाँ के प्रमुख लोक वाद्य निम्नलिखित हैं जिन में से कुछ का प्रयोग सामान्यतः सभी प्रकार के गायक करते हैं और कुछ विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों अथवा नृत्यों के साथ उपयोग में आते हैं—ढोल मजीरे और डफ के अतिरिक्त डफ चंग नगाड़े तम्बूरा मृदंग खंजरी डमरू अलगोजा ताशा अलगोजा, बाँकिया अपंग सारंगी करनाय, तुरी पूंगी माण्डल रावणहत्था खंजरी थाली भूंगल शंख और माट।

राजस्थान में तीज त्यौहार और गौरी पूजन आदि के गीतों में वाद्यों की संगत नहीं होती—रंग बिरंगी पोशाकें व आभूषणों से सुसज्जित स्त्रियाँ झुंड के झुंड हिल मिल कर समूहों में गाती हैं तो बिना ढोल मजीरे अथवा वाद्य यन्त्रों की सहायता के ही उनकी कंठ ध्वनि गुंजरित होकर सम्पूर्ण वातावरण को संगीतमय माधुर्य से ओत-प्रोत कर देती है।

शिशु जन्मोत्सव तथा विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर सामान्यतः स्त्रियाँ ढोलक मंजीरा के साथ गीत गाती हैं—ढोलक मंजीरों का प्रयोग और भी अनेक अवसरों पर गीत गान तथा नृत्य के साथ होता है। स्त्री-देवताओं के गान भजन हरजस आदि बहुधा बिना ढोलक मंजीरों के भी गाये जाते हैं परन्तु रात्रिजागा आदि विशिष्ट अनुष्ठानों में जब भगत जगता है तो ढोलक, मंजीरे, डमरू, तम्बूरा सारंगी और खंजरी आदि अन्य वाद्य यन्त्र भी बजाये जाते हैं जिनमें गायकों की मस्ती और इष्ट के प्रति भक्ति भाव का भली प्रकार आभास मिलता है।

शृंगार रस के विलासिक गीत और व्यवसाय सम्बन्धी श्रम परिहार के गानों में वाद्य यन्त्रों का प्रश्न ही नहीं उठता जो व्यावसायिक क्रम के साथ ही मन बहलाव के लिये गाये जाते हैं। पारिवारिक जीवन में चलते फिरते गाये जाने वाले गीत भी वाद्य-रहित भावाभिव्यक्ति मात्र होते हैं—वाद्य यन्त्रों का विशेष उपयोग आयोजित सगणों में नाट्य नृत्य मण्डलियों में और होली दीवाली त्योहारों पर मद मस्त हुई टोलियों द्वारा होता है एवं लोक देवताओं के भोपे जो स्थान-स्थान पर देव चरित गान व अभिनय करते हुए भ्रमण करते हैं वे लोक वाद्य विशेष से भजन गीतों की संगत बिठाते हैं। टीकिये सामी सासी कंजर डोम व थोरी आदि व्यावसायिक जन जो जीविकोपार्जन हेतु इधर उधर गीत गाते फिरते हैं, वे भी मंजीरी, सारंगी चंग ढोल थाली भूंगल तूरी शंख अथवा बांकिया आदि लोक वाद्यों का उपयोग करके अपने मनोरंजन में जनता का प्रचुर धन व अन्न-वस्त्रादि दान के लिये आकर्षित करते हैं।

डफ चंग और ढोल का सर्वाधिक उपयोग होली के त्योहार पर धमाल गाने में होता है। होली के कई दिन पहले से गाँवों और नगरों में भी रमते निकलने लगती हैं चंग और डफ पर मद मस्त होकर लोग धमालें गाते हैं। होली के दूसरे दिन गेर खेलने निकलते हैं तब भी चंग और डफ पर गाते नाचते शरीर की सुध-बुध भूल जाते हैं। खेतों-खलिहानों नगरों और गाँवों के बाहर चौराहों पर चंग पर गाये जाने वाले गीतों से लोग आत्म विभोर हो जाते हैं। इन गीतों में प्रासंगिक रंग भी रहता है। समाज में कोई विशेष काम करने वालों के नाम पर धमाल जोड़ जोड़ कर गाई जाती है—जैसे—

"पू सो बाजे हो महाराजा गंगा सिंह जी को,
बाल्हो लागे हो राजा थांरी सवारी,
मगरो छोड़ दे आसरका मोड़्या मार्‌याजासी ओ।"

इन गीतों की तरंग चंग और डफ के साथ ही प्रतिध्वनित होकर लोक मानस पर होली का रंग लाती है। होली के त्योहार पर वनिताएं भी चंग के गीत गाती हुई हर्षोल्लास का परिचय देती हैं —

"चंग बीकाणे बाजे, जोधाणे बाजे,
कोई बाजे बाजे चंग अजमेरां ए,
रंगीलो चंग बाजस्यू।"

अधिकतर लोक वाद्य मृदंग, ढमरू, अलगोजा, मादल, तुरी, थाली, बांकिया, अपंग आदि लोक नृत्यों में प्रयोग किये जाते हैं— इन में से कोई-कोई गीत अथवा नृत्य विशेष के साथ ही प्रयुक्त होते हैं जिनका सामान्य विवरण इस प्रकार है।

उदयपुर के उत्तरी भाग में श्रावण भादों महीनों में भीलों का गौरी नृत्य होता है जिसमें 15–20 नृत्यकार भाग लेते हैं—एक व्यक्ति भरव बन कर सूत्रधार की भांति नृत्य संचालन करता है और एक शिव रूपधारी गोल के बाहर खड़ा रह कर बायें से दायें घूमता है। इसमें मादल और थाली वाद्यों का प्रयोग होता है। यह शुद्ध धार्मिक नृत्य है—इस नृत्य के गीत भी भरव और शिव भक्ति पर रचे होते हैं। गीत के पदों और नृत्य की ताल से देवता के प्रति अटूट भक्ति व्यंजित होती है।

इसी प्रकार भरव पूजा नृत्य में मादल और थाली का प्रयोग होता है। इस नृत्य में पुरुष व स्त्री अर्ध गोलाकार रूप में खड़े होते हैं पुरुष गीत की लादन को उठाते हैं स्त्रियाँ उसी को दोहराती हैं। नृत्य का एक एक हावभाव कई बार दोहराया जाता है— गीत है—

> "भरू मादल नो धमको बाजे थान पूजा,
> भरू झालर नो झमको बाजे थान पूजा,
> भरू पर्गा मा रमजद बाजे थान पूजों,
> भरू घरतो घुजाओ मतो थान पूजा
> भरू भमरा ना मायल माय थान पूजा।

गीत के बोलों के अनुसार ही नृत्य में भरव पूजा के भाव व्यक्त किये जाते हैं और शब्दों की ध्वनि नृत्यकारों की पग-ध्वनि के साथ गूँजती हुई सुन्दर भक्ति रस प्रवाहित करती है।

होली, गणगौर और विवाह के अवसर पर किया जाने वाले भीलों के गेर नृत्य में भी थाली और बड़ा ढोल प्रयुक्त होता है। इस नृत्य से भीलों की उद्धत प्रकृति का आभास मिलता है।

राजस्थानी महिलाओं का जातीय नृत्य घूमर अत्यन्त लोकप्रिय है—यह विभिन्न क्षेत्रों में अलग अलग रूपों में होता है। इस नृत्य का सांस्कृतिक महत्त्व है—गणगौर का त्योहार इसका प्रमुख अवसर है पर विवाहादि अनुष्ठानों एवं अन्य समारोहों पर भी घूमर किया जाता है। घूमर नृत्य के गीत अत्यन्त मनोहारी कोमल कान्त पदावली के होते हैं। इसमें नगाड़ा, ढोल या ढोलकी से ताल दी जाती है। इन वाद्य यन्त्रों का आदिम नृत्य गीतों से सम्बन्ध है। नगाड़ा प्राचीन काल से धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित नृत्य गीतों में प्रयुक्त होता रहा है।

मारवाड़ क्षेत्र में पुरुषों का डांडिया नृत्य होता है। होली के बाद इसका प्रदर्शन होने के कारण बसन्त ऋतु के अनुरूप होता है और गीत ऐतिहासिक एवं पौराणिक

कथाओं पर आधारित शृंगार रस से परिपूर्ण होते हैं जिनमें राधा कृष्ण की लीलाओं और फाग के गीत मुख्य हैं। ढोल की चोट पर ही यह नृत्य चलता है। अन्य वाद्यों में डमरू, अलगोजा और मृदंग या अपंग कभी कभी प्रयोग कर लेते हैं।

इसी प्रकार सामूहिक लोक नृत्य गीदड़ में ढोल डफ और नगाड़े का प्रयोग होता है। डंके की ताल नृत्य की गति और गीत के शब्द व धुन में पूर्ण समन्वय रहता है। गीत के भावों से जो डंके की चोट पर तरंग उठती हैं उन्हीं के धमाके के साथ नाच के कदम पड़ते हैं। यह नृत्य विशेषकर शेखावाटी के झुंझनू और सीकर क्षेत्रों का है।

रावण हत्था राजस्थान का विशिष्ट लोक वाद्य है। यहां के लोक देवता पाबूजी की प्रशंसा में रचे हुए वीर रस के दोहे विशेष हाव भाव के साथ भोपे लोग रावण हत्था बजा-बजा कर सामूहिक रूप में गाते हैं। पाबूजी के जीवन सम्बन्धी घटनाएं एक पर्दे पर चित्रित ये भोपे लिये फिरते हैं जिसे पाबूजी की पड़ कहते हैं—उन घटनाओं के अनुसार अभिनय कर-कर के भी भोपे बड़े मनोरंजक ढंग से पाबूजी की विरुदावली रावण हत्थे के साथ गाते हैं। डूंगजी एक वीर रस का धाड़नी गीत गीत है जिसमें डाकुओं के भीतर छिपी करुणा दानशीलता और आत्मप्रियता प्रकट होती है—डाकुओं के चरित्र सम्बन्धी उग्र भावना की व्यंजना द्वारा इसमें लोक कवि ने एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है—यह भी रावण हत्थे पर गा गा कर लोक कलाकार अपनी गुप्त प्रतिभाओं की प्रभावशालीनता अभिव्यक्त करते हैं। धार भी देशभक्ति युक्त वीर रस के गीतों में विशेष कर रावण हत्थे का प्रयोग होता है। माटों का प्रयोग भी पाबूजी की पड़ के साथ अभिनय करते समय होता है—गीत की लय के अनुरूप दोनों हाथों से या कभी-कभी नगाड़े की भाँति लकड़ी के दो टुकड़ों से माटों से ध्वनि निकाली जाती है—ये माट पाबूजी के माट कहलाते हैं—राजस्थान के अजायबघरों में ये माट तथा पाबूजी की पड़ दर्शनीय है।

तम्बूरा (इकतारा) वाद्य विशेषकर डीडवाना पोकरन कुचामन और नागोर क्षेत्र के तेरहताली नृत्य में प्रयुक्त होता है। यह नृत्य होली के पश्चात् जागरण आदि में मामिया जाति के लोगों द्वारा अपने इष्ट देवता रामदेवजी को प्रसन्न करने के निय किया जाता है। ये लोग कामड़ भी कहलाते हैं जो कभी कभी अपने यजमानों से भेंट प्राप्त कर के धन भी कमाते हैं। पुरुष इकतारा बजाते हैं स्त्रियाँ अपने शरीर पर मंजीरे बाँध कर नृत्य की अनेक मुद्राओं का प्रदर्शन करती हैं।

थाली का प्रयोग बणजारा नृत्य में और मांगणियार के नृत्य में भी ढोलक के साथ होता है।

पूंगी, मूंग तुम्बा अथवा लौकी की बना ली जाती है—यह कालबेलिया[1] का मोहक वाद्य है। साँप को मोहित करने वाली धुनें हैं दण्डाणी और पणिहारी इनके आधार पर कालबेलियों के नृत्यों के भी यही नाम पड़ गये।

---

1 कालबेलिये सपेरों को कहते हैं जो अपने मगान नृत्य के भाव में साँप पकड़ने में कुशल होते हैं।

सारगी नक्कार और नगाडे आदि विशेषकर राजस्थान के सीमाई क्षेत्रों के भवाइ[1] लोगो के भवाई नत्य म भी प्रयोग हात थ परन्तु अब ये ढोल, मजीरा स काम चला लते हैं। इनकी नत्य की मुद्राए बडी मनोहर हाती है। ढोला मारू' का य भवाइया का प्रमुख खेल है जिसे इन्होने अपनी उवर कल्पना म अति सुन्दर ढग से नाच म बाधा है।

ग्ररबी ताशा राजस्थान का एक निराला लाक वाद्य है जा शेखावाटी चूरू रामगढ मवाड और मारवाड आदि क्षेत्रो के कच्छघोडी नत्य के साथ बजाया जाता है। इस नत्य के साथ गात नही गाया जाता ढोल की आवाज स ही भाव व्यक्त होत हैं साथ मे अरबी ताशा' वाद्य बजाते हैं।[2]

राजस्थान के लाक नाट्य जिन्ह ख्याल कहत हैं उनम भी लोक मानस की मस्ती का द्यातक भावना कूदना आदि मादकता रहती है—अत नाटका के अभिनय के साथ भी सारगी नगारा और ढोलक आदि लोक वाद्या का प्रयोग होता है। वस्तुत लाक मानस की मस्ती उल्लास और तरगा को लोक गीता और लाक नत्या द्वारा अभिव्यक्त करन म विभिन्न लोक वाद्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

1 जाटा की एक खाप नाचन गान म रुचि क कारण भवाई नाम की जाति बन गई जो वर्ष भर विशेष अवसरा पर अन्य जाट वर्गीय लागा का नत्य आदि से मनारंजन करते है।

2 नत्य का विवरण देखिये—राजस्थानी लोक-गीत पृष्ठ 196

जीविकोपार्जन सम्बन्धी राजस्थानी लोक-गीत एवं नृत्य

भारत के लगभग सभी प्रान्तों में जन-जीवन में व्याप्त लोक गीतों के व्यावसायिक गायक पाये जाते हैं जो विभिन्न अवसरों के अनुरूप गीत गा-गाकर अपनी जीविका अर्जन करते हैं। कई वर्ग इस प्रकार के होते हैं जिनका व्यवसाय गीत नृत्य और नाट्य द्वारा जीविकोपार्जन करना होता है। राजस्थान में इस प्रकार के गायकों की अनेक जातियाँ एवं लोग हैं जिनमें मुख्य हैं—टीकिये-सामी जोगी भोपे कुम्हार जोगनिये ढोली, ढाढी मीरासी, डोम मरगड़े हिजड़े, सुथरा कामड़िये जोगी पातुर भगतन कालावत रावल सांसी सेंवर गीतरनियाँ दरोगए भगतणे और ढोलणे। इन के गीतों के विषय कोई अलग नहीं होते। विभिन्न अवसरों पर साधारण जनता द्वारा गाये जाने वाले गीतों को ही अपना कर ये लोग अपनी जीविका निमित्त गाने लगते हैं, जिनमें मुख्य हैं—नृत्य गीत नाट्य गीत कथा गीत, रातिजगे के गीत पवाड़े पौराणिक गीत, भजन और हरजस आदि, एवं विविध होली की धमाल राम कृष्ण आदि की लीलाओं का वर्णन और पुत्र जन्म व विवाहादि उत्सवों पर गाने के संस्कार सम्बन्धी गीत।

टीकिये सामियों के गीत—सामी लोग लाल टीका लगाये हुए पगड़ी बाँधे फिरते हैं कोई-कोई लम्बे बाल भी रखते हैं। ये टीकिये अब नौकरी व अन्य व्यवसाय जीविका निमित्त करने लगे हैं वर्ना ये लोग अपना व्यवसाय ही गीत गा-गाकर भीख मांगना बनाते हैं। इनकी स्त्रियाँ एवं छोटे छोटे लड़के लड़की भी हाथ सम्भालते ही गीत गाकर भीख मांगने का व्यवसाय करने लगते हैं। यदि इनसे कहा जाय कि तुम काम करो, बिना मेहनत के पैसा नहीं मिलता, तो उत्तर मिलेगा— 'ए माईए म्हारा बाप दादे ने ई कदी काम नहिं करूयो म्हें काँकर करां।' यह कहकर तरह-तरह से भाव ईश्वर का नाम स्मरण करके एक मुट्ठी धान या पैसा टका ले ही लेते हैं। आजकल ये लोग आधुनिक ढंग से हारमोनियम आदि गले में डालकर भी बजाकर गाने लगे हैं। इनके गाने प्रायः भरथरी, रामदेवजी व कृष्ण लीला और राम लीला से सम्बन्धित होते हैं।[1]

---

1 वर्णित राजस्थानी लोक गीत खण्ड2 के गीत सं० 29,22 25,83 85 तथा 93

भोपों के गीत—राजस्थान म लोक भ्वताग्रा क पुजारी भाप कहलाते हैं। भोपे भ्रपन देवी देवताग्रा का पूजने हैं तथा देवता के सामने वडी मस्ती म नाच-नाच कर गीत गाते है। इनक इप्ट देव रामदवजी पावूजी भर जी गोगाजी मानाजी तथा ग्रय लोक देवता हैं उन्हीं की य लाग पूजा करते हैं तथा उनम सम्बधित गीत गात ग्रौर साथ ही गापीचद गूजरी मीरा राजा भरथरी ग्रौर ग्रय पौराणिक गीता का भी प्रयाग करत हैं।

रामदवजी ग्रोर भराजी के भापा की सार प्रदश म प्रतिप्ठा है पावूजी क गीत भी यही भराजा के भाप गाते हैं।

जाधपुर बीकानर उदयपुर ग्रलवर ग्रोर जसलमर विभागा म रामदवजी की बहुत मा यता है। या ता लगभग सभी जाति के लाग स्वास्थ्य धन सन्तान प्राप्ति के लिय उनक गीत गाते हैं पूजा करत ग्रौर रातिजगा करत ह पर ढढिया चमार लोगा का पशा ही यही है। इह मघवान भी कहते हैं कपडा बुनना इनका व्यवसाय है इसलिय बुनकर कहलात है ग्राठ दस लोग मिलकर तम्बूर ग्रौर मजीरे लकर बजाते हुए रामदेवा क गीत गाते हैं रातभर जागकर जा रातिजगा करत हैं उस रामदेवजी का जमा देना कहत है। विवाह ग्रोर पुत्र जम ग्रादि विशप ग्रवसरा पर गहस्थ लाग रामदवजा का जमा दिलवाते है।

भरोजी के भोपे—भराजी के भाप लाल जामा ग्रौर कभी-कभी लाल ही पगडी पहन घु घरू बाँध हाथ म थाली लकर उपर उछालते हुए ग्रौर डमरू बजाते हुए गाते फिरा करते हैं। इनके गीत प्राय भरा बाबा क ही होते हैं।[1]

पावूजी ग्रौर डू गजी जवारजी[2] ग्रादि जा राजस्थान म वीर कृत्या के कारण प्रसिद्ध है उनके गीत भी य भाप बडे प्रम ग्रौर उत्साह मे गात है। विवाहादि ग्रवसरा पर इनकी विशप मा यता हाती है। पाबूजी न धाधल नामक राजपूत क घर केसर का क्यारी म ग्रवतार लिया एसी मा यता है। ये राजपूत थली नामक गाँव म मारवाड म रहते थ, जहाँ रवाडी तथा भोपा नामक जाति ग्रधिक रहती थी इसलिये भाप पाबूजा की बहुत मा यता करते है। पाबूजी क पवाडा का प्रचलित करन का श्रेय ही इन भापा का है।

गोगाजी के भोपे—गागाजी के भापे उनकी वीरता के गीत गाते है य डमरू बजात हैं ग्रौर थाली का जार से घुमाकर ऊपर उछालते ह फिर ऊगली पर रोकत है—उ मत्तावस्था म य लाग नत्य भी करते है। भादा म गोगा नवमी पर लगन वाल मल पर सकडा की सख्या म भापे ग्रपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट करन गोगामेडी म इकट्ठे हाते है। इनके गाता म भक्ति झलकती है ग्रौर व बडी रुचि एव गाम्भीय से गाय जाते

---

1 भापा के गीत देखिय—नलिका का शोध ग्रथ राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2—ग म

2 गीत देखिय—मरु भारती, ग्रगस्त 54

हैं।[1] गागा नवमी के दिन कुछ भोपे ढाल पीटते है और कुछ अपने शरीर पर लोहे की जंजीरा स पिटाई करते है।

माताजी के भोपे—य माताजी दुर्गाजी के पुजारी है और उसकी शक्ति म बड़ा विश्वास रखते हैं। आप करणीमाता की विरुदावली गाते हैं। करणीमाता क मेले क अवसर पर सैकडा भोपे इकट्ठे होते हैं।[2]

जोगी गायक—मारवाड शेखावाटी और तोरावाटी के जोगी गायक जोधपुर दोसावाटी और नारनौली विभागा म गीत गाते हुए मागते फिरते हैं। इन बचारा को प्रतिष्ठा प्राप्त नही हुई है। राजस्थान क अत्यन्त लोकप्रिय गीत निहालदे सुलतान और जीणमाता इन्ही लोगा के गीत हैं।

कुम्हारों के गीत—राजस्थान म दो प्रकार क कुम्हार पाये जाते हैं—मारू और ढूमर बाँडा। इनम स बाँडा कुम्हार प्राय पश्चिमी राजस्थान म होते है। य होली पर साग बनाने क लिये प्रसिद्ध हैं। फाग की राग के होली गीत बाँडा कुम्हारो द्वारा ही प्रारम्भ होते है। कुम्हार, घोसिया और धोबिया की स्त्रियाँ बसन्त म लूमर गाती हैं। जोधपुर, नागौर और पाली जिले म विशेषकर इनके गीतो का प्रचार है। होली क दिनो म या सावन की तीज पर दो पार्टी बनाए हुए आमने-सामने खडी होकर स्त्रियाँ नृत्य क साथ गीत गाती हैं। एक बार एक कतार गाती हुई सामने बढ़ती है फिर दूसरी। होली पर किशोरी बालिकाओ द्वारा गाये जाने वाला लूमर गीत इन्ही स्त्रियो का है —

लूमर रमवा म्हैं जास्यां[3] अथवा
"होली आई रे फूलां री झोली
भिरमटियो के ले।
ओ कुण लेले रे केसरियो बागो भिरमटियो के ले।"

दूसरा गाये जाने वाले इन जातियो क गीत हैं —

"कन आज आज्यो, काल आज्यो, होली रे परभात आज्यो,
धुलोडी राती आज्यो,
बाजत-बाजत थो गयो,
कन आंगलियाँ बजावे, मूंडलियाँ बजावै,
कन चिमटी र भणकार।"[4] बाजत०

---

1 राजस्थान क लोकानुरंजन (श्री देवीलाल सामर), पृ० 27
2 दमिय—गीता क नमूने लगिका का शोध ग्रन्थ, राजस्थानी लोक-गीत खण्ड 2–ग
3 पूरा गान देखिय खण्ड 2–ग गान संख्या 121
4 एमाही एव अन्य गीत संख्या 43 राजस्थान क लोक गीत पुस्तक।

जोगनियों के गीत—स्त्री गायकों में जोगनियों के गीत उल्लेखनीय हैं। ये याचक जाति की स्त्रियाँ बाजार में गा-गाकर नाचती फिरती हैं और इसी से पैसे इकट्ठे करके अपना पेट पालती हैं। इनके अतिरिक्त भगतनिये, सांसनियें और नट-नटणियों के गीत होते हैं। भगतनियाँ तो सब जगह गा-गाकर नाचती फिरती हैं—यू० पी० आदि में इन्हें बेडनियें कहते हैं। नट-नटी सारे राजस्थान में हैं पर आबू की तराई में जोधपुर के मध्य केन्द्रित हैं। सांसनियाँ भी सारे राजस्थान, पंजाब और यू० पी० में गा-गाकर माँगती फिरती हैं।

ढोली, ढाढी मिरासी, डोम, सरगड़े और हिंजड़ों के गीत—ढाढी हिन्दू और मुसलमान दोनों जाति के होते हैं। मिरासी मुसलमान और डोम व सरगड़े हरिजन जाति के हैं। ये लोग ढोल बजाकर गाते हैं। इनके गाने का अवसर होली है और पुत्र जन्म व विवाहादि अवसरों पर घर घर जाकर गाते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी गाती नाचती हैं। ढोल बजाने में ढोलियों का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। ढाढी लोग चिकारा बजाते हैं।

कुछ पुरुष लोग स्त्रियों के वेष बनाकर और भी कई ढंग से बहुरूपिये बनकर उपयुक्त अवसरों पर गाते फिरते हैं वे हिंजड़े कहलाते हैं।

सुथरों के गीत—सुथरा लोग नायक पंथी आदि किसी सन्त परम्परा विशेष के हैं और ये गन्धर्वों की एक जाति के गायक हैं जो मुसलमान और हिन्दू दोनों धर्मों के होते हैं। इनका व्यवसाय भी गीत बनाना और गाना है। संगीत से ही ये लोग जीवन निर्वाह करते हैं। ये लोग डेरू बजाते हुए डूंगजी जवारजी एवं राजस्थान के अन्य वीर पुरुषों के गीत गाते हैं। जन समाज में उनके सब से प्रेम बंधे हुए होते हैं। उनके अतिरिक्त इधर उधर भी गाते हैं। ये जीविका निमित्त कलकत्ता, बम्बई और इलाहाबाद आदि अन्य नगरों में भी जाकर गाते हैं।

कामड़िये—यह मेघवालों की एक खांप है। तेरह ताली नृत्य की तरह इनकी औरतें अपने बदन से 13 जगह मंजीरे बजाती हैं—ये रामियों के भगत हैं। मर्द तम्बूरे पर गाते हैं। इनकी औरतें पाँव में चाँदी का तोड़ा, कड़ियाँ, कानों में चाँदी के झूटन दांतों में सोने की चूँपें पहिन सकती हैं—इन लोगों का पेशा गाना बजाना है। अधिकतर भजन महादेवजी, मालीदेवजी, पवार आदि के बजाते हुए तम्बूर और मंजीरों पर गाते हैं।

रावल और सांसियों के गीत—रावल लोग चारण जाति के भिक्षुक होते हैं जो चारणों का ही तमाशा दिखाते, गीत गाते फिरा करते हैं। इनकी सामाजिक स्थिति बहुत निम्न कोटि की है। सांसी एक प्रकार से भगियों के चारण हैं—इनकी स्त्रियाँ गाती नाचती हैं और भगियों का बड़ा सम्मान करती हैं। ये भी गीत गा गाकर माँगने वाली जातियों में से हैं। इनके गीत अधिकतर पौराणिक गाथाओं पर आधारित होते हैं।

इनका अग्नि नृत्य एक अद्भुत चमत्कार है।[1] गान की तरंग में झुंड का झुंड बीच में जलती हुई अग्नि में कूद कर नाचता है। नृत्य के साथ ढोल बजा-बजा कर एक विशेष प्रकार की धुन और राग में गीत गाते हैं। यह एक जातीय नृत्य है जो सामान्यतः माघ-फाल्गुन के महीनों में मेलों के अवसर पर किया जाता है परन्तु कभी-कभी विशिष्ट जन उत्सवों व समारोहों पर भी यह नृत्य करवाने पर लोक कलाकारों को पुरस्कृत करते हैं। बीकानेर के यशस्वी भूतपूर्व महाराजा गंगासिंह अग्नि नृत्य के मुख्य संरक्षक थे। अग्नि नृत्य के साथ वे लोग अपने आराध्य देव गोरखनाथ के गीत गाते हैं।

2 भवाई नृत्य—जाटों की एक खाप जो नाचने गाने के व्यवसाय में लग गई भवाई कहलाने लगी। इनमें चमार, दुसाद, भील नायक तेली बलाई गूजर माली और लोग आदि जातियाँ भी सम्मिलित हो गई हैं। मध्य भारत और राजस्थान की सीमा के समीपवर्ती स्थानों तथा चित्तौड़ निम्बाहेड़ा घोसुण्डा विजय और भिलिया आदि गाँवों में भवाइयों के अड्डे हैं।[2] भवाई नृत्य का ढंग शास्त्रीय जैसा होता है। नृत्य गीतों के विषय दैनिक जीवन से सम्बन्धित होते हैं जिनमें हास्य रस का अच्छा पुट रहता है। गीतों की धुनों को ये अपने ढंग से ताल पर गाते हैं। ये लोग अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति के बल से जीवन के दैनिक पक्ष का बड़े प्रभावशाली ढंग से अभिनय करते हैं। भवाइयों के 12 नृत्यों में से मुख्य चार हैं—बीकाजी, बाघाजी ढोला मारू और सूरदास के जीवन वृत्त से सम्बन्धित। बाघाजी और बीकाजी खेल के गीत यहाँ दिये जाते हैं जिन्हें गा-गाकर भवाई लोग नृत्य करते हैं।

काठ्या निवासी बाघाजी के दीर्घकाल तक पावर तीर्थ से न लौटने पर उनकी पत्नी भारमली की व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति है —

"बाघा—थाव घर कोटड़े बले यूँ धणी,
आसी फूल झड़, थारो बास न जावे बाघजी।
जब जागूं जब सुणू, तॉंत तणी तणकार,
बाघा थारे बारणे, नटे नहीं मागणहार।
नैणा रा सरवर करूं, प्रीत री बाँधू पाल,
भारमली जस की मछलियां,बाघो नाल जाल।"

'बीकाजी खेल का गीत—

'बाजण लागा बायरा, ऊडण लागी खेह,
चालण लागो साथवो म्हारो टूटण लागो नेह।
आजे सजना साठ कोस, कर न जाज कोस असी,
चित फाटे मन उचटया, थाँसू प्रीत कसो।

---

1 नृत्य का विवरण देखिये राजस्थानी लोक-गीत पृष्ठ—192

2 वही पृष्ठ 194

सोयाले सो पड़सा, जदी ठरेला पाँय,
सेजाँ मे सुख सूँ पोढजो, कांमण कठ लगाय।"

उपयुक्त गीत म बीकानेर को बसान वाने महाराजा बीकाजी का जीवन चित्र है। बीकाजी तथा उनकी रानी क संवाद द्वारा उनका प्रारम्भ प्रेम चित्रित किया गया है। इस प्रकार क संवादात्मक गीतो क साथ नृत्यात्मक अभिनय स लोक-कला की श्रेष्ठता का परिचय मिलता है। य अभिनय बड रोमाचकारी और प्रभावशाली होत हैं। ढोला मारू जो राजस्थान का अत्यन्त लोकप्रिय शृगार रस का काव्य है और अन्य लोग इस केवल गा गाकर जनता का मनोरजन करत हैं उस भी भवाइयो न अपनी कल्पना शक्ति स बडे सुन्दर ढग स नृत्य म बाँध लिया है। नृत्य की मुद्राएँ भी अति मनोहर हैं। इस नृत्य के साथ ढोल मजीरे वाद्य यन्त्रो का प्रयोग होता है। इनकी वेशभूषा बडी कलात्मक होती है और आभूषणो स सुसज्जित होते हैं।

वर्षा ऋतु के अतिरिक्त वर्ष के 8 महीना भर भवाई लोग अपनी नृत्य मण्डली लिये घूम घूम कर जीविका कमाते हैं। कभी-कभी य लोग राजस्थान क बाहर गुजरात व सौराष्ट्र तक धनाजन के लिय जाते रहते हैं।

3 जालौर का ढोल नृत्य—रेगिस्तानी भागो म सरगरा, ढोली घाली और भील जातियो द्वारा मिलकर यह नृत्य किया जाता है। यह पुरुषो द्वारा किया जाने वाला नृत्य कई प्रकार के नृत्यो का समन्वय है—इसम एक क बाद एक 4–5 ढोल बजाए जाते हैं। य लोग पिछडी जातियो म हैं पर अपनी कला म प्रवीण होन क कारण लोक-कला की परम्परा को जीवित रखन म इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अपनी कला के द्वारा ही जीविका कमाते है। जालौर और समीपवर्ती गाँवो सुराना बागेरा और इनी गाँवो म ये नृत्य प्रचलित है।

4 बणजारा नृत्य—भारी बोझा लाद एक स्थान स दूसरे स्थान पर घूमने वाले खानाबदोश जाति के लोग बणजारे कहलाते हैं। य लोग वर्ष म आठ महीना तक घूम घूम कर व्यापार के अतिरिक्त नृत्य कला क प्रदर्शन द्वारा भी जीविका कमाते हैं। य प्राय जोश म नृत्य करते हैं नृत्य की मस्ती म अपने को भूल जाते है—बणजारा की स्त्रियो की वेशभूषा बडी आकर्षक होती है—बणजारा नृत्य क साथ प्रयोग म आने वाला मुख्य वाद्य ढोल है परन्तु कभी कभी थाल कटोरी भी प्रयोग करते हैं। इनके नृत्य के कोई गीत नहीं होते—यो ही नाचने समय मुख्य शब्द करते जाते हैं अपने साथियो को पुकार रहे हैं कालिया रे 'घोलिया र' आदि आदि।

बणजारो का मुख्य व्यवसाय व्यापार है मन अपने नृत्यो म बोझा लादना उतारना और चिलम पीना आदि अपने नित्य प्रति क कामो के भाव प्रदर्शित करते हैं। पहाडी प्रदेशो म बोझा ढोने का काम मिल जाता है इसलिय बणजारे लोग प्राय फतहसागर क पास वडा का खेडा बलदेव का खेडा न्दीवा गाँवो और भूपाल सागर के पास वाला खेडा गाँवो म बस हैं।

5 मारवाड़ का कच्छघोडी नृत्य—कुचामन परवतसर और निम्बाद आदि मरु क्षेत्र में व्यवसायिक नृत्य कच्छघोड़ी प्रचलित है जो बावरियों द्वारा नाचा जाता है। कच्छ की घोड़ी प्रसिद्ध है। दो टाकियों को बाँस के दो सिरों पर बाँध कर एक के ऊपर बनावटी घोड़ी का सिर और दूसरी पर पूछ के लिये गोटेदार गुच्छा लगा देते हैं उसे कढ़ाई से सजा देते हैं और उस के भीतर घुस कर हाथ में तलवार लिये पुरुष नाचता है। चार पाँच जोड़े मिल कर नाचते हैं। यह नृत्य जाति विशेष का नहीं है कोई भी निम्न वर्गीय लोग इस अपनी जीविका अर्जन का साधन बना सकते हैं परन्तु इस कला में दक्ष प्राय ये लोग पाये जाते हैं—शेखावाटी के सरगरा कुम्हार और दर्जी चूरू और रामगढ़ के मिरासी और मुसलमान तथा मेवाड़ और मारवाड़ के चमार व महतर। ढोल की आवाज के साथ इस नृत्य मे भाव व्यक्त किये जाते हैं गीत नहीं गाया जाता—साथ में भरखी ताशा लोक वाद्य भी बजाया जाता है। ढोल की उत्तेजक और कर्ण कटु ध्वनि युद्ध जैसा वातावरण उपस्थित कर देती है। ढोल का ठेका ताजिये जैसा होता है। इस नृत्य का आयोजन कठिन होने के कारण इस कला के प्रवीण लोग ही इसे कर सकते हैं अत उन्होंने इस नृत्य को अपना व्यवसाय बना लिया। विवाहादि अवसरों पर नृत्य करने के लिये भी मनोरंजन के लिये उन्हीं कला प्रवीण व्यवसायियों को बुलाया जाता है जिससे इन्हें प्रचुर आय होती है।

इस प्रकार लोक गीत और नृत्य कला तो व्यावसायिक लोगो द्वारा धनोपार्जन हेतु प्रयुक्त की ही जाती है—कुछ नाट्य गीत मण्डलियाँ भी जीविका कमाने के लिये इधर उधर जा-जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करती है। राजस्थान में नाट्य गीतों को ख्याल कहते हैं—प्राय होली पर या विवाहोत्सव पर नाट्य गीतों के साथ अभिनय होता है माली जाति के लोग इनमें अधिक भाग लेते हैं। शेखावाटी क्षेत्र में पेशेवर ख्यालों के रचयिता और खिलाड़ी विशेष रहे है। वर्तमान ख्यालों के प्रसिद्ध रचयिता हैं चिड़ावा के नानूराणा। इनकी पार्टी स्थान-स्थान पर प्रदर्शन कर के धनोपार्जन करती फिरती थी।

नानू के कुछ ख्याल है— विराट पर्व पूरण भगत हीर रांझा ढोला मरवण आदि। नानूराणा ने अपने ख्यालो मे स्थान-स्थान पर गुरुओं का उल्लेख कर के गुरु भक्ति का परिचय दिया है।

भरतपुर के रासधारियों के और चित्तौड़ के तुर्रा-कलगी नृत्य भी नाट्य श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं—ये लोग भगवान् राम-कृष्ण की लीलाओं का और अन्य पौराणिक कथाओं का प्रदर्शन कर के जीविका कमाते है। जैसे—

"रानी तने जुलम कर डारो, बन मे भेज दये श्रीराम"

भरतपुर अलवर करौली और धौलपुर में इन कथाओं पर रचे हुए रसिये गा-गाकर अभिनय होता है। इस प्रकार का एक अभिनय श्याम गूजरी बड़ा मन मोहक है।

राजस्थान के लोक देवता

राजस्थान म अनेक देवी देवताओं की मान्यता है, व्यक्ति अपना दुख-दद देवी देवताओं के सम्मुख निवेदन करके अपना मन हल्का कर लेता है। विशेषकर स्त्रियाँ म देवी देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा होती है प्रत्येक उत्सव एव मगल काय के अवसर पर व देवी-देवताओं की वन्दना करके कल्याण की कामना करना अपना धम समझती है और इससे उन्ह बल मिलता है। व्रतोपवास और तीथ यात्रा के अतिरिक्त राजस्थान म सगुण उपासना की निष्ठा भी पूणरूपेण पाई जाती है। यहाँ प्रत्येक बडे नगर म लक्ष्मीनाथजी शिवजी तथा गोपालजी एव अन्य देवी देवताओं के मन्दिर पाये जाते हैं। किन्ही परिवारो म तो अपने घरों के भीतर भी छोटे छोटे मदिर होते हैं जिससे राजस्थानी जनमानस म प्रवाहित भगवद् भक्ति का परिचय मिलता है।

लोक जीवन म पौराणिक देवी देवताओं के अतिरिक्त हृदय की अनन्य भक्ति और विश्वास के फलस्वरूप अनेक लोक देवता देवियाँ एव पितर पितराणियाँ की मान्यता है। हिन्दू शास्त्रों म जिन देवी-देवताओं का उल्लेख है—ब्रह्मा ब्रह्माणी लक्ष्मी विष्णुनारायण शकर पावती काली दुर्गा सरस्वती गणेशजी बजरगबली आदि—पूण भक्ति और श्रद्धापूण मानस से उनकी उपासना तो करते ही है—परन्तु जनमानस की अनन्य भक्ति भावना के फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति विशिष्ट कृत्य अथवा अलौकिक चमत्कारों के कारण पूजा जाने लगता है। इस प्रकार राजस्थान म अनेक देवी-देवता सिद्ध रूप होकर पूजे जाते हैं जिनमे मुख्य है—रामदेवजी भैरूजी पाबू राठौड, गोगाजी चौहान तेजाजी जाट जाम्भोजी केसरिया कवर भभूता सिद्ध भोमिया पीर और पच पीर जीण माता सकराय माता शीतला माता और करणी माता। सतीत्व की रक्षा तथा पति व्रत धम पालन के लिये बलिदान होने वाली सतियाँ अविवाहित बादयाँ पितर पितराणियाँ तथा भोमिये[1] भी देवताओं की भाँति पूजे जाते हैं।

समाज म कोई विशिष्ट काय कर दिखाने वाले व्यक्तियों के विषय म जन साधारण म गीत प्रचलित हो जाते है—वीर पूजा की यह भावना ही लोक गीत म धार्मिक रूप धारण करके उन विशिष्ट व्यक्तियों को देव स्थान पर प्रतिष्ठित कर देती है।

---

1 अविवाहित रहते जिनकी मृत्यु हो जाती है व भोमिये कहलाते हैं।

भैरव—भैरों बाबा की अखिल राजस्थान में मान्यता है। जगह-जगह भैरव के मंदिर बने हुए हैं। सामान्य भक्ति-भाव से तो भैरव की उपासना होती ही है पर धन सन्तान प्राप्ति की कामना पूर्ति हेतु भी यहाँ भैरों को ढोक दी जाती है। भैरोंजी के तीन रूपों की उपासना होती है—काले, गोरे और जूझार। काले भैरव राजपूत जाति के हैं, गोरे ब्राह्मणों के और जूझार जाट व स्वामियों द्वारा पूजे जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न जातियों में भैरव के अलग अलग स्वरूप की मान्यता है। बीकानेर के कोडमदेसर स्थान में भैरव का सबसे बड़ा मन्दिर है जहाँ समय-समय पर मेले लगते हैं—जोधपुर तथा अन्य नगरों से भी लोग आकर कोडमदेसर के मेले में सम्मिलित होकर परम भक्ति भाव से भैरवजी को ढोकते हैं।

रामदेवजी—रामदेव बाबा की भी समस्त राजस्थान में मान्यता है। जोधपुर के रुणीचा गांव में रामदेव बाबा का सबसे बड़ा मन्दिर है। भाद्रपद और माघ शुक्ला दशमी के दिन वहां भारी मेला लगता है। रामदेवजी रुणीचा के जागीरदार थे। भादों सुदि 11 को स० 1516 ई० में गाँव के रामसरोवर पर उन्होंने रुणीचा वासियों को समझाया और समाधि ले ली। तब से भक्तों ने उनके अनेक चमत्कार देखे—रामदेव बाबा की मान्यता से प्रभावित होकर मारली गांव के एक वैश्य मानीचन्द ने बराठिया गांव में रामदेवजी का मन्दिर बनवाया। वह अपनी पत्नी से कहने लगे—

'गहणो रे कपड़ा थारा सगला तो बेचूं।
अन्नदाता रो मिंदरियो चुणावां रे, जीवो
खमा खमा खमा रे कुँवर अजमाल रा"

यह है रामदेव के प्रति अटूट भक्ति कि भक्त अपनी पत्नी के वस्त्राभूषण बेच कर भी बाबा का मन्दिर बनवाने की भावना प्रकट करता है।

रामदेव और भैरों राजस्थान के सर्वाधिक मान्य लोक देवता हैं—बड़े बड़े मन्दिरों के अतिरिक्त नगर और गांवों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर रामदेव बाबा अथवा भैरों के थान बने होते हैं। भादों तथा माघ शुक्ला दशमी को जगह जगह रामदेवजी का जागरण होता है और दिन में जहाँ तहाँ मेले लगते हैं। सबसे भारी मेले जोधपुर के रुणीचा गांव में और बीकानेर के पास सुजानदेसर गाँव में लगते हैं जिनमें राजस्थान भर से यात्री आकर सम्मिलित होते हैं। रामदेवजी के स्थानीय मेले कई साधारण नगरों और गांवों में भी लगते हैं जैसे नवलगढ़ पोकरण और मसूरिया आदि।

रामदेव बाबा को राजस्थान में सब प्रकार की मनोकामनाएँ पूरी करने वाला लोक देवता माना जाता है जैसा कि निम्नलिखित जनश्रुति से व्यंजित है —

"कोढिया रो कोढ झाडे, आंधा ने आंख देवे।
लूला लगडा ने हाथ पाव देवे। आदि

जन मानस की अटूट श्रद्धा भक्ति क फलस्वरूप य लोक देवता सचमुच ही लोक जीवन म सुख समृद्धि की वर्षा करत हुए धार्मिक आस्थाओ को दृढ बनात रहे हैं।

बीकानेर जोधपुर और जसलमेर म गाँव-गाँव म रामदेवजी की देवलिया[1] हैं जहाँ सरलतापूर्वक ग्रामवासी मनौती मना मना कर रामदेव बाबा की ढोक देते है। वर्ष भर म कई बार निर्धारित तिथियो पर इन मदिरो म मले लगत हैं और रात्रि जागरण होते हैं—लोक जीवन म मेलो और जागरणो का बडा ही महत्त्व है। मले और जागरण लोक मानस म प्रवाहित भक्ति भाव क प्रतीक हैं य जनजीवन को सरस बनाए रखन म बडे सहायक होते हैं। जागरणो स जन साधारण को दिव्य सदेश मिलता रहता है जो उनक लिय सात्त्विक जीवन का माग प्रशस्त करता है। इन रात रात भर होन वाले जागरणो म गीतो का भार छोर नही रहता।

उदयपुर डूँगरपुर भीलवाडा और बाँसवाडा की ओर भारत के प्राचीन आदिवासी भील अधिक सख्या म रहते है। भीलो क आराध्य दव भरव है उन्ही के प्रभाव म समस्त राजस्थान म भरव की मान्यता प्रसारित हुई मानी जाती है—भरोजी पर अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। विवाहादि अवसरो पर भी भरोजी पर अत्यन्त सरस और भय पूर्ण गीत गाय जाते हैं। भरव बाबा का एक भील गीत है —

भरू थान पूजा।
भरू झालर नो झमको लाग, थान पूजा।
भरू पगलाना रमझड बाज, थान पूजा।
भरू नारता ना लडग बाज थान पूजा।
भरू घरतो धूजाओ मती थान पूजा।
भरू मगराना मांयल मार, थान पूजा।

विवाह पर गाय जाने वाले भरव क गीतो म यौवन का प्रतीक हस्रा और बेवाण ठहर ठहर कर मधुर वाणी म मानी जाती है —

'हस्रा री बेवाण रई ने बे बो बोल रे हस्रा री बेवाण।
हस्रा भई जोबनिया मांए, हस्रा री बेवाण।
× × × ×
हस्रा भरमो भरमो भाव रे, हस्रा री बेवाण।'[2]

भरव क अधिकाश गीत नत्य क साथ गाय जात है इनम कोई दार्शनिक तत्त्व नही होता।

भरव के कुछ गीतो म शराब पीन क भाव भी व्यजित हुए हैं —

आछो पायो ए कलालो थान, फूल दारूडो माय छक।
दारूडो आछो पावेल।

---

1 छोटे छोटे थान (मन्दिर रूप)
2 'आजकल' पत्रिका जुलाई 51 म प्रकाशित लेख डॉ० देवीलाल सामर क लेख से।

सिर पर का मोनी तो भरू जी कलाली न दीना जी, आछो पायो ।
आछो पायो ए कलाली थान फूल दारूडो मेद, छक दारूडो आछो पायो ।"

तान्त्रिक सिद्धियां के लिये निश्चित अवधि में मनोकामना पूर्ति हेतु जो देव यात्रा या तीर्थ यात्रा की जाती है उसे लोक जीवन में 'जात देना' कहते हैं—भैरव और रामदेवा आदि लोक देवताओं की जाते बहुत बोला जाती हैं—मनोकामना पूरी होने पर इन देव-देवियों के प्रसिद्ध मंदिरों में जाकर ढोक देते हैं। भरोजी अथवा रामदेवा को ढोक देने के लिये जाती हुई राजस्थानी स्त्रियाँ भैरों के प्रति भक्ति भाव से प्रेरित होकर अनेक गीत गाती हैं जैसे —

भैरव का गीत —

"थारे कोडाणे रे गोले में रे भरू काली गोरो बीणा बजाव ।
हो राज हर को हो हालरो सल देई मारा कानूडा भाई ।"

× × × ×

रामदेव का गीत —

'कोठे तो बाजा ओ अजमल[1] जी रा छावा बाजिया,
वारी जाऊँ कोठे तो घु रा छ निसाण । आज०
आज अजमलजी रो छावो कलश धो करया ए,
रुणीचे तो बाजा ओ अजमलजी रा छावा बाजिया । [2]

× × × ×

कलयुग मे तो रामदेवजी कवाया, द्वापर मे रामचन्दरजी,
त्रेता म कृष्ण भगवान कवाया ए,
देखो ए पुरुष नारी रामदेवजी ने गावे ए ।
जाको सदा दरसण देसी राम ।
जाको सदा बन मे होसी राम । [3]

इस प्रकार महिलाओं के कंठों से स्फुरित ध्वनि रूप गीतों से प्रकट है कि लोक-देवता जन मानस में भगवान राम कृष्ण के समकक्ष आसन पर प्रस्थापित हो गये हैं।

पाबूजी राठौड़—भैरव और रामदेवा के पश्चात् राजस्थान के लोक-देवताओं में पाबूजी का स्थान है। पाबूजी यहाँ के एक प्रसिद्ध वीर हुए हैं जिनकी जन्मभूमि

---

1 अन्य गीत देखिये—राजस्थानी लोक-गीत (खण्ड 2) पृ० 87–89

2 राजा अजमल रामदेव के पिता थे—कहा जाता है कि शेषनाग की शय्या पर शयन करते हुए द्वारकानाथ से वरदान प्राप्त करने पर भगवान् कृष्ण ने ही सं० 1461 में माघ सुदी 1 को रामदेव के रूप में अवतार लिया।

3 देखिये पूरा गीत—वही (खण्ड 2) पृ० 87

कोलूमगढ़ थी। पाबूजी ने प्रतिज्ञाबद्ध होकर भावरा स उठकर देवल चारणी की गायों की रक्षा निमित्त अपने प्राण बलिदान किये। और भी कई कठोर प्रतिज्ञाओं का पालन करते हुए गउओं तथा आश्रितों की रक्षा की। अतः वह अपनी वीरता और सात्विक आचरण के लिये राजस्थान मे देवता की भांति पूजे जाने लगे।

भैरव बाबा तथा रामदेवा की भांति पाबूजी के मंदिर भी कई स्थानों पर स्थापित है जहाँ पाबूजी की हाथ मे भाला लिये घोड़े पर सवार मूर्ति प्रतिष्ठित है। इनकी चरित्रावली एक चादर पर चित्रित है जिसे 'पड़' या 'पड़' बांचते हैं पाबूजी के भक्त जो भोपे कहलाते हैं इस पड़ को लिये हुए रावण हत्थे वाद्य यन्त्र के साथ पाबूजी की वीरता के गीत गाते हुए और कहीं-कहीं अभिनय भी करते घूमा करते हैं। इस प्रकार के चरित्रों पर रचित गीतों को पवाड़े कहते हैं। पाबूजी के पवाड़े समस्त राजस्थान मे प्रचलित हैं—भोपे लोग पाबूजी के प्रति भक्ति भाव से प्रेरित होकर नृत्य भी करते हैं। पाबूजी के पवाड़ों के कई खण्ड बीकानेर से प्रकाशित राजस्थान भारती और पिलानी की मरु भारती शोध-पत्रिका मे प्रकाशित हो चुके हैं। भील लोग अपनी भाषा मे भी पाबूजी के वीर कृत्यों पर कई गीत गाते हैं। इनके नाम पर कई सार्वजनिक मेले भी लगते हैं और गीत गाये जाते हैं। पाबूजी की जन्मभूमि कोलूमगढ़ मे उनका प्रधान मेला लगता है जहाँ राजस्थान भर के लोग आते हैं।

जांभोजी—जांभोजी पँवार वंशीय राजपूत थे—इनका जन्म मारवाड़ के पीपासर गांव मे सन् 1508 ई० मे हुआ था। यह ब्रह्मचारी महात्मा और सिद्ध पुरुष थे—इनकी करामातों से प्रभावित होकर लोग इन्हें सिद्ध मानकर पूजने लगे। जांभोजी को लोगों ने विष्णु का अवतार माना है। एक बार नागौर मे दुर्भिक्ष पड़ने पर 800 जाटों के एक दल ने गाँव छोड़कर भागने का निश्चय किया—तब जांभोजी ने पहुंच कर उन्हें रोक लिया और उन 800 व्यक्तियों को केवल एक मन अन्न मे 3 वर्ष तक लगातार भोजन दिया। इस प्रकार की कई घटनाओं से प्रभावित होकर लोगों ने विश्नोई धर्म स्वीकार किया। बीकानेर के तालवा गांव के धोरे पर रह कर जांभोजी अपने शब्दों और उपदेश द्वारा अपने धर्म का प्रचार करने लगे जिससे प्रभावित होकर अनेक लोग उनके अनुयायी बन गये। इनके नियमों की संख्या उन्तीस है अर्थात् बीस और नौ सम्प्रदाय का नाम पड़ने का कारण नियमों की संख्या ही है यद्यपि कुछ लोग इसका कारण बताते हैं इन्हें विष्णु अवतार मानना।

जांभोजी पर भी लोक जीवन मे कई गीत प्रचलित है जो विशेष अवसरों पर गाये जाते है—माघ पूर्णिमा को बीकानेर की नोखा मण्डी मे जांभोजी का मेला भी लगता है जिसमे आस-पास के स्थानों से भी प्रचुर संख्या मे लोग आकर सम्मिलित होते हैं।

---

1 रिपोर्ट—जनगणना, बीकानेर राज्य।

तेजाजी—तेजाजी जाट जाति के नर रत्न थे। वर्तमान हरयाणा प्रान्त का करनाल नगर इनकी जन्मभूमि है और वे पनेर गाँव में ब्याहे थे। जब तेजाजी ससुराल में थे तो लाच्छा गूजरी की गायें मीणे ले गये—पता पड़ने पर तेजाजी पीछे-पीछे दौड़ गये। सुरसुरे गांव में एक सर्प मिला जिसने इन्हें रोका परन्तु तेजाजी वापिस आने की प्रतिज्ञा के साथ गायों के पीछे चल गये और मीणों से युद्ध करके गायों को छुड़ा लाये—वापिस अपनी प्रतिज्ञा पालन हेतु सर्प के पास पहुंचे जिसके काटने से इनका देहावसान हो गया। इस प्रकार अपनी गउओं के प्रति भक्ति के फलस्वरूप प्रदर्शित वीरता और बलिदान के कारण तेजाजी देवता के रूप में पूजे जाने लगे। सर्वप्रथम तेजाजी की पूजा उनके बहनोई और ससुराल वालों के राज्य में आरम्भ हुई तत्पश्चात् समस्त राजस्थान में इनका नाम लोक-देवता के रूप में प्रचलित हो गया और पूजे जाने लगे। इनके सम्बन्ध में कई गीत मिलते हैं। एक गीत का कुछ अंश यहाँ दिया जाता है —

> गाज्यो गाज्यो जेठ आषाढ़, लगतोई बठो सावण भादवो।
> धरती रो मांडण मेहो, आभरी मांडण चमक बीजली।
> छतरी रो मांडण छाज, कूव रो मांडण भरवो केवड़ो।
> गौरी रो मांडण परण्यो सायबो।
> सूतो सुख भर नींद कँवर तेजाजी, थारा साथीड़ा घीस कांकड़ बाजरो।
> झूठी झूठ मत बोलो ए झरणी माता म्हारा साथीड़ा हींडे रंग रे पालणे।[1]

तेजाजी की स्मृति में भादवा सुक्ला एकदशी को परबतसर के आसपास के विभिन्न स्थानों में मेले लगते हैं जो पूर्णिमा तक रहते हैं—इस अवसर पर विशेषकर जनसमूह तेजाजी के प्रति भक्ति भाव से प्रेरित हो उन्हें ढोक देने आते हैं। महता लज्जाराम ने अपने ग्रंथ 'जुझार तेजा' में भली प्रकार इनकी प्रसिद्धि का वर्णन किया है। राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् और समीक्षक श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संकलित लोक-गाथा में तेजाजी पर तीन गीत उपलब्ध हैं। एक और भिन्न प्रकार का गीत तेजाजी पर हाड़ौती प्रदेश में गाया जाता है। अनेक स्थानों पर तेजाजी की मूर्ति घोड़े पर प्रतिष्ठित वीरता की द्योतक होती है। किशनगढ़ बूंदी अजमेर आदि स्थानों में भी तेजाजी के कई मन्दिर हैं जहाँ भादवे में एकादशी से पूर्णिमा तक मेले लगते हैं।

गोगाजी—गोगाजी का जीवन वृत्त जनश्रुतियों पर आधारित है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता प० झाबरमल शर्मा ने शोध पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'गोगा चौहान पर एक दृष्टि' में गोगाजी के जीवन पर प्रकाश डाला था। आप लिखते हैं कि गोगाजी ने विदेशियों की सेनाओं के साथ भयंकर युद्ध किया और भारी बलिदान के बाद वीरगति को प्राप्त हुए। यह देश के शासक थे। गोगाजी का सम्बन्ध साधा

1 यह पूरा गीत एवं अन्य गीत देखिये—राजस्थानी लोक-गीत (खण्ड 2) पृ० 88

से है अतः जनता भक्ति पूर्वक उन्हें पूजती है। राजस्थान में गोगामेडी नामक स्थान गोगाजी की पूजा का केन्द्र है जहाँ भाद्रपद कृष्णा नवमी को गोगाजी पीर का भारी मेला लगता है और दूर-दूर से यात्री आते हैं। राजस्थान में अन्य स्थानों पर भी इस दिन मेले लगते हैं—मेले के स्थानों पर गोगाजी की मूर्ति नाग का निन्दर के रूप में प्रतिष्ठित है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही गोगाजी को मानते हैं और पूजा करते हैं। गोगाजी और तेजाजी के मेलों में केसरिया कँवर और भभूता सिद्ध के गीत भी गाये जाते हैं।

गोगाजी के जीवन चरित्र सम्बन्धी अनेक गीत जन साधारण में प्रचलित हैं—इन गीतों में उन घटनाओं की प्रधानता रहती है जिनमें गोगाजी ने कोई निर्णय कार्य किया है अथवा कोई अति मानव कृत्य कर करके दिखाया है। गोगा नवमी के अवसर पर राजस्थान का समस्त वातावरण इन गीतों से गूँज उठता है। गीत का एक नमूना है —

"गोगो सूत्यो बड तल, सूत्यो रे सुख भर नींद।
वारी म्हारा गोगा अम रहियो।
माय जगाव गोगोजी को उठ उठ ओ म्हारा गोगा लाल।
मोटा पड्या बिलोवणा रोती रे थारी जाय छड्यार।
सूत्यो गोगो ओदक्यो टूटया रे थारे' लाल। वारी म्हारा०
ल्याओ ल्याओ पाबू कापडो, ल्याओ ल्याओ रे म्हारा पाच हत्यार।
हर जन मार्‌यो बड तल, सरजन रे सरवरिया री पाल।
मार्‌या रे मासी रा लाल॥"

केसरिया कँवर—केसरिया कँवर को गोगाजी का आत्मीय पुत्र माना जाता है यद्यपि इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। केसरिया कँवर की स्तुति में गाये जाने वाले गीतों में इन्हें पद्मा नागण का जाया 'पूनमे' का वीरा और सिन्दूरी का दाता कह कर वन्दना की जाती है। गोगाजी ने ददरेवा छोड कर मेडी को अपना निवास स्थान बना लिया था—उसका नाम भी केसरिया कँवर सम्बन्धी गीतों में आता है। गोगा नवमी के पहले दिन वाली अष्टमी को तो इनकी भी नाग रूप में पूजा होती है। इनका एक गीत है —

'बाजरडी री बूँट कँवरजी, जद मे म्हारो पाना नागण पण करया।
बधिया ल्याया ओ घार कँवरजी थारों मे सकल गुणोज बावो केसरो।
कोरे कुण्डे मट्टुवा ए कँवरजी छपन छुरी स गाडी मोडियो।
ओरज पीव ओ दूध कँवर सा, आप केसरियो कवर बावो धी पीव।
पिवरन राखो पताल कवरजी, आड मोडा री रिच्छा ए करो।

भोमिया—भोमिया लोग गाँवों में स्थानीय स्वामी हुआ करते थे जो सन्तान के समान प्रजा का पालन करते थे और प्रजा भी उन्हें पितृवत मानती थी। जिस

प्रकार अत्यन्त लोकप्रिय राजा मृत्यु के पश्चात् भी चिरकाल तक प्रजा के मनों में राज्य करता है और उसकी स्मृति में स्मारक बनवा कर भावी पीढ़ियाँ उन्हें देव तुल्य मान्यता प्रदान करती हैं इसी प्रकार किसी सर्वप्रिय भोमिया की मृत्यु होने पर लोक जीवन में उसकी देवता रूप में पूजा होने लगती है। अन्य देवी देवताओं की भांति जन्म और विवाह आदि के मांगलिक अवसरों पर भोमिया के नाम से जागरण होता है जिसमें भोमिया सम्बन्धी गीतों के अतिरिक्त धार्मिक आस्था के पौराणिक भजन हरजस सबद और सलोके आदि गाये जाते हैं। जागरण की समाप्ति पर भोमिया के प्रसाद चढ़ाया जाता है। जागरण में सम्मिलित होने वाले सभी जन प्रसाद चढ़ा कर अपनी श्रद्धा अर्पण करना महान् पुण्य कृत्य मानते हैं। भोमिया पर कई गीत प्रचलित हैं जिनमें भोमिया के स्वामित्व में किये शुभ कृत्यों के वर्णन के साथ जनमानस के भक्ति भाव का परिचय मिलता है एक गीत का नमूना है —

> कठोड़े बाजा बाजिया हो मोयल राणा कठोड़े घोड़ा रे निशान
> लाखा भोमिया हो।
> बीकाणे बाजा बाजिया हो मोयल राणा, सरगां में घोड़ा रे निशान।
> मोयल राणा सींव रे जारी करो रिछपाल घोड़ा बीराजे नवलखा हरो।
> मोयल राणा मोतीडा सुघड़ लगाम बागे बीराजे उजला हो।
> मोयल राणा बड़ा बड़ा मोती छ कान हाथ हीराजड़ मुंदड़ो भी।
> मोयल राणा मेहदी सूं राचा छ हाथ सुवरण सोहे साँकड़ी हो।
> मोयल राणा मेहदी सूं राचा छ पाँव चढ़े न चढ़वे चूरमो हो।
> मोयल राणा चोटी वालो नारेल सब्द भोमिया हो,
> मोयल राणा सींव रे जारी करो रिछपाल।

यह है जन-जीवन में भक्ति भाव का प्रवाह। स्वाभाविक रूप से कर्त्तव्य पालन कर्त्ता स्वामी के प्रति भी इतनी श्रद्धा और आस्था जन मानस में पाई जाती है जो उन्हें देव-स्थान पर प्रस्थापित करके पूजने लगते हैं—इन्हीं के माध्यम से उनकी पूजा बड़े देवता रूप भगवान को पहुंचती है। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो भक्त जिस जिस देवता के स्वरूप को भक्ति-पूर्वक श्रद्धा भाव से पूजता है उस भक्त की उस ही देवता के प्रति मैं श्रद्धा स्थिर करता हूं और वह व्यक्ति उस श्रद्धा से युक्त हुआ मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को प्राप्त होता है।[1]

---

1 यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्॥

गीता अध्याय 7—21, 22 तक

इस प्रकार ज्ञान विज्ञान की विधिया स विहीन सरल मानस वाला यह जन समूह साधारण शक्ति सम्पन्न लाक-देवताओ म ही अपनी श्रद्धा निहित करक भगवत् कृपा का अधिकारी बन जाता है जा आधुनिक बुद्धि प्रधान शिक्षित वग स कहीं अधिक जीवन क यथाथ सुख और शाति का भागी है।

भभूता सिद्ध—भभूता सिद्ध पर गाय जान वाल गीत स यह एक बकरी चरान वाला ग्वाला था—अपना रेवड चरान गया हुआ था वहा सप क काटन स मृत्यु हा गई और सहज विश्वासी जनता उस सिद्ध मानकर पूजन लगी। रात्रि जागरण और तजाजी गोगाजी आदि क मेला क अवसर पर भभूता सिद्ध क गीत गाय जात है। ऐसा ही एक मर्मस्पर्शी गीत है —

"हाय गगरन गडियो भभूता सिद्ध रेवडियो चरावण जाय।
रेवड छोडयो ताल मे, भभूता सिद्ध धोरां लियो विसराम।
सूत ने पणो पो गयो लागी लागी कालूडे[1] री फट।
उठो रे सायोडा कर लो चानणो भभूते ने डसग्यो कालो नाग।
बाबो जो उडीक कोटड्या, भभूता सिद्ध माऊजी रसोयां मांय।
सजा बाई उडीक सासरे, भभूता सिद्ध गोरी धण महला रे मांय।
माय सपूती बरजियो भभूता सिद्ध वार बुधवार मत जाय।"

गीत की अंतिम पंक्ति म भारतीय संस्कृति म शकुन मान्यता की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

पीर और पच पीर—राजस्थान म पीर और पच पीर की पूजा हिन्दू मुसलमान सब करते है। इस प्रकार क अनक देवी-देवता यहाँ भावना म बना लिय गय है।

जीण माता और सकराय माता—इन देविया का दुर्गा का रूप मान कर पूजा जाता है। शेखावाटी म इन दोनो क मन्दिर है जिनम स सकराय माता की स्थानीय मान्यता है परन्तु जीण माता अखिल राजस्थान म प्रसिद्ध है राजस्थान क बाहर स भी यात्री इन्ह पूजन का आत हैं। जीण माता का गीत राजस्थान क लोक गीत साहित्य म विशिष्ट स्थान रखता है साहित्यिक दृष्टि स भी इस गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। गीत म वर्णित जीण माता की कथा भाई-बहिन क सात्विक प्रम का मार्मिक चित्रण है। अनक विद्वानो न जीण माता के गीत को राजस्थान का सव श्रेष्ठ लोक गीत माना है। गीत का साराश इस प्रकार है —

जीण और हर्ष भाई बहिन थ। घांघू नामक स्थान म चौहान राजपूत कुल म इनका जन्म हुआ था। इनकी छोटी अवस्था म माता पिता छोड कर स्वर्गवासी बन गय। हर्ष का विवाह हान पर एक दिन पानी भरन जात हुए ननद भौजाई म युद्ध

---

1 काला नाग

वहां सुनी हो जान मे जीण को मर्मान्तक दु ख हुआ और वह घर छोडकर चली गई। हृष मनाने पहुचा परन्तु बहुत मनाने पर भी वह नहीं लौटी—तो हृष भी उसके साथ हो लिया और पहाडो पर जाकर तपस्या करने लगा। जीण शक्ति का अवतार बन गई और हृष भी सिद्ध रूप म पूजा जाने लगा। भाई-बहिन की उस गाथा का गीत जीण माता नाम से लोक प्रचलित हो गया जो जीण और हृष के बीच सवादात्मक रूप म है और अत्यन्त कारुणिक स्वरो म गाया जाता है।[1] उसके अत्यधिक करुण रस पूर्ण अश दिये जाते हैं —

"हरसा भाई म्हारा रे, क्यान खिणा दे सरवर ताल,
जामण रा रे जाया, थारी ▮ थारी रे मोवन बावडी।
हरसा वीर म्हारा रे, एक ओवर मे रे दोनूं लोटिया,
एक मायड रो चू ग्यो दूध, म्हारो जामण रा रे जाया।
एक पालणिये दोनूं झूलिया, हरसा वीर०
एक आंगण मे दोनूं रे खेलिया, एक बाटकिये पियो रे दूध,
म्हारी मा रा रे जाया, एक थाक्ली रे साथ जीमिया।
हरसा वीर म्हारा रे बनड भाई रो गाढो नेह,
जामण रा र जाया, पर घर री आयो रे तोडियो।"

× × × ×

"जीण म्हारी बाई ए, भोत सुहेलो ए घर रो छोडियो
घणो ए सुहेलो ताजीवो मोह, म्हारी मा री ए जायी,
हरस रा वायक ना फिर, जीण म्हारी बाई ए।
चालू लो या रे खोजा रे लार, जामण री ए जायी
धूणी तो तापू ए बन खण्ड डूगरा।"

शेखावाटी म सीकर से चार कोस पर अरावली पहाडो की श्रेणी के नीचे जीण माता का मदिर है। मन्दिर के पुजारी पाराशर गोत्रीय ब्राह्मण और सांभरिया न्याप के चौहान राजपूत हैं। यह मदिर शेखावाटी के अत्यन्त प्राचीन मन्दिरो म से है। दूर दूर स लोग दर्शन करने आते हैं। मन्दिर के बाहर सॅपेरे मस्त होकर बीन बजाते हैं और ग्रामीण माताए मधुर ध्वनि म गीत गाती है।

माता र थान मे, चिरविट नाडो बोडलो।
सुपरा के बोडल म्हारो जीण माता बस रही।
माता के थान मे चावल रो बोडलो,
सेर घुडक, नार रो असवारी।
म्हारी जीण माता बस रही।

---

1 गान बहुत बडा है—उसका कुछ अश उपलब्ध हो सका जो 'राजस्थानी गीत' खण्ड 2 म दिया हुआ है।

जो कोई जीण माताजी न ध्याव, सन्त सुख पाव ।
मनसा होव पूरो, म्हारी जीण माता री ग्रासीस सूं ।''

शीतला माता—भारत क ग्रन्य प्रान्तों की भांति राजस्थान म भी चचक क राग को देवी का प्रकोप माना जाता है ग्रौर मान्यता म यह विश्वास है कि दवी की प्रार्थना ग्रौर मान्यता स उस शान्त किया जा सकता है । इस दवी को शीतला माता क रूप म मानते हैं ग्रादि मानव न ग्रपनी पुत्र भावना प्रकट करके जिस माता क रूप म ग्रहण किया । चत्र की ग्रष्टमी को शीतलाष्टमी नाम स्वरूप मनाए । ग्रपने बालकों की क्षेम कुशल क लिय इस दिन शीतला पूजन करके मनाती है । दवी को शान्त करन के लिय व ग्रग्नि का सेवन नहीं करती ग्रत इस दिन एक दिन पूर्व का बनाया हुग्रा ठण्डा भोजन किया जाता है ग्रौर ठण्डे सामान स ही माताजी को पुजापा चढ़ाते हैं । राजस्थान भर म ग्रनेकों जगह शीतला माता के मन्दिर बने हुए हैं । य मंदिर प्रायः बहुत ऊँचे स्थान हैं जैसा कि निम्नलिखित गीत की पंक्तियां स प्रकट है —

''माता र मैंमद घड़ावोजी, माईजो रतजी रतन जड़ाय ।
पेड़ियां तो म्हां सूं चढ़ो न जावजी ।
थांकी पेड़ियां तो दड़ सी माईजी ए ।
झुल झुल दूख सरीर ।
पेड़ियां तो म्हा सूं चढ़ो न जावजी झुक झुक दुख सरीर ।
पेड़ियां तो म्हां सूं चढ़ी न जाव ।'

शीतला माता क गीतों का ग्रोर छोर नहीं है—किसी गीत म मैया के स्वरूप का वर्णन है कहीं बालक की रक्षा क लिय स्तुति की है ग्रौर कहीं बच्चे का चचक निकलने पर मां मनौती करती है कि शान्ति स चचक ढल जाव तो वह शीतला माई का थान[1] बनवायगी । एक गीत म माता की मनका बलैया लेती हुई राजस्थानी महिला चचक क प्रारम्भ म ढलन तक का चित्र प्रस्तुत करती है —

''जद म्हारी माता टूटण लागी, गाजर को सो बीज ।
बला लू सेडल माता ए ।
जद म्हारी माता भरण लागी मक्की को सो बीज । बला लू०
जद म्हारी माता मान लियो ए सोयो सारी रात । बला लू०
मरियें कुं आले धोक लीजो नानडिये री माय ॥

स्कन्द पुराणोक्त शीतला दवी का स्तोत्र प्रसिद्ध ह जिसम कहा गया ह कि ह शीतला माता मैं तुम्हारी वन्दना करती हूँ—प्रसन्न हो जाओ—न इस रोग की ग्रौषध न जन्त्र मन्त्र है—हे माता शीतला तुम्ही एक रक्षा करने वाली हो ग्रौर कोई दवता दृष्टि नहीं ग्राता —

---

1 इन दवियों क मन्दिर को थान बोलते हैं ।

"वन्दे ॰ शीतला देवी, सव रोग भयावह । नमन्त्रो
नोपध तस्य, पाप रोगस्य विद्यते ।
त्वमेका शीतले धात्री, न मन्यां पश्यामि देवते ।"

इस प्रकार के अनेक चित्र स्त्रियों की अनन्य आस्था के शीतला माता के गीतों में मिलते हैं।

चैत्र कृष्णा अष्टमी को सभी स्थानों पर शीतला के मन्दिर में मेले लगते हैं जहाँ झुण्ड के झुण्ड स्त्रियों के भाव भक्ति पूर्ण गीत गाती हुई जाती हैं और माता को ढोकती हैं।

करणी माता—राजस्थान में करणी माता की भी बहुत मान्यता है—करणी माता को दुर्गा का अवतार माना जाता है। धन सन्तान और सब प्रकार की सिद्धियों के लिये करणी माता को पूजते हैं। बीकानेर में देशनोक में करणी माई का बहुत बड़ा मन्दिर है। चैत्र और आसोज शुक्ला नवमी को वहाँ माताजी (करणी माई) का बड़ा भारी मेला भरता है जिसमें सम्पूर्ण राजस्थान के लोग आकर सम्मिलित होते हैं। करणी माई के कारण देशनोक को सिद्ध पीठ होने का महत्व प्राप्त है। करणी माता के अनेक गीत हैं जो मेले के अवसर पर गाये जाते हैं और समय-समय पर विशेष अवसरों पर होने वाले रात्रि जागरणों में भी। गीत का एक अंश यहाँ दिया जाता है —

"हे दनाण री राय ओ कार्चे पाके तातण आई,
माता कुआ ए जुडायो हे माय गढपतिराजी री लश्कर आयो है।
सुणो री राय, सासूजी तो पूछे करण दे थो माय ने काचूले,
तोराव ने सेले जो री आई।
माता हेली हे मराए हे माय दूब तोडी है आहज तराई है दनाण री राय।"

बीकानेर के राज परिवार में करणी माई को कुलदेवी मानकर पूजा जाता है और रात्रि जागरण होते हैं।

नागणेची माता—राठौड़ वंश की कुल देवी नागणेची माता है—पहले इन्हें राजेश्वरी अथवा राठेश्वरी कहा जाता था। सर्वप्रथम राव धूहड़जी ने परगने पचभद्र में नागाना ग्राम में नागणेची माता का मन्दिर बनवाया तब से देवी प्रसिद्ध हो गई। जोधपुर के दुर्ग में भी जनाना ड्योढ़ी के निकट एक मन्दिर है। प्रत्येक राठौड़ गाँव में एक थान देवी के नाम पर बना हुआ है। यह थान प्रायः नीम वृक्ष की छाया में होता है। भानान जाति के लोग अपने बच्चों का मूँडण संस्कार नागणेची जी के मन्दिर में करवाते हैं। बीकानेर में भी नागणेची देवी का विशाल मन्दिर है जहाँ चैत्र व आसोज में नवरात्र पर्व में दर्शकों की विशेष भीड़ रहती है। नित्य प्रति भी प्रातः साय सैकड़ों की संख्या में लोग देवी को ढोक देने जाते हैं। इनके लोग तो नित्य दर्शन का संकल्प लिए हुए बिना दर्शन भोजन नहीं करते। नई रोशनी के शिक्षित समाज में भी नागणेची देवी की बहुत मान्यता है।

रामदेव और भैरो बाबा की भांति नागणेची तथा करणी माता को भी राजस्थान में सब प्रकार की मनोकामनाएँ पूरी करने वाली माना जाता है।

इन प्रमुख देवियों के अतिरिक्त राजस्थान के अलग-अलग क्षेत्रों में स्थानीय महत्व की कई देवियाँ हैं। भंडारी जाति के लोगों की कुलदेवी का नाम आशापुर है। श्रीमाली ब्राह्मणों की कुलदेवी का नाम महालक्ष्मी है। आशापुरी का मन्दिर नाडोल में है वहाँ वर्ष में दो बार मेला लगता है।[1]

सतियें, बायाँ और भोमिये—प्राचीन काल में स्त्रियों की पति के साथ सती होने की प्रथा थी वह धीरे धीरे बन्द हो गई परन्तु कई स्त्रियाँ अपने सच्चे प्रेम और पति भक्ति के फलस्वरूप आत्म प्रेरणा से सती हो जाती थी। इस प्रकार सती होने वाली स्त्रियाँ समाज में सतियाँ नाम से पूजी जाने लगी जिनकी प्रशंसा में अनेकों गीतों की रचना हो गई और कहीं-कहीं मेले भी लगते हैं।

इसी प्रकार जिन अविवाहित कन्याओं ने कुल की लाज या देश की रक्षा के लिये प्राण निछावर कर दिये हैं—वे बायाँ नाम से लोक में पूजी जाने लगी उनके बलिदान सम्बन्धी लोक-गीत भी गाये जाते हैं।

जो पुरुष अविवाहित रहकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है उसके ब्रह्मचर्य की महिमा प्रस्थापित करने हेतु उसे भोमिया कहकर पूजन लगते हैं। अशिक्षित जनता में यह विश्वास होता है कि कोई मनुष्य मर कर प्रेत या देवता बन जाता है। देवता बने हुए अविवाहित पुरुष भोमिये कहलाते हैं इनकी स्तुति में भी अनेक गीतों की रचना हुई है।

सतियों और बायों के गीत —

म्हारी ए सत्यां माई जी हुकम करो तो पायलां मगा द्यूं ए।
सेवक कांई ए करे थारा पायलां।
म्हें तो जाऊं आलीजा की लार केसरिया की लार।
सेवर (सेवक) म्हारा ए पायलां मगावत ढील लाग छ ए।
म्हें तो जावां आलीजा की लार हठीला हठ छोड दे।
म्हारी ए सत्यां माई जी हुकम करो तो पाटोलो मगा द्यूं ए।"
आगे सारे आभूषणां के नाम ले ले कर गीत बढ़ता है।
बायां कुण जी चिणायो थारो देवरो,
बायां कुण जी दिराई गज नींव ए।
महाराजा चिणायो म्हारो दवरो, बायां मेहिर करो ए किरपा करो।
बायां जातीड़ा री आसा मनसा पूरो ए घिर मांणिये हो ए सांचो।
सायवणिया मिथन भवनतो मां पर मेहर करो।

1 राजस्थान की जातियाँ—पृ० 9 व 135, 136

राजस्थानी लाक सम्कृति धार्मिक ग्रास्था ग्रौर विश्वासा स ग्रात प्रोत ह। जीवन के हर क्षेत्र म देवी-दवताग्रा की मायता पाई जाती है। धन सन्तान एव सब प्रकार की लौकिक सिद्धिया के लिये मनौतिया करव दवी-देवताग्रा की जात देना जागरण करना व्रतोपवास व तीथ यात्रा करना ग्रादि सभी कृत्य जन मानस की धार्मिक ग्रास्था स सम्बन्धित है—इस ग्रास्था का मूल रूप म क्रियान्वित करने के लिय दवी-देवताग्रा का ग्राश्रय लेते हैं बड बडे देवा को प्रसन्न करन का साहस साधारण मन स्थिति का यह जन-समूह कर नही पाता न तो महान् देवा तक पहुचन की विधि विधाना का उन्हे ज्ञान है न उतना साहस—सद्य फल प्राप्ति क लिय य लाग छोटी श्रेणी के सवको (लोक देवताग्रा) को ही प्रसन्न करते रहते हैं—इन्ह बड दवा के सवका के रूप म मान कर इनके माध्यम से बडे दवताग्रा का प्रसन्न करन की प्रवृत्ति बन गई। लाक-जीवन म बडी बाता की ग्रोर घ्यान कम जाता है साधारण बाता तक ही लाक दृष्टि सीमित रहती है। तभी इतिहास प्रसिद्ध राणा प्रताप ग्रौर पृथ्वीराज जसे वीर पुरुषा की ग्रार ध्यान न देकर पाबू राठौड का प्रतिज्ञा पालन गोगाजी की गारक्षा ग्रौर भरू बाबा तथा रामदेवजी के परोपकार के कृत्य लाक-मानस को इतना प्रभावित कर सक कि उन्हे देव श्रेणी म स्थान प्राप्त हो गया।

इन लोक देवी-देवताग्रा की मान्यता के प्रतीक मला ग्रौर मन्दिरा ग्रादि का सजीव वणन विदशी यात्री टाट ने ग्रपनी पुस्तक 'एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ग्राफ राजस्थान' म भी किया है। इन सभी दवी-दवताग्रा की स्मृति म निर्मित मंदिरा दवलिया ग्रथवा ताल तलया पर बनाए हुए पूजा स्थाना पर वष म निश्चित तिथिया पर मेले लगते हैं जिनम स्त्री पुरुषा के झुण्ड के झुण्ट रग बिरगी पोषाक पहन उल्लास पूवक सम्मिलित होकर इन देवा के प्रति ग्रपने हृदय का भक्ति भाव व्यक्त करत हुए मनौतिया मनाते है। राजस्थानी महिलाग्रा द्वारा विविध दवी दवताग्रा सम्बधित मला पर गाये जान वाले गीता स लाक-जीवन क उत्साह ग्राल्हाद ग्रौर स्वाभाविक उल्लास की ग्रनेक रूपा म ग्रभिव्यक्ति हुई है।

राजस्थान के संस्कार सम्बन्धी गीत

भारतवासियों का जीवन जन्म से संगीतमय रहा है। प्रत्येक उत्सव पर्व त्योहार आदि के अवसर पर समयोचित गीत गा-गाकर भावाभिव्यक्ति द्वारा मनोविनोद करना हमारी दिनचर्या का एक अंग है। प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में स्त्रियाँ अपने कोमल कंठों से गीत गा-गाकर मन का उत्साह प्रकट करती हुई पुत्र जन्मोत्सव एवं विवाहादि मांगलिक अवसरों पर उपस्थित मण्डली का मनोरंजन करती आई हैं— हमारे यहाँ यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग में भी इन पर्वों के अवसरों पर मनोहर गाथाएँ गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में पाया जाता है। गर्भवती महिला में विवाह के मांगलिक अवसर पर गाने की विधि भी उल्लिखित है।

गर्भावस्था से ही यहाँ शिशु लोक साहित्य से प्रेरणा लेना आरम्भ कर देता है और जन्म के साथ वह चारों ओर मांगलिक गीत सुनता है। कुछ बड़ा होने पर लोरियों द्वारा माता की भाव लहरी बालक के कानों तक पहुँचती है। इस समय यद्यपि वह इन लोरियों के भाव नहीं समझता परन्तु उसके अवचेतन मानस (subconscious mind) पर उनका प्रभाव अवश्य पड़ता है और वह निरन्तर इनसे प्रेरणा पाता रहता है और जब बालक शब्दों को समझने योग्य हो जाता है तो अपने आस-पास की अन्य मांगलिक अभिव्यक्तियों को बड़े ध्यान से सुनता है।

लोक जीवन आशा और उत्साह से पूर्ण रहता है। अतएव भारतीय लोक गीतों में समृद्धि का चित्रण अधिक मिलता है। मेले त्योहारों पर्वों तथा जन्म विवाहादि उत्सवों के गीत सर्वाधिक हर्षोल्लास में पूर्ण होते हैं। यद्यपि लोक गीतों के विषयों की कोई सीमा नहीं। जीवन का कोई क्षेत्र, कोई अंग ऐसा नहीं जब लोक-साहित्य में हर्ष विषाद सुख दुःख की अभिव्यक्ति गा गाकर न होती हो। किसी परिस्थिति में हृदय में उत्पन्न होने वाले भावों में आत्म विभोर होकर लोक मानस गीतों की रचना कर लेता है। संसार की कोई वस्तु जीवन की कोई घटना अथवा मन का कोई भाव नहीं जिस पर गीत न बने हों। लोक गीतों का अज्ञात कवि स्वाभाविक जीवन में घटने वाली किसी भी घटना से प्रभावित होकर निरुद्देश्य कविता राग अलापने लगता है— फिर भी हर्ष के अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में अर्थात् संस्कार सम्बन्धी और मने त्योहारों सम्बन्धी गीतों में सर्वाधिक लोक मानस का उच्छ्वास, उल्लास और उमंगों का

उच्छलन हुआ है। राजस्थान में इन अवसरों पर नारी के कंठ से प्रवाहित होने वाली भाव लहरियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती है। भावाभिव्यंजना के अतिरिक्त के कारण किसी छोटे से मर्मस्पर्शी बिन्दु को लेकर थोडी-सी विषय सामग्री को भी ये निरक्षर माताएँ अपने कंठ से प्रस्फुटित राग और लय की खिंचावट से खूब बढा चढा कर गाती हुई समस्त वातावरण को गुंजायमान कर देती हैं। लोक साहित्य के तात्त्विक चिन्तक और विद्वान प॰ मोतीलाल शास्त्री ने राजस्थान के लोक गीतों के इस गुण को विस्तारानुबंधिनी महत्ता कहकर इन गीतों को महा संगीत की संज्ञा दी है।[1]

राजस्थान के संस्कार सम्बन्धी गीत प्रमुखतः सात रूपों में पाये जाते हैं

1 सीमन्तोन्नयन संस्कार सम्बन्धी अर्थात् दोहद साध अथवा साध पुराई के गीत। इन गीतों को 'फुलेरा' भी कहते हैं।

2 जात कर्म अथवा प्रसव सम्बन्धी—इन्हें यहाँ हालरे व सोवे नाम से अभिहित किया जाता है। नाम करण संस्कार पर भी यही गीत गाये जाते हैं।

3 चूडा करण अथवा जडूला उतरवाने के गीत।

4 कर्ण वेधन संस्कार के गीत।

5 उप-नयन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार के गीत।

6 विवाह सम्बन्धी गीत।

7 अन्त्येष्टि संस्कार गीत।

1 **सीमन्तोन्नयन संस्कार के गीत**—यह संस्कार बालक के जन्म से भी पूर्व गर्भ के सप्तम अथवा अष्टम मास में शास्त्र विधि अनुसार इन्द्र विद्युत को शान्त करने हेतु मनाया जाता है।[2] इस संस्कार को मनाने का प्रचलित नाम है 'चौक पूजा' जिसे राजस्थान की लोक भाषा में साध पुराना अथवा अगरिती कहते हैं।

भारतीय परिवार में सन्तान का जन्म अत्यन्त आनन्द का विषय होता है—अतएव गर्भाधान के आरम्भ से ही घरों में आनन्द मनाने के रूप निकाल लिये जाते हैं। 'सीमन्तोन्नयन' संस्कार के अवसर पर गर्भवती स्त्री की साध पुराने के गीत गाये जाते हैं, इन गीतों में गर्भवती की ओर से विभिन्न व्यंजनों अथवा खाद्य वस्तुओं के लिये इच्छा का वर्णन करते हुए सास-ससुर जेठ जिठानी अथवा पति द्वारा इच्छा पूरी करने का उल्लेख रहता है।

इस प्रकार इन गीतों में गर्भवती स्त्री के लाड चाव की व्यंजना पाई जाती है।

---

1 श्राद्ध विज्ञान, पृ 221

2 इन्द्र का शत्रु असुर होता है—उसे बेधने के लिये सीमन्त में शूला (कांटा) प्रयोग करने का विधान है—इसलिये इस संस्कार का नाम सीमन्तोन्नयन पडा।

दोहद के कुछ गीतों में गर्भावस्था की पूरी अवधि का वर्णन रहता है कि प्रथम मास में अमुक वस्तु का मन करता है दूसरे महीने में अमुक का, दूसरी प्रकार के गीत एक-एक वस्तु को लेकर अलग अलग रचे हुए हैं— जैसे मूली गाजर बेर बाजरी, बादाम, दाख आदि पर। गर्भवती की साध पूरी करने के उपायों में माना सारे परिवार के लोग लग जाते हैं—सब वस्तुओं के नामों के साथ घर के बड़ों के नाम ले-लेकर गीतों की रचना होती है उदाहरणार्थ —

ऊबा ससुरोजी अरज कर बहू एक साथ फरमावो जी।
ऊबा सासूजी अरज कर बहू एक साथ फरमावो जी,
आम्र नहीं भाव मोहे नीम्बू नहीं भाव, म्हाने पचेरा रा बेर मँगावो जी।
सेर ना लाऊँ दो सेरा न लाऊँ म्हाने म्होरा की आवपा बुलावो जी।
एक सुगाव्यो पेट पड्यो वो बेर ही बेर पुकार जी ॥[1]

प्रथम प्रकार के साथ गीत का नमूना है —

जच्चा ने पलो मास लागियो स जी बातां बहोत ओव जाय।
दूजो मास लागियो जो धूलतडा जीव जाय जी ॥
अलबेलो म्हारी जच्चा सुवरण के प्याले केसर घोलस्यां जी
केसर प्यावो रग।

घटावो दोय दोय पड़दा घावो जी ठिमक चलो, घूँघट खोलो,
जराक हस बतलावो ए अलबेली जच्चा सुवरण के प्याल ए, केसर
घोलस्यां।

जो आंगणो मासज लागियोस जी खीर खांड जीव जाय ॥
चौथा मासज लागियो जी कोई चीला पूड़ा जीव जाय जी ॥
अलबेली म्हारी जच्चा०

जो पाँचवो मासज लागियोस जी घेवर पर मन जाय म्हारा मारू जी
घेवर पर मन जाय।
छठो मास जो लागियो कोई माल मेवा मन जाय जी ॥ अलबेलो०
जो सतवों मासज लागियोस जो सतवो पूजण जाय, म्हारा मारू जी
सतवों पूजण जाय।
आठवों मासज लागियोस कोई अठमासो पूजण जाय जो ॥ अलबेलो०
जो पूरा मासज लागियास जी होलर शब्द सुणायो जी ॥
जी केसर प्यावो रग घटाओ दोय दोय पड़दा द्यो जो हसकर बोलो,
ठिमक चालो।
जरा घूँघट खोलो ए अलबेली म्हारी जच्चा सुवरण के प्याल केसर
घोलस्यां ॥

1 पूरा गीत — देखिये राजस्थानी लोक-गीत, खण्ड 2, पृष्ठ 19

इसी प्रकार के अनेक गीत हैं जिनमें सांस्कृतिक भावनाओं के अतिरिक्त सम्मानित परिवार के पारस्परिक प्रेम और समस्त परिवार की गर्भवती स्त्री के प्रति संवेदना की सुन्दर व्यंजना हुई है।

2 *प्रसव सम्बन्धी गीत* :—*शिशु जन्म के समय गर्भवती स्त्री के लिए पीर चलने का अवसर महान् संकट का होता है*—तत्सम्बन्धी गीतों में जच्चा की करुण स्थिति का मर्मस्पर्शी चित्रण रहता है। इन गीतों को 'आपा' 'साहर' अथवा माहिना कहते हैं :—

"टस-मस दूख छ पेट जी ओ राजना कमर में चीसा चाल।
अलबेली कमर में चीस चाल, दाई माई न वेग बुलाय जी ओ राज।'

× × × ×

'सुसरा सा न वेग बुलाय, हताया सूं, यूं म्हारे चाल कमर में पीड अब नहि जीऊंगी।
म्हारा सासूजी न वेग बुलाय, रसोया सूं, यू म्हारे चाल कमर में पीड अब नहि जीऊंगी॥

इसी प्रकार जेठ जिठानी, देवर-द्यारानी आदि समस्त पारिवारिक जनों को याद करती हुई प्रसूता की मनः स्थिति का करुण चित्र इस गीत में मिलता है।

पुत्र जन्म पर भारतीय परिवारों में विशेष हर्षोल्लास मनाया जाता है—शिशु जन्म पर गाये जाने वाले गीत विविध प्रसंगानुसार अनेक प्रकार के होते हैं—थाल बजाने के गीत नाल कटाई का गीत, प्रसूता को जो अनेक प्रकार के मेवा मसाले पाग पजीरी बना-बना कर दिये जाते हैं उन पर अलग अलग मसालों मेवों पर गीत रचे गये हैं—सूंठ अजवाइन गूंद, पीपली पजारी और चरुए का पानी[1] आदि पर अनेकों गीत हैं फिर *चीरणटिया*[2] *पीला*[3] *झूभरणा* पालना घूघरी[4] और जलवा[5] आदि प्रथाओं के नाम पर गीत बन गये हैं। छटी बाहर के दिन सूर्य पूजा होती है—उस पर गीत है—नामकरण संस्कार को स्मूठन कहते हैं इस दिन जच्चा को स्नान कराने का गीत है।

---

1 पुत्र जन्म पर सब प्रथम जच्चा की सास उसके लिये सोंठ अजवाइन व पान आदि डाल कर पानी पका कर देती है उसे चरुआ चढ़ाना बोलते हैं।
2 चीरणटिया—जच्चा के ओढ़ने का ओढ़ना विशेष।
3 पीलो अथवा पीलिया—नाम करण के दिन पाटे से सुसज्जित पीले रंग का ओढ़ना जच्चा के पीयर से आता है
4 घूघरी—नामकरण के दिन गेहूं की घूघरी घर घर बांटी जाती है।
5 जलवा—कुआ पूजना।
6 देखिये सब प्रकार के गान—राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2

पुत्र जन्म के अवसर पर सारा अयाग्रा के परिवार व सन्स्या वा नग न्यि जान हैं—प्राय सभी गीतो म इन नगो का वर्णन रहता है —

हुए अयोध्या मे राम रानी कौशल्या से ।
दयौरागी आव दिवला जलाव दिवला जलाई नेग माग कौशल्या से ।
जिठानी आव पलग बिछाव पलग बिछाई नेग माँग कौशल्या से ।
सास मो आव सरुआ चढ़ाव सरुआ चढ़ाई नेग माँग कौशल्या से ।
नणदल आव सतिये धराव सतिये धराई नेग माँग कौशल्या से ।
देवर आव बाहर निकाले बाहर निकलाई नेग माँग रानी कौशल्या से ।
पंडित आव नाम धराव नाम धराई नेग माँग रानी कौशल्या से ।

हालरा पुत्र जन्म क प्रतिनिधि गीत हैं इन का एक नमूना न्यिा जाता है —

रग महल बिच जच्चा होलर जायो जी ।
रग महल बिच जच्चा होलर जायो जी, सोने का थाल बजायो जी ।
थारी सासूजी बजायो, अलबेली जच्चा मारूजी बुलाव थारा हरख कराव ए ॥
आडा तो टेढ़ा थारे परदा लगाव थारे होलर न हुलराय
अलबेली जच्चा ए मारूजी बुलाव जी राज ।
मायें परदा मे थान मैमद ल्याव ए माय परदा न थान रलडो घडाव ए
भटणा री मौज थारो मन भरियो लगाव, थारो मन भरियो लगाव ।
अलबेली जच्चा ए०

जापे क गीता का कोई ओर छोर नहीं—ऊपर वर्णित गीतो क अतिरिक्त भी धनका नामा के गीत होत हैं— काठलो टोपी सतिय रखन का दूध पीने का विहाई और सारी प्राप्ति । विहाई शीर्षक गीत प्रचुर सख्या म प्रचलित है—एक नमूना है —

जलमियो ए जच्चा लाडण पूत बन्न बधायो तेरे सुसरा को जी ।
सासू जी ओ म्हार ओ म्हारे बरड आव, मिन्दर दिवलो म्हार जोड़यो ।
मिन्दर दिवलो म्हारे सासूजी जोव बाई न भट दे बुलाइयो ।
बाई तो माई म्हारे पोल पहेटी होलर सबद सुनाइयो ।
सोहन कुण्ड म गगा जल पानी होलर ऊबट न्हवाइयो ।
म्हारे हिये भीतर हरख उपज्यो जद सासूजी बुलाइयो ॥1॥
बाईजी थो म्हारो सुसरो जी बुलाय आंगण म्हारे जात करम कर जो ।
जात करम म्हारे सुसरो जी करसी पढ़िया बिपर बुलाय जी ।
इन न गऊ दान देस्यां और निमल धोतिया एक रुपयो वाके हाथ ।
देस्यां श्री लाडू खांड का । म्हारे हिये भीतर हरख उपज्यो ।
जद म्हें सुसरो जी बुलाइया । म्हारे कुल को माण्डण पूत ॥2॥

बाईजी थो थारो वीरोजी बुलाय धण ज्यू धण विलस सायब धाप कोजी।
धन विलसो जो साजो हरजी मलजी रा पूत इब थारो पूरी छ मनरली जो
थार मनमन जी सायब मोत रा होव सूँ थारो रात दुहेलडो जो।
पुण्य करो जो सायबा जलमेगा पूत धन घर आव थार कुल मऊ जो।
साद्यो थे जच्चा कुलको जो हार सरस सुख साद्यो थारी कूँख मे जी॥3॥

3 जडूले उतरवाने के गीत—नमूना है —

तोहे चन्दा कहू या लाल या मेरा सांवरिया,
दूर खेलण मत जइये मेरे ललना तेरे सर पे जडूले बास मेरे सांवरिया।
चन्दा खेलण को मागे मेरे ललना, चन्दा बसे आकाश, मेरे सांवरिया।
दादो जो की गोदो को मे खेल मेरा ललना, भाई को गोद मे खेल मेरा
ललना दोड काचोजो की गोदी मे, मेरे सांवरिया ॥ तोहे०

जडूल के अवसर पर जिस देवता के नाम पर जडूल बाने हुए हो[1] विशेष कर उस
मे एव अन्य देवी देवताओ तथा लोक नायकों के गीत गाये जाते हैं और उनके अतिरिक्त
जन्म के अवसर के गीत भी गाये जाते हैं।

4 कर्ण छेदन सस्कार–भारत के कुछ प्रान्तो म बडे आडम्बर से मनाया जाता
है परन्तु राजस्थान मे इसका विशेष महत्त्व नही है। किसी भी शुभ तिथि को बालक
के कान छिदवा दिये जाते हैं छेदने वाले बालक को नेग देकर प्रसाद बाँटते हैं और
स्त्रियाँ गीत गाकर आनन्द मनाती है। इस अवसर के कुछ गीत विशेष हैं—जिनम
बाली बनवाने हँस हस कर पहनाने आदि का उल्लेख रहता है—इनके अतिरिक्त
बिहाइयां बधावे आदि जन्मोत्सव के गीत अथवा बन्ने गा लिये जाते हैं।

एक गीत है —

"मथुरा नगरी जाना बाबा पीला सा सोना लाना,
पीला-सा सोना, उजले से मोती, ये लालाजी के सोहले
इक सोने की बाली बनवाना, लाला के कान छिदाइये।"

5 यज्ञोपवीत सस्कार के गीत—प्राचीन काल म इस सस्कार का जीवन म
बडा महत्त्व माना जाता था। विद्यार्थी गुरु के पास आश्रम म रह कर विद्याध्ययन तथा
वेद पाठ करते थे। गुरु के पास भेजने से पूर्व अपने अपने वर्ण के विधान अनुसार
आठवें, दसवें अथवा बारहवे वर्ष म बालक का यज्ञोपवीत सस्कार होता था। इसका
तात्पर्य यह था कि यज्ञोपवीत (जनेऊ) के सूत्र से प्रतिज्ञा बद्ध होकर बालक निश्चन्त
चित्त से स्वाध्याय करने म समर्थ होता था।

---

1 स्त्रियाँ बालक के लिये मगल कामना हेतु कुछ अवधि बाद जडूला उतरवाने के लिये
बालाजी भैरू जी रामदेवा जी माताजी अथवा जूझारजी के नाम स जडूला बोल
देती हैं और समय आने पर उसी देवता के मन्दिर म जाकर जडूला उतरवाती हैं।

आधुनिक जीवन म इन सस्कारा की मान्यता न रहने का परिणाम साक्षात दृष्टि आ रहा है—विद्यार्थी वग की उच्छृखलता, उद्दण्डता और अनुशासित जीवन का प्रभाव। सुसस्कृत जीवन म निरकुशता का विकास नही हो पाता, तभी मनुष्य समयानुसार जीवन की साधनाएँ सम्पन्न कर के सम्पूर्ण भावी जीवन के लिय सुदृढ नीव तयार करने म समथ होता है। सस्कारा की मान्यता न रहने के साथ-साथ भारतीय समाज स आश्रम व्यवस्था भी लुप्त हो गई। अतएव जीवन के प्रथम 25 वर्षों म भी विद्याध्ययन म चित्त की एकाग्रता के स्थान पर सिनमा, सिगरेट, सुरा-पान आदि विषयभोगा की ओर लालायित हुई युवा पीढी जीवन नष्ट करने को अभिमुख हा जाती है।

राजस्थान म यज्ञोपवीत सम्बन्धी गीत जनऊ, 'जनाई और 'पाटक की डोरी आदि नामा से गाये जाते है जिनम प्रमुख विषय है—पचढोलिया, भिक्षा और दीक्षा के गीत। किसी गीत म बालक पढने जान का आग्रह करता है मॉ बहनो के सूत कात कर जनेऊ तयार करने का उल्लेख है तो कही बालक के विद्या पढन हेतु काशी जाते उसे मॉ बहना द्वारा मोहवश रोकन का आग्रह है। इनके अतिरिक्त विवाह के अवसर पर गाय जान वाले बनड आदि गीत भी गाये जाते है।

पच ढोलिया' के पॉच गीत दवी देवताओ के है जो विवाह के अवसर पर भी गाय जाते है।[1] य है —

1 महासती माताजी का गीत (कुलदवी से सम्बन्धित)।
2 मावडिया अथवा मातृकाओ का गीत।
3 भरूजी का गीत।
4 पितरा का गीत।
5 अवसर क लिये मगल कामना पूर्ण गीत।

सन्मतिया के गीता म उनके शृगार का चित्रण है—इन सतिया के चरित्र स पातिव्रत का आदश उपस्थित होता है।

उत्तर प्रदेश क भोजपुरी गीता म यज्ञोपवीत सम्बन्धी गीता म अत्यधिक वविध्य है। वहाँ यह सस्कार पूर्ण विधि विधान से होता है और उसम विहित कृत्या के प्रत्येक भाव की अभिव्यक्ति अलग अलग गीता म हुई है, जसे पिता द्वारा तयारी म पलाश दण्ड लाना ब्रह्मचारी की भिक्षा याचना पुत्र के जनेऊ हतु माता की आडम्बर पूर्ण तयारी आदि। राजस्थानी लोक-गीता म यद्यपि इस सस्कार का इतना विशाल रूप दृष्टि नही आता—फिर भी भिक्षा-दीक्षा व सूत कात कर जनेऊ तयार करने आदि के कुछ गीता म सुदर सास्कृतिक अभिव्यक्ति हुई है। कुछ नमूने है—

1 देखिये पुष्करणा के सामाजिक गीत

(1)

"गले जनेऊ मूंज की डोरी, मेलो दादा सा भिक्षा हमारी।
भिक्षा भिखारी ने सोव रे लाला थूं म्हारे घर को दिवलो रे लाला॥

इसी प्रकार परिवार के सदस्यों के नाम ले ले कर गीत आगे बढता है।

(2)

"हाथा छल्ली हीरा जड़ी जी मूंदड़ी,
भँवरयो जाय बठयो दादा सा री गोद मे जी।
दादोजी म्हा न सोना री जनेऊ री हौंस घणी जी
लका गढ़ रो सोनो मँगास्या,
म्हाका कँवरान जनेव दिलास्यां जी। हाथा०

(3)

"हँस खेल लाडू जीम रे दादिया रा प्यारा,
थान जनेऊ लिवस्या जी।

यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्यारम्भ का मुहूर्त होता है इस अवसर पर पाटी पुजवाकर मगल गान करते हैं—सामान्यत विवाह पर गाये जाने वाले बन गीत है—कोई-कोई गीत विद्यारम्भ के भाव की व्यजना वाले हैं जैसे —

"मेरो पढने को जावेगो लाल, पडित बन आओ जी।
पाँच बरस को हो गयो लाल कृपा करो किरपाल
मेरो पडित बुलवाओ, पाटी पुजाओ
कुछ दक्षिणा देऊं हाल। मेरे०

6 विवाह सम्बन्धी गीत—विवाह सम्बन्धी गीत तीन प्रकार के होते हैं—विवाह की प्रथाएँ 7 दिन पूर्व आरम्भ हो जाती हैं उस समय गणेशजी की स्थापना के पश्चात् तल हल्दी, उबटन आदि चढना भात न्यौतना और रातिजगा आदि आदि अनेकों मांगलिक कृत्य पाणिग्रहण सस्कार तक नित्य प्रति होते रहते हैं— इन सब प्रथाओं सम्बन्धी गीत कन्या व वर पक्ष के सामान्य होते हैं। शेष गीत विषय भेद से दोनों पक्षों के अलग अलग होते हैं।

विवाह के मुख्य सस्कार की समस्त विधि कन्या पक्ष के स्थान पर सम्पन्न होती है, अत कन्या पक्ष के गीतों म अपेक्षाकृत वविध्य अधिक है।

भारतीय परिवार म विवाह जीवन म सर्वाधिक हर्षोल्लास का अवसर माना जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोरजनों में घर के सभी स्त्री पुरुषों के मन का उत्साह प्रकट होता है। स्त्रियों के मन की उमगें विशेष कर गा-गाकर व्यक्त होती हैं। ढोलक मजीरे और भाभनों की सगत म अनेक प्रकार के गीत गा-गा कर वे घर को रगशाला

बना देती हैं। राजस्थान में विवाहोत्सव की धूम का निराला ही रंग है। यहाँ 10 दिन पूर्व में विनायक की स्थापना करके रंग बिरंगे गाढ़े बनारस के वस्त्र और भारी भारी सोने चाँदी के आभूषणों से सुसज्जित महिलाएँ दिन रात उमंग पूर्वक गीत गा-गा कर सारे वातावरण को रंगीला कर देती हैं।

(क) सामान्य गीत—सर्व प्रथम विवाह में विनायक (गणेशजी) की स्थापना होती है अतः विनायक, विन्नायक और गणेशजी और चमक दीया आदि गीत गाये जाते हैं। रातिजगा में भी ये गीत होते हैं। अन्य सामान्य रस्मों सगन टीका तेल और सगाई के गीत हैं—बनोला बनड़ा-बनड़ी तेल पीठी, पीठलड़ी उबटन हल्दी महन्दी तोरण-तोल, भात मायरा बीरा, चूनड़ी भात न्योतना और रोड़ी पूजने के गीत। कुछ ऐतिहासिक गीत काछवा और घोड़णी एवं भटमल माधर आदि भी रातिजगे में गाये जाते हैं। रातिजगे में अन्य देवी-देवताओं के अतिरिक्त महामाया के गीत, पितरों के गीत झालर आरती साभा एवं तुलसी और दातुन गीत गाये जाते हैं।

वस्तुतः विवाह के गानों के अनन्त प्रकार हैं और असंख्य संख्या। जन्मोत्सव पर गाये जाने वाली मोहरें, हालरे विदाई, बधाव तथा जच्चाओं से भी कहीं अधिक राजस्थान में विवाह सम्बन्धी गीतों के प्रकार और संख्या है। इन गीतों में राजस्थान की निरक्षर नारी के हृदय का रंगीला छबीलापन और उसका काव्य प्रेम प्रकट होता है। इन मंगलगानों में भारतीय संस्कृति की छाया दर्शनीय है।

ऊपर वर्णित सभी गीतों में वर-कन्या के लिये मंगल कामना के साथ-साथ सभी सम्बन्धियों के नाम ले-लेकर लाड़-चाव और भावी सुख समृद्धि की वांछा पाई जाती है। तथा गीतों के विषय का उल्लेख रहता है।[1] कुछ प्रतिनिधि गीत हैं—

नोता गीत—"पान सुपारी और पान का बीड़ा, तुम वई देवता नोतो लेवो।
मल बेगा आइयो।
थारे घर सेवक को ब्याव, तो सरचन बरचन आइयो।
पान सुपारी और पान का बीड़ा तुम गणपत जी नोतो लेवो।
मल बेगा आइयो॥"

आरती—मिंदर मे देवी देवता जागिया, जागो जागो देवन के देव कि झालर बाजो राजा राम की।
महलन मे पुरोहित जागियो जागो-जागो पुरोहित का पूत कि झालर०

---

1 इन सब प्रकार के गीतों के नमूने देखिये लेखिका के राजस्थानी लोक-गीत खण्ड 2 में

तेल— 'सुन सुन रे जोधा रा तेली,
घाणी पीलो केसर न कस्तूरी माय डालो, जायफल ने जावत्री।
श्रो तेल नवल बनी[1] रे श्रग चढ़सी।
दमडा थारा मामी सा भर देसी तेलो वा माताजी कर लेसी।
कोड थारा मामी सा कर लेसी, श्रो तेल नवल बनी रे श्रग चढ़सी।"

पीठी— सुहाग मांगण गई अपणे माताजी के पास,
माताजी देवो नी सुहाग, भोली बनडी ने सुहाग।
पर मैं न जानू यह रग कसे हो के लागा।
लाल पीली होकर लागा, हरियाली मेंदी होवे लागी। पर मैं न जानू०

लाल-पीले रग एव हल्दी कुमकुम मेंहदी आदि मागलिक द्रव्यो का प्रयोग और चौक पूजा आदि भारतीय सस्कृति के अभिन्न अग हैं—विवाहादि मागलिक अवसरो म इन सब के कारण विशेष रगीलापन और काव्यमयता की सृष्टि होती है।

बनौला—आज बनौलो करे न्यौत्यो।
आज बनौलो मारू रा श्रोजी रे न्यौत्यो।
मारू रा श्रो जी न भौर्यो भावनिश्चा छ मार।
जीम म्हारो बनडा, घी गुड लापसी।
पीय म्हारो बनडो, भसडिया रो दूध।
मांय पतासा घोल्या, बनो म्हारा राय चम्पे रो फूल।
बनडी म्हारी केसूं कामठो।

मायरा—मायरा अर्थात् भात भरना भारतीय सस्कृति की महत्वपूर्ण प्रथा है। कन्या अथवा पुत्र के विवाह पर बहिन अपने भाई को न्योतने जाता है पान सुपारी और पान का बीडा लेकर भाई अपनी सामर्थ्य अनुसार बहिन के लिये चूंदड वर कन्या के लिय वस्त्राभूषण तथा बहिन के परिवार क सदस्यो क लिये भी जोडे आदि लेकर आता है। इन भात के गीतो म भाई-बहिन के पावन प्रम के ममस्पर्शी चित्र मिलत है। जिन स्त्रियो के भाई नही होते ऐसे अवसरो पर उनके हृदय अति व्यथित होते है।

भात न्योतने के गीत के बोल हैं —
"धान सुपारी पान रो बिडलो मै तन रे वीरा नूतण आई।
राजन सायीडा थारन माई नूतण लागो"

पूजार्थ प्रयोग म आने वाले मागलिक पदार्थों को लेकर न्योतन आने की भावना कितनी पवित्र है।

---

1 बने के तेल चढाते समय बनी के स्थान पर बन कह दिया जाता है।

मायरा—"बीरोजी आइजो भावज लाइजो, सरदार भांजा साथ लाइजो जी।
रिमझिम करता आइजो, म्हारे रखडी रतन जडाइजो जी।
बीरा चुडलो हसलो लाइजो, म्हारी तिलडी पाट पोवाइजो जी।
बीरा रिमझिम करता आई जो।'

इसी प्रकार भाई भतीजा के नाम ले-ले कर चुडला, हसली टीका आदि अनेक आभूषणों का उल्लेख करती हैं।

भाई के मन की उमंगों का दिग्दर्शन भी 'बीरा' गीत के बोलों में होता है। भात लेकर भाई बैलगाडी में जा रहा है बहिन के पास पहुचने की मन में उतावली देखिये—

'गाडी तो रह घालो ओ रन मे बीरा हो रही गगना गोट।
घालो म्हारा बलदा उतावला रे म्हारी जामण जोव बाट॥
माथा ने भूँवर घडाय ओ बीरा रखडी रतन जडाय।
काना ने झाला घडाय ओ रे बीरा झूटणा झोल बिराय।
मुखडा ने वेसर घडायजो बीरा रे मोतीडा फेर गवाय।
हिवडा ने हास घडाय ओरे बीरा तमण्यो पाट पुराय।
घालो म्हारा बल्या उतावला रे म्हारी जामण जाइ जोव बाट।
बजवां पां का घडयो चुडलो रे म्हारा भतीजा था झुगल्या टोप।

भाई बहिन के पुनीत प्रेम का आन्तरिक हिलोर जो भात के गीतों में उच्छ्वसित है और कहाँ मिलेगी? एक गीत में भात न्योतन का निमन्त्रण पीवे के साथ भेजती हुई बहिन की आत्मा में छलछलाता हुआ प्रेम नारी परिवार के प्रेम का उच्चतम आदर्श उपस्थित करता है —

"उड बायउडा म्हारा पीयर जा नूतं पियरे रा मातवी ज।
मत न्यूतो रे म्हारो जलवलजामी बाप, राता देई म्हारी माय न।
मत न्यूतो रे म्हारा कान्ह कँवर सा बीर,
भणा भतीजा मावजो न।
भारत बीरा भावज न ओढाय, म्हाने घणा मोलारी चूंनडी ज।[1]

(ख) कन्या पक्ष के विवाह सम्बन्धी गीत —कन्या के विवाह में गाये जाने वाले प्रमुख गीत सामान्य रूप से सुहाग अथवा बनडी नाम से अभिहित होते हैं परन्तु राजस्थान में विभिन्न प्रथाओं से सम्बन्धित विविध गीतों के नाम निराले से भावपूर्ण और सांस्कृतिक अभिव्यंजना युक्त रखे गये हैं जैसे—तारण सामेला कामण जनो कु वरकलवा तालाटा हथलेवो चवरी फेरा सरिया रो घरम जान जिमावण

1 पूरा गीत देखिये—राजस्थानी लोक-गीत पृष्ठ 72

रा गीत मीठण पावणो तम्बोलन, काकणु डोरडी माजन बधावा जुआ जुई हथाली कोयल आलूँ विदायी मोजनिया, बालावणी वाटी का गीत भलमल और भमर दीया, जँवाई नणदोई, जीजाजी एव वायरो आदि।

इन गीतो म यहाँ की सस्कृति और सामाजिक भावनाओ की सुदर यजना हुई है। किसी गीत म कन्या अपने बाबा बावुन आदि स विनय करती है ऐसा वर खोजना बसा नहीं कही सखिया को विवाहित देख कर अपना विवाह कराने का चाव यक्त हुआ है। एक गीत म कहा है—

बाबा मत देइस मारवा वर कु वारी रहेस,

हाथ कचोलड, सिर घडो सीचतीय मरेस।"[1]

भारतीय समाज म कन्या का बाप सदव वर पक्ष से अपने को छोटा समझता है यही भाव यत्र तत्र गीतो म व्यक्त हुए हैं —

"दोनों समधी बठया सखत बिछाय,

कोई कुण हारयो कुण जीत्यो जी।

हारयो हारयो राज कुँवरी रो बाप, थण गोरी याद रहे।"

तोरण और सामेला गीत बारात की अगवानी और तोरण के समय गाये जाते है। समेला का अथ है सम्मेलन दोनो पक्षो का सम्मेलन कराने हेतु जनवासे म बुलाने जाते हैं—पुरोहित मन्त्रोच्चारण के साथ सम्मेलन कराता है—स्त्रिया गीत गाती है —

हालो बन्ना हालो जी तोरण वाला तोरण छडी लगावो जी राज।

हालो बन्ना हालो सहेला वाला सहेले मे सब रग ल्यास्यां जी राज।

हालो बन्ना हालो नी मायां[2] वाला माया म मगल गास्यां जी राज।

कन्या की माता या भाभी वर माला के समय द्वार पर आरता उतारती है उस समय वर के गुणो का वणन करती हुई सहेलिया बींद की घिवशी गीत गाती है। फिर 'कामण' । कामण गीत म वर कन्या को भगवान् विष्णु व लक्ष्मी और कृष्ण राधा का स्वरूप देकर वणन करते है। भाव यह रहता है कि अपने प्रेम के बल से कन्या वर को वश म रखे। कुछ कामण गीतो मे बारातियो का उपहास रूप हास्य विनोद भी हो होता है।

मण्डप म ले जाने से पूव वर कन्या के हाथ महदी से जोडते है इसे हथलेवा कहते है—इस समय का गीत है—

---

1 ढोला मारू रा दूहा पृष्ठ 220

2 मायां—विनायक स्थापना के स्थान को मायां बोलते हैं—वहाँ बने बनडी को मत्था टकने के लिय ले जाते हैं।

हाथ जदो म्हारो सदा सहेली राज कहेली,
ज्यूँ हथलेवो जुड।
हाथ नइ देऊँ म्हारा सतगुरु जोसी राज,
बाबो सा ओ देख ज्यारां री लाडसर धीयां लाज ॥

इस प्रकार भारतीय कन्या की स्वाभाविक लज्जाशीलता का भव्य परिचय मिलता है। चँवरी मण्डप का नाम है, चँवरी फेरा' और 'सरिया रो करम गीता म मण्डप का व समस्त पाणिग्रहण प्रक्रिया का वणन हाता है। सलाक बनडे स विनाद करती हुई स्त्रियाँ कहलवाती हैं और हियाली का अथ पूछती है—कगना खिलाने का गीत है—कांकड डारडी और जुआ जुई। जान जीमते समय गान क गीत हैं—कुँवर कलवा जलो सीठणा पावणो तम्बोलन, तालोटा और साजन मधावा।[1] इन गीता म बारातिया से हास्य विनोद की अभिव्यक्ति हुई है। महिलाएँ उलाहना की बौछार करके बन्न को कुँवर कलवा कराती हैं और वर के साथ आन वाल बारातिया का अनक प्रकार क उपालम्भ देती है जसे—

'कुँवर कलेवो लाडो जीम न आण ए।
तेडो बाबाजो न जीमण बताव ए। कुँवर०'

× × × ×

'थे तो डरानी आव जी सगा, हेमसिंह जी उमराव
आज करो नी थारो घणा मोटो अवसाण।''

तम्बोलन गीत म व्यंगपूर्ण ढग स चित्त शुद्धि का उपदेश करत हुए भगवान् क अवतार तथा पौराणिक पुरुषा का गुणगान है और भगवान के शृंगार एव भोग प्रसाद आदि का आलकारिक वणन है। शेष गीत ओलूँ कायल विदायी बोलावणी मीजलिया, चोटी का गीत झनमल और भमक दीया कन्या की विदा के समय गान क गीत हैं।

भारतवष म कन्या क विवाह म विदा का दृश्य बड़ा मार्मिक हाता है। विश्ववन्द्य कवि कालिदास न शकुन्तला की विदा क समय वीतराग त्यागी महर्षि कण्व को भी रुला कर जो करुण रस की निष्पत्ति की थी वसे ही मार्मिक चित्र राजस्थान की कन्या क विदाई गीता आल्यू व कोयल आदि म मिलत है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का रचना वैशिष्ट्य, सूक्ष्म भावविश्लेषण एव परिमार्जित भाषा के बिना भी इन लोक गीता म प्रकृत भावा क उद्दीपन द्वारा हृदय म करुण रस की निर्भरिणी प्रवाहित हो जाती है।

एक गीत म विदा हाती हुई कन्या को वन खण्ड की कोयल कह कर भव्य कल्पना और सौन्दर्यमयी भावना व्यक्त की है—

---

1 ये सभी गीत राजस्थानी लोक गीत खण्ड 2 म दिये हुए हैं।

रा गीत मीरण पावणो तम्बोलन काकणू डारडी माजन बधावो जुआ जुई हथाली कोयल, ओलूँ विदायी मोजलिया, बोलावणी चोटी का गीत, भलमल और भमर दीया जँवाई नणन्दोई जीजाजी एव वायरो आदि।

इन गीता म यहाँ की सस्कृति और सामाजिक भावनाओ की सुन्दर व्यजना हुई है। किसी गीत म कन्या अपने बाबा, बाबुल आदि से विनय करती है ऐसा वर खोजना वहा नहीं कहीं सखिया को विवाहित देख कर अपना विवाह कराने का चाव व्यक्त हुआ है। एक गीत म कहा है—

> बाबा मत देइस मारवा वर कुँवारी रहेस,
>
> हाथ कचोलड, सिर घडो सीचतीय मरेस।"[1]

भारतीय समाज मे कन्या का बाप सदव वर पक्ष से अपने को छोटा समझता है यही भाव यत्र तत्र गानो म व्यक्त हुए हैं —

> 'दोनों समधी बठया तखत बिछाय,
>
> कोई कुण हारयो कुण जीत्यो जी।
>
> हारयो हारयो राज कुँवरी रो बाप, धण गोरी पाछ रह्े।"

तोरण और सामला गीत बारात का अगवानी और तोरण क समय गाय जाते हैं। समला का अथ है सम्मनन दोना पक्षा का सम्मलन कराने हेतु जनवास म बुलाने जाते हैं—पुरोहित मन्त्रोच्चारण के साथ सम्मलन करता है—स्त्रिया गीत गाती हैं —

> हालो बन्ना हालो जी तोरण वाला, तोरण छडी लगावो जी राज।
>
> हालो बन्ना हालो सहेला वाला सहेले मे सब रग रयास्यां जी राज।
>
> हालो बन्ना हालो नी माया[2] वाला मायां मे मगल गास्यां जी राज।

कन्या की माता या भाभी वर माला के समय द्वार पर आरता उतारती है उस समय वर के गुणा का वणन करती हुई सहेलियाँ बीद की धिरकी गीत गाती है। फिर कामण। कामण गीत म वर कन्या को भगवान् विष्णु व लक्ष्मी और कृष्ण राधा का स्वरूप देकर वणन करते है। भाव यह रहता है कि अपने प्रम के बल म कन्या वर को वश म रखे। कुछ कामण गीना म बारातिया का उपहास रूप हास्य विनोद भी हो होना है।

मण्डप म ले जाने स पूव वर कन्या के हाथ मेहन्दी से जोडते है इसे हथलेवा कहते है—इस समय का गीत है—

---

1 ढाला मारू रा दूहा पृष्ठ 220

2 मायाँ—विनायक स्थापना के स्थान को माया बोलते हैं—वहाँ बन्ना-बनडी को मत्था टकने के लिय ले जाते हैं।

हाथ जदो म्हारी सदा सहेनी, राज म्हेली,
ज्यूं हथलेवो जुड़।
हाथ नह देऊं म्हारा सतगुरु जोमो राज,
बाबो सा ओ देल ज्यारों री लाडसर धीयाँ लाज ॥

इस प्रकार भारतीय कन्या की स्वाभाविक लज्जाशीलता का भव्य परिचय मिलता है। चवरा मण्डप का नाम है चवरी 'फेरा,' और 'सरिया रा करम गीत' में मण्डप का व सम्पन्न पाणिग्रहण प्रक्रिया का वर्णन होता है। सनाव बनड़े में विनोद करती हुई स्त्रियाँ कहलवाती हैं और 'हियाली' का अर्थ पूछता है—यगना जिनने का गीत है—कांवड़, डारडी और जुआ जुड़। जान जीमन समय गाने के गीत हैं—कुंवर कलवा भलो सीठणा पावणा, तम्बालन, तालोटा और साजन बधावा।[1] इन गीतों में बारातियों से हास्य विनोद की अभिव्यक्ति हुई है। महिलाएँ उलाहना की बौछार करते वक्त को कुंवर कनेवा कराती हैं और वर के साथ आने वाले बारातियों का अनेक प्रकार के उपालम्भ देती हैं जैसे—

'कुंवर कलेवो लाडो जीम न जाए ए।
थैरो बाबाजी न जीमज बताव ए। कुंवर०'

×   ×   ×

'के तो हरानी प्राव जी सगा, हेमसिंह जी उमराव
प्राज करो नी थारी घणा मोटो मवसाण।'

तम्बोलन गीत में व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्त शुद्धि का उपदेश करते हुए भगवान् श्रृंगार तथा पौराणिक पुरुषों का गुणगान है और भगवान् के श्रृंगार एवं भोग सामग्री का आलंकारिक वर्णन है। नप गान भोलू कायल विन्दायी बोलावणी वर्णिता चोटी का गीत अनमल और असम दीया कन्या की विदा के समय गाते हैं।

भारतवर्ष में कन्या के विवाह में विदा का दृश्य बड़ा मार्मिक होता है। विश्ववन्द्य कवि कालिदास ने शकुन्तला की विदा के समय वीतराग त्यागी महर्षि कण्व से भी दना कर जो करुण रस की निष्पत्ति की थी बस ही मार्मिक चित्र राजस्थान की कन्या के विवाह गीतों में आयु से कायम आदि में मिलते हैं। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना वन्दिष्य, सूक्ष्म भावविश्लेषण एवं परिमार्जित भाषा के बिना ही इन लोक गीतों में प्रकृत भावों के उद्दीपन द्वारा हृदय में करुण रस की निर्झरिणी प्रवाहित हो जाती है।

एक गीत में विदा होती हुई कन्या को वन सण्ड की कोयल कह कर भव्य कल्पना और सौम्यमयी भावना व्यक्त की है—

---

1 ये सभी गीत राजस्थानी लोक-गान खण्ड 2 में दिये हुए हैं।

"वन खण्ड की ए कोयल वन खण्ड छोड़ कठ चली ।
थारी आले दिवाले गुड़िया धरी, थारी साथ सहेल्यां अरणमरणी ।।
वन खण्ड०
थारी माऊजी थारे बिन अरणमरणा, थारो छोटी बनड रोव एकलडी
वन खण्ड०
थारा वीरोसा फिरे छ उदास बिलखन थारी मावजडी ।। वन खण्ड०

इसी प्रकार के असख्य गीत हैं जिनमे मातृवात्सल्य तथा पारिवारिक स्नेह की यजना द्वारा करुण रस के स्रोत फूटते प्रतीत होते हैं, जिन्हे सुनने वालो का हृदय चीत्कार उठता है —

"आयो परदेसी सुवटो, लेग्यो टोली मे सु टाल,
कँवर बाई सिध चाली ए ।
म्हे थान पूछाँ म्हारी सूरज बाई थो,
इतरो बाबोजी रो लाड छोड़'र बाई सिध चाली थो ।
आयो बागां रो सुवटो, लेग्यो टोली में सु टाल,
कोयलडी जद बोली ए । आयो परदेसी०

विदा के समय बधावे भी गाय जाते हैं । उनमे भी कन्या की विदा का मर्म स्पर्शी चित्रण रहता है साथ ही ससुराल पहुचन पर उसके समस्त परिवार के लिए मगल कामना और सौभाग्य समृद्धि निमित्त आशीषें व्यक्त होती हैं ।[1]

जवाई जीजोजी नणदोई आदि गीत मुकलावे पर गाये जाते हैं । इनमे प्राय साली सलहज की ओर से हास्य विनोद रहता है । कुछ गीत जवाई के लाड प्यार म गाये जाते हैं उन्हे कूकडला सज्ञा दी गई है ।

(ग) वर पक्ष के विदाई सम्बन्धी गीत —वर पक्ष के गीतो मे इतना वविध्य नही पाया जाता । प्रारम्भिक प्रथाओ के सामान्य गीतो और मायरा के अतिरिक्त बनडे घोडी बछेरी सेहरा, टीका आरता, निकासी और बधावे गाये जाते हैं, एव सुहागरात के गीतो म बीदणी की छिकमी विशिष्ट है । बन्ने की पोशाक तयार करने के एक गीत म सूत कात-कात कर वस्त्र बनाने का उल्लेख है—

सोना केरा चरखला हो बना साब रेसम री गज डोर ।
मैला मे बठी कातसू र केसरिया कातु ला भीणो सूत
कात बणाऊ थारो धोतियो, बना सा हाथा रो हरियो रुमाल ।

बनडा गीत के बोल हैं—

घूडला घूमर देस रा थे लाओ जी बना,
बना पान घणी जी रुमा ।

---

1 देखिये राजस्थान के लोक गीत पूर्वार्द्ध गीत सख्या 95 अन्य सब प्रकार के बिदाई गीतो के लिए राजस्थानी लोक गीत खण्ड–2 ।

दरबारां सूं बंगले पधारो जी बना ॥ बना थान०
थारी थानणी मे घास पधारणी जी बना,
करला कजली देस रा थे लाग्रोजी बना करलांरी लूंब बणाग्रो जी बना ॥
धुडला हाथी दात रा लाग्रो जी बना। बना थान०
सालूडा पूरब देस रा ले आग्रो जी बना।
जानीडा थारी ओड रा लाग्रो जी बना,
बनडी आपरी जात री लाग्रो जी बना, बन ने परणी जी लमा।

मेहरा— पूंच लाई मालण स्याम सेवरा।
बिच मोती बिच मोगरो बागां सू मीठा आम अमोरी,
धीरज मोठी हालडली।

बारात चढते समय के कुछ गीत जान भी कहलाते है इनम बनडे के स्वरूप व सजावट का वणन रहता है। एक गीत म बनडे के मन की अभिव्यक्ति है—

'केसरियो घुल-घुल घेर आने म्हारी जानडली लाओ सा पधार।"

वर पक्ष की ओर से कन्या क लिये वरी ले जाने क गीत म हमारे देश की सास्कृतिक भावनाओ की सुन्दर व्यजना है —

' मैंदो मोलो मल जावतरो, तो केसर घुटा बधावो ए,
जान्या में बसदेव जी बडेरा, तो नन्दलाल जी 'वरी' मेलाव ए।"

वधू के आने पर भव्य स्वागत म गाये जाने वाले बधावे के गीतो के नमूने हैं—

''आज दिन सोने का हुआ महाराज, आज दिन सोने का उगा महाराज,
सोने का सब दिन सोने की रात सोने के कलसे भरइये महाराज।
पहला बधाया ससुर घर आया दूजा बधाया जेठ घर आयर,
सासू ने लिया आंचल ओर महाराज ॥' आज०

× × × ×

फूलां भर्‌यो छाबडो रामा, मालण सू लिय आय।
मन्दजी घर बधावन जी, बांधूली बाहरवास।
बधाम्रो दीनानाथरो हरिराम बांधूली बादनवार ॥"

(भावज द्वारा काजल डालना नेग मांगना आरता और सुहागरात क गीत दखिय राजस्थानी लोक-गीत खण्ड—2)

7 अन्त्येष्टि सस्कार के गीत—भारत क अन्य प्रान्तो की भांति राजस्थान म भी मृत्यु क अवसर पर गा गाकर रोने की प्रथा है। गाकर रोना हास्यास्पद-सा प्रतीत होता है परन्तु इन प्रथाओ के गर्भ म झांक कर देखन स काव्य का सौन्दर्य और भावना का समुद्र लहराता मिलेगा। स्त्रियो का हृदय इतना कोमल और अनुभूति इतनी तीव्र होती है कि सुख-दुःख आशा निराशा—प्रत्येक स्थिति म उनक मानस मे कविता की उत्पत्ति और गीत की स्फुरणा अनायास होन लगती है—मृत्यु की हृदय विदारक घटना पर भी उनकी भावना फूट फूट कर कण्ठ से निस्सरित होन लगती है।

डा० सत्येन्द्र ने 'ब्रज लोक साहित्य एक अध्ययन' मे ब्रज मे प्रचलित मृत्यु के गीतो मे रुदन की संगीतात्मकता का उल्लेख किया है और प० रामनरेश त्रिपाठी ने कविता कौमुदी मे गुजरात, महाराष्ट्र और मद्रास के करुण रुदन रूप मे गीतो का वर्णन किया है। विदेशी विद्वानो ने भी मानिंग की व्याख्या करते हुए बताया है कि रो रोकर दु ख प्रगट करने की प्रथा अखिल विश्व मे प्रचलित है।[1]

राजस्थानी लोक-गीतो मे रतन राणो गीत विदेशी एलेजी के समान है। गीत की प्रथम लाइन है —

"म्हारा रतन राणा एकरसो अमराणे घोडो फेर।
अमराणे मे बोल सुआ मोर।' [2]

इस विशिष्ट गीतो के अतिरिक्त राजस्थान मे पूर्ण अवस्था को प्राप्त बडेरा की मृत्यु पर शान्त रसके भजन आदि गाये जाते हैं। इनमे बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा भक्ति के भाव व्यंजित होते है और भगवान् से कामना की जाती है कि दिवगत आत्मा सद्गति को प्राप्त हो। जोधपुर मे इन गीतो को 'पार सज्ञा दी गई है। शरीर से प्राण निकलने पर हरजस गाते हैं जिसमे हर का हिंडोला मुख्य है —

"कठ सूँ आई बडेरो पालकी, कठ सूँ आयो विमाण।
हर को हिंडोलो जी बेटा का जामी सग चालो॥"

पूरे गीत मे मृतक के स्नान शृगार और पालकी मे बिठा कर बेटा पोता और और सगे-सम्बन्धियो द्वारा सजा कर श्मशान ले जाने और स्वर्गारोहण का सुन्दर चित्रण है। मृत्यु के तीसरे दिन अस्थि बीनने गगा जी लेजाकर प्रवाहित करने आदि के गीत पथवारी तथा हर मुरली कहलाते हैं। पथवारी मार्गदर्शी को कहते हैं— इनमे अस्थि ले जाने वाले की रक्षार्थ प्रार्थना की जाती है कि उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

पथवारी माता पथ की ए रानी।
भूखा ने भोजन माता तिसिए ए पाणी।'

लौटने पर गगाजी की महिमा के भजन आदि गाये जाते हैं।

संस्कार सम्बन्धी गीतो मे सर्वाधिक भावो का भण्डार है। क्षण-क्षण के विविध भाव गीतो मे ऐसे कलात्मक ढग से बँध कर घुल मिल गये हैं कि गागर मे सागर की उक्ति इनमे घटित होती है।

---

1 मरिया लीच द्वारा रचित स्टण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर पृष्ठ 755

2 देखिए पूरा गीत—मारवाडी ग्राम गीत पृष्ठ 139–140

राजस्थान के लोक नाट्य

भारतीय नाट्य साहित्य के प्रणेता भरत मुनि ने नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में नाट्य शास्त्र में जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे स्पष्ट है कि नाटक की उत्पत्ति जन-साधारण में हुई थी। उन्होंने नाटक का उद्देश्य बताते हुए लिखा है कि वह सर्वोत्पन्न और लोक हित के लिये ही है। मानव चरित्र का अभिनय जब साक्षात् रूप में रंग मंच पर होता है तो साधारण समझ वाला अशिक्षित मनुष्य भी समझ कर मनोरंजन के साथ इससे शिक्षा ग्रहण कर सकता है। लोक जीवन में पौराणिक और ऐतिहासिक लोक-कथाओं पर आधारित अनेक नाट्य प्रचलित हैं जिनमें से बहुत से प्रेम कथाओं के रूप में रोमांचकारी ढंग से प्रस्तुत हुए हैं और अनेक निर्वेद तथा भक्ति की प्रधानता लिये हुए हैं, और कुछ में प्रेमी मीरा के रूप में नायक-नायिका का चरित्र चित्रित है।

गोपीचन्द, पूरण भगत, राजा भरथरी और नरसी भगत आदि के नाट्य भक्ति प्रधान हैं और सेठ मुनीम, कूने बीर, स्वामी चनी तथा जाट की ख्याल आदि में सामाजिक कथानक हैं। राजा हरिश्चन्द्र, राजा नल-दमयन्ती, रुक्मणी मंगल और पार्वती मंगल पौराणिक गाथाओं के एवं पृथ्वीराज चौहान, हाडी रानी, राजा भोज और अमरसिंह आदि ऐतिहासिक कथाओं पर रचे हुए लोक-नाट्य हैं।

राजस्थानी लोक-नाटकों को ख्याल कहते हैं। यह शब्द खेल से मिलता है। इन खेलों का अभिनय लोक-जीवन में खुले मैदानों में होता है—न रंग मंच की आवश्यकता है न पर्दों आदि की। गाँव का कोई थोड़ा-सा मैदान देखकर तम्बू डाल कर फर्श बिछा दिया जाता है वहा उनका रंग मंच है जिसके चारों ओर दर्शक मण्डली बैठ जाती है। अभिनय के साथ बजने वाले नगाड़े की ध्वनि सुनकर आस-पास के लोग भी इकट्ठे हो जाते हैं।

ये ख्याल आरम्भ से अन्त तक गेय होते हैं। पूरी-पूरी रात बीत जाती है न नाच और गाना बन्द होता है न नगारे की आवाज। लोक-नाट्यों की विशेषता अभिनय में समाई रहती है। आधुनिक नाट्य भाषा की अपेक्षा लोक-नाट्यों में लोक-मानस की तरंगों और मस्ती का द्योतक नाचना कूदना और उछलना अधिक रहता

है। अभिनय के साथ प्रयुक्त होने वाले वाद्य यन्त्र हैं—नगारा नगारी ढोलक और सारंगी। आजकल हारमोनियम का प्रयोग भी होने लगा है। इन लोक-कलाकारों को संगीतात्मक अभिनय के लिये अपेक्षित स्वर-ताल और राग रागनियों का ज्ञान भी रहता है परन्तु सारंगी और नगाड़े की ध्वनि की प्रधानता रहती है। इनके गाने और वाद्य यन्त्र बजाने का ढंग आधुनिक शास्त्रीय संगीत के कलाकारों से निराला होता है। ये इतने ऊंचे स्वर से गाते और डंके की चोट पर नगारा बजाते है कि कोसों दूरी तक शब्द सुनाई देता है और दूर-दूर के रास्ता चलते पथिक ख्याल से आकर्षित होकर देखने आ जाते हैं। ख्यालों के अभिनय में प्रायः माड सोरठ कालिंगड़ा आसावरी विहाग और काफी राग रागनियों का प्रयोग होता है।[1]

राजस्थान के इन ख्यालों के कथानक भी प्रायः पौराणिक गाथाओं, ऐतिहासिक आख्यानों पर आधारित होते हैं और कुछ ख्याल भक्ति-परक शान्त रस से पूर्ण होते है अथवा प्रेम कथाओं से सम्बन्धित आख्यान होते हैं। कुछ ख्यालों में अप्सराओं और परियों का आविर्भाव होता है तो कुछ में जादू टोने का समावेश है।

यद्यपि इन लोक-नाटयों में साहित्यिक गुणों की खोज करना वाछनीय नहीं—इनकी विशेषता तो गाने में और अभिनय में ही है फिर भी कई स्थल कभी कभी साहित्यिक दृष्टि से भी सुन्दर मिलते हैं जिनमें लोक भाषा का माधुर्य समाया हुआ है। राजस्थान का अत्यन्त लोकप्रिय ख्याल है ढोला मारू उसमें इस प्रकार के स्थल अनेकों है—जैसे मरवण के प्रति ढोले की उक्ति है —

'नण निहार जादूगारी, तू है जादूगारी।
आममती की चेली बण तैं सीखी विद्या सारी।
सत सांची जद जाणूं तू कुं मोे उणमादे प्यारी।''

कितनी चमत्कारमयी साहित्यिक भाषा में प्रभावशाली उक्ति है। ढोला मरवण के अतिरिक्त नानू ने और भी कई ख्याल हैं जो राजस्थान में जगह जगह खेले जाते है। कुछ हैं—विराट पर्व पूरण भगत हीर रांझा जगदेव कंकाली और चकवा बेण। इन ख्यालों में नानू राणा ने जगह जगह अपने गुरु के प्रति आस्था प्रकट की है जैसे —

''मुझ कूं मिल्या गुरु हरिदासजी गुण देवा पंडित ज्ञानी।
दास जान के ज्ञान दिया जद आई पिंगल बानी।
घनश्यामदास श्योबक्स राम के चरण मे सुरतो ठानो।
गोमद राम को कहा कहूं, सोभा सारे जग जानो।'

राजस्थान के चिड़ावा की भूमि में जन्मा श्री नानू राणा यहाँ के ख्याल रचयिताओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ख्यालों की दृष्टि से शेखावाटी की भूमि विशेष

1 लोक-कला निबंधावली भाग–1

महत्त्व रखती है। यहाँ पेशवर ख्याल के रचयिता भी हैं जो खिलाडी भी र है और शौकिया भी। प्रसिद्धि प्राप्त ख्याल रचयिता—रामनिमल प्रमसुख भोजक वजी। तनी और प्रहलादीराम पुरोहित यहीं के थ। नानूराम राणा की अपनी पार्टी थी जा जगह जगह प्रदर्शन करती फिरती थी। नानू जाति का मिरासी था—नगारा बजान क कारण य लाग राणा कहलाए। इ ह हि दु शास्त्रा मस्कृति और राजस्थान की प्रचलित ग्राम वार्ताओ का अच्छा ज्ञान था उ ही का प्रयोग कर इ होने ख्याल रच थ।

बजीरा के ख्याला म प्रमुख हैं—माधवानल कामकदला पन्ना वीरमद मालद हाडी रानी, सुलतान निहालदे नरसीजी हरिश्चन्द्र, प्रजमुकुट और पदमावती। ख्याला क सभी रचयिताओ न अपने ख्याला म गुरु के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है। शेखावाटी म प्रमुख रूप स दो दल है—एक नान की परम्परा स दूलिया का और दूसरा जारवल नवलगढ के पास भर राणा का। इन दोनो दलो न पूव परम्परा पर ही ख्याल रचना की है। कुचामणी ख्याल की शली लच्छीराम की चलाई हुई है पर व नृत्य, सगीत पोशाक मच सजावट और अभिनय सभी दृष्टियो स आधुनिक प्रवृत्ति क हैं। पहल कुचामणी नाटककार राजस्थान क लगभग सभी भागो म घूमते थ परन्तु आधुनिकता के प्रभाव से इनका अभिनय जनता का कम पसन्द आन लगा इसलिय घूमना बिल्कुल कम हो गया।

ख्याल खेलने का क्रम इन लोक-कलाकारो का अपना निराला होता है। ख्याल प्रारम्भ करने स पूव सब पात्र रग मच पर एकत्रित होकर गणेश वन्दना एव समान स्वर म स्तुति पाठ क साथ सरस्वती-दुर्गा की पूजा करते हैं। पूजा स्तुति क बाद का प्रारम्भिक कायक्रम भी सब ख्यालो का नियत होता है—सवप्रथम अभिनेता मेहतर के रूप म आकर गायन क साथ सफाई करता है दूसरा भिश्ती बनकर छिडकाव का अभिनय करता है। फिर एक हलकारा आता है तदनन्तर ख्याल का प्रधान नायक प्रवश करक अपना परिचय दता है और नाटक आरम्भ हो जाता है। अभिनयकर्ता स्त्री पुरुष दोनो नर हैं। ख्याल म गद्य वार्तालाप नहीं होता सब पात्रो क वार्तालाप गय होत हैं।

राजस्थान म वीर पूजा की भावना क द्योतक यहाँ के नर सिहो की यश गाथा गाने वाले ख्याल भी प्रचुर सख्या म पाय जाते हैं। इस प्रकार के धाडी वीरा क चरित्र पर बने हुए ख्याला म डुगजी जवारजी दयाराम धाडवी बलजी भूरजी आदि क ख्याल प्रसिद्ध हैं। लोक जीवन म प्रमी वीरा का भी कम सम्मान नहीं है। इस कथाओ म नायक-नायिका का प्रम रोमाचकारी ढग स प्रस्तुत किया गया है। बहुत स ख्याला का कथानक यहाँ की लोक प्रचलित कथाओ पर आधारित होता है जिनम कई पात्र ऐति हासिक भी होत हैं। निसालू बणजारे पनजी सहजादी सौदागर बजीरजादी लैला मजनू, ढोला मरवण, हीर राझा पन्ना वीरमदे सुल्तान निहालदे भाव मानमनी और सीता आवल आदि ख्याला की प्रम कथाएँ हैं जो [illegible] हैं।

इन लोक-नाटयो के प्रदर्शन का मुख्य अवसर होली है परन्तु अन्य उत्सवो के अवसर पर भी ये आयोजित कर लिये जाते हैं। बीकानेर और जोधपुर में हनुमानजी के मंदिरों में हिंडाऊ मेरीका तथा अन्य ख्याल रात रात भर अभिनय के साथ गाये जाते है। विवाहादि उत्सवो पर भी ख्याल मण्डलियो को आमन्त्रित कर लिया जाता है। व्यावसायिक नाट्य मण्डलियां जीविकोपार्जन अथवा मनोरंजन के लिये ख्याल खेलने हेतु इधर उधर गाँव-गाँव में प्रदर्शन करती फिरा करती हैं। प्राचीन काल में जब सिनेमा आदि का प्रचलन नहीं था तब यही नाट्य प्रदर्शन और नाचना कूदना लोक जीवन में मनोरंजन का साधन बने हुए थे।

राजस्थान के दूर-दूर भागो में जहाँ मनोरंजन के आधुनिक साधन चित्रपट आदि नहीं पहुंचे हैं, रंग रास के ये ढंग अब तक सांस्कृतिक और सामाजिक शिक्षा का साधन बने हुए हैं।

राजस्थान के ये नाट्य गीत राज्य के इतिहास के निर्माण में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। 440 वर्षों से अधिक तक की सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराएं ख्यालो ने स्थापित की हैं। यहा के प्राप्य ख्यालो की सूची बीकानेर जोधपुर किशनगढ़, जयपुर बम्बई और मथुरा से प्रकाशित हो चुकी है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने लोक-कला निबंधावली में प्रकाशित अपने एक महत्त्वपूर्ण लेख में इन ख्यालो का विवरण दिया है। लेख का शीर्षक है— ख्यालो की पूर्व परम्परा। श्री नाहटाजी ने अत्यधिक श्रम पूर्वक राजस्थानी ख्यालो की शोध और संकलन का कार्य किया है उनके निजी ग्रन्थालय—अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में 58 ख्याल संग्रहीत हैं। राजस्थान के ख्यालो की संख्या अपरिमित है। जैसलमेर, कलकत्ता और काशी आदि स्थानो से भी यहा के बहुत से ख्याल फुटकर रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। राजस्थान से प्रकाशित शोध सम्बन्धी पत्रिकाओं में भी समय-समय पर ख्याल प्रकाशित होते रहते हैं।

चित्र-पट के अत्यधिक प्रचार से आधुनिक जीवन से लोक नाट्य का प्रचलन और अभिनय लोप होता जा रहा है वस्तुतः मनोरंजन के यही जीवन्त साधन लोक हितकारी और सर्वोदयक हैं जिनमे जन मानस पर कोई दूषित प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं बल्कि लोक-कला की ये उपलब्धियां जन मानस में सांस्कृतिक भावनाओं की सृष्टि करके जीवन को उत्साह एवं उल्लासमयता की ओर अभिमुख करती हैं।

रम्मतें—राजस्थान में लोक नाटयो का एक छोटा रूप रम्मतें है। प्राचीन काल में बीकानेर में जुम्ने वाले कवि समाजो से ही ऐतिहासिक और धार्मिक चरित्रों पर काव्य रचना होने लगी और रंग मंच पर उनका अभिनय होने लगा जो रम्मत कहलाई। राजस्थानी भाषा में रमना शब्द का अर्थ भी खेलना है अतः रमना धातु से संज्ञा रूप में रम्मत बन गया—इसका अर्थ भी ख्याल की भाँति खेल ही है तथा इनकी प्रदर्शन पद्धति भी पीछे वर्णित ख्यालो जैसा है। रम्मतो की रचना के विषय भी वही पौराणिक ऐतिहासिक और प्रेम कथाओं पर आधारित होते हैं। हाँ, शेखावाटी और कुचामणी के ख्यालों से रम्मतो की रचना शैली कुछ भिन्न होती है।

। रम्मत रचना का मुख्य केन्द्र बीकानेर है।

श्री मनीराम व्यास, तुलसीराम, फागू महाराज और सूआ महाराज रम्मतों के प्रमुख रचयिता हैं जिनकी लिखी हुई उल्लेखनीय रम्मतें हैं—हिडाऊ मेरी की रम्मत, अमरसिंह की रम्मत और सगभेरी की रम्मत। अन्य क्षेत्रों में भी कुछ रम्मतें लिखी गईं पर समय के प्रवाह में नाम और रूप में कुछ भेद होता गया जैसे पोकरण और फलौदी में रम्मत के स्थान पर तमाशा बोलने लगे। जैसलमेर के तेज कवि और पोकरण के श्री रामानन्द ने इस प्रकार के कई तमाशों और रम्मतों की रचना की। जैसलमेर में रम्मत प्रचलित हैं—हैं गंगी जवारजी, पूरन भगत, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, गोपीचन्द और अमरसिंह राठौड़।

बीकानेर में रम्मत के खिलाड़ी थे स्व० श्री रामगोपाल मोहता, श्री सईनवक, श्री गंगादास सेवक, श्री सूरजकरण सेवक और श्री जीतमल। रम्मत की संगत में अनन्य नगाड़ा वादकों में श्री गीडाजी का नाम उल्लेखनीय है।

रम्मत में ख्याल की अपेक्षा उल्लेखनीय भेद इतना दृष्टि आता है कि ख्यालों में प्रारम्भ से अन्त तक कथा-सूत्र चलता है, सूत्र की समाप्ति पर ख्याल भी समाप्त हो जाता है, जबकि रम्मतों में विषय भिन्न रहते हैं। ख्यालों में कथानक की प्रधानता रहती है, रम्मतों में नहीं। बीकानेर और जैसलमेर में प्रचुर संख्या में ख्याल और रम्मत लिखी गईं।

पवाड़े—लोक नाट्यों का तीसरा रूप है पवाड़े। पवाड़े एक प्रकार के कथा गीत हैं जिन्हें गा गा कर ख्यालों की भाँति प्राय अभिनय भी किया जाता है। पवाड़ों की कथा-वस्तु सामान्यत ऐतिहासिक होती है, यदि ऐतिहासिक न हो तब भी कथानक का किन्तु सूत्र अवश्य ऐतिहासिक होता है—इनमें किसी वीर का चरित्र रहता है।

भारत की विभिन्न भाषाओं में पवाड़ों के विभिन्न नाम हैं। ब्रजभाषा में पमारा, मालवा तथा राजस्थान में पवाड़ा, उत्तर प्रदेश में पवाड़ा है। महाराष्ट्र में पवाड़ा अथवा पोवाड़ा कहते हैं और गुजरात में 'पवाडो' शब्द का ही प्रयोग है। पंजाबी में पवाड़ा काव्य को 'वार' कहा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वर्तिक' शब्द से मानी जाती है। बंगाली में इस काव्य को गाथा और कथा कहा जाता है। कन्नड़ भाषा में पवाड़े के लिये लावनी का प्रयोग मिलता है। तात्पर्य यह है कि लोक-नाट्यों का यह रूप सभी जगह प्रचलित है, नाम का भेद है। डा० सत्येन्द्र ने अपने शोध ग्रन्थ ब्रजलोक साहित्य एक अध्ययन में लिखा है कि पवाड़े के ये सब पद प्रयोग के आधार पर निकले हुए हैं। इन गानों में पहले पमार क्षत्रियों की वीर गाथाएँ गाई जाती होंगी इसलिये पवार कहलाए[1]।

---

1 ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन—पृ० 368

मरुभारती पत्रिका (अक्तूबर 56) में प्रकाशित श्रीमती उषादेवी मलहोत्रा के लेख में राजस्थानी पवाड़े का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया है —

(1) वीर कथात्मक (2) रोमांच कथात्मक, (.) योग कथात्मक और (4) प्रेम कथात्मक।

प्रथम श्रेणी में पाबूजी और गोगाजी के पवाड़े आते हैं द्वितीय में निहालदे सुलतान का और तृतीय श्रेणी में गोपीचन्द भरथरी आदि का। चतुर्थ श्रेणी में ढोला मारू का पवाड़ा आता है।

पवाड़े की सर्जना का इतिहास इस प्रकार है कि किसी धार्मिक काम के अवसर पर घटित घटना के आधार पर किसी चरित्र को चिरस्मरणीय बनाने के लिये जन-समूह एकत्र हो जाता था। उसके जीवन के इन महत्वपूर्ण अवसरों पर नाचते गाते हुए लोग देवता के समान अमर कृत्यों का काव्य रूप में गूँथना प्रारम्भ कर देते थे—धीरे धीरे एक ऐसे काव्य का निर्माण हो जाता था जिसे पवाड़ा संज्ञा मिली। परन्तु उस आदि युग के मानव के पास लिखने की क्षमता नहीं थी। ये वस्तुतः निरक्षर जनता की सम्पत्ति थी जिसे अपनी स्मरण शक्ति पर विश्वास था अतः ये पवाड़े मौखिक रूप में ही विद्यमान रहते थे। धीरे धीरे वर्णमाला की सृष्टि के साथ-साथ साहित्य की रचना होने पर पवाड़ों पर भी साहित्य का प्रभाव पड़ा और उनके निर्माण में भेद उत्पन्न होने लगा अर्थात् ख्यालों के रूप में रचे जाकर लोक-नाट्यों की भांति इनका अभिनय होने लगा।

उपर्युक्त तीन विधाओं के अतिरिक्त भरतपुर के रासधारी और चित्तौड़ की तुर्रा कलगी नृत्य कला भी लोक नाट्य श्रेणी में आती है।

भगवान् कृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन करने वाले नृत्यकार रासधारी कहलाए किन्तु कालान्तर में ये लोग अन्य विषय भी अपनाने लगे। रासधारियों के खेल ख्याल का ही रूप है परन्तु इनके नृत्य राजस्थान में प्रचलित अन्य ख्यालों से कुछ उच्च कोटि के होते हैं। रासधारियों के नाटक अधिकतर धार्मिक होते हैं जैसे रास लीला राम लीला चन्द्रावल, बाम गूजरी हरिश्चन्द्र नागजी और मोरध्वज आदि।

भरतपुर अलवर करौली और धौलपुर क्षेत्र में इन कथाओं पर रसिये गा गा कर नृत्य का अभिनय किया जाता है जैसे — रानी तने जुलम कर डारो बन में भेजन्य श्रीराम। रासधारियों का बाम गूजरी अभिनय बड़ा चित्ताकर्षक होता है।

राजस्थान के प्रत्येक भाग में गूजर आदि [illegible] कृष्ण का वेश धारण किये अपनी भाषा में राधा कृष्ण के [illegible] ते हैं।
इनके गाने का ढंग [illegible]
भी गीत गा गा कर [illegible] सौम्य
या कुछ पद पाकर [illegible] हैं।
ही गीत गा [illegible] हैं
जाता है।

चित्तौड़ का तुर्रा कलगी नृत्य—लगभग 400 वर्ष पूर्व शाह अली और तुकनगिरि दो संत हुए जिन्होंने तुर्रा कलगी मत चलाया। यह मत शिव और शक्ति का प्रतीक था। शिव पार्वती के दर्शन को प्रोत्साहित करने के लिये काव्य प्रतियोगिता अथवा दंगल के रूप में शिव और पार्वती के भक्त अलग-अलग काव्य के द्वारा दार्शनिक समस्याएँ हल करने का प्रयास करते थे—इससे नृत्य नाटक की सृजना हुई और उसे तुर्रा कलगी नाम दे दिया गया। यह मत उन दिनों राजस्थान और मध्य भारत की सीमा पर बहुत प्रचलित था उसी से अन्य कई नृत्य-नाटकों की गायन शैली निकली।

ग्रिम महाशय ने जो पद्धति लोक-गीत रचना की बताई है तुर्रा कलगी गीत की रचना उसी प्रकार आशु कवि द्वारा रची हुई कविता की भाँति होती है—अर्थात् यहाँ गीतों के आधार पर सामूहिक गीत (कम्यूनल सौंग) रचना की प्रक्रिया मानी गई होगी। मण्डली में से एक व्यक्ति उत्तेजना में आकर एक लाइन खड़ा होकर बोलता है—उसी के अनुरूप दूसरा और तीसरा बोलता जाता है। तुर्रा कलगी गीत में पुरुष गीत की कड़ियों को बोलता है स्त्री उसे पूरा करती है। इस ढंग के गीत स्त्री पुरुषों द्वारा सम्मिलित रूप से गाये जाने वाले गीतों की श्रेणी में आते हैं।

अन्य लोक नाट्यों की अपेक्षा इस ख्याल के अभिनय में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(1) तुर्रा कलगी गीत के अभिनेताओं की प्रवृत्ति व्यावसायिक नहीं होती। शौक से मनोरंजन हेतु गाते नाचते हैं कोई उपहार रूप प्रेम से भेंट दे दे तो स्वीकार करते हैं।

(2) इनके मंच की सजावट अन्य ख्याल अभिनेताओं की अपेक्षा अधिक पूर्ण होती है।

(3) कलाओं में सादगी होती है परन्तु अभिनय और नृत्य में काव्यात्मक आडम्बर की प्रधानता रहती है।

लोक-नाट्य के ये सभी रूप लोक-जीवन की सरलता, स्वाभाविकता, आडम्बर विहीनता और सांस्कृतिक भावनाओं की उच्चता के द्योतक हैं। वैज्ञानिक युग में जहाँ जीवन-यापन के अनेक सुख साधन उपलब्ध होने से मनुष्य की सुख समृद्धियाँ बढ़ी हैं वहाँ चित्रपट आदि के अत्यधिक प्रचलन में मानव मस्तिष्क मनोरंजन के इन प्रकृत साधनों से दूर हट कर अपनी ईश्वर प्रदत्त कलात्मक प्रतिभाओं को खोने के साथ-साथ जीवन में सात्विक वृत्तियों का ऐन्द्रिक भोगों में परिणत करने लगा। जन जीवन में व्याप्त इन लोक-कलाओं का खोज द्वारा पुनर्जीवित करना समाज और राष्ट्र के स्वस्थ निर्माण के लिये अपेक्षित है।

लोक साहित्य के कुछ अन्वेषक एव समीक्षक

लोक शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ रखता है यह ब्रह्म की तरह अनन्त अपार और असीम है एव जन का पर्याय है। जिस साहित्य म इस अभिजात्य सस्कार रहित आदिम मानव की स्वत प्रेरित अभिव्यक्ति हो वह लोक साहित्य नाम से अभिहित होता है। साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है। वास्तव मे जीवन की विविध अवस्थाओ तथा अनुभवो का मनुष्य की भाषा म चित्रण साहित्य म होता है। लोक साहित्य इस क्रम के प्रतिपादन म सर्वश्रेष्ठ स्थान पर आसीन है क्योकि लोक साहित्य म मानव हृदय का यथार्थ चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। जीवन के निश्छल और स्वाभाविक रूप का दर्शन हम लोक साहित्य म ही होता है। शिष्ट साहित्य म चित्रण प्राय काल्पनिक एव अतिरजित पाया जाता है। उसम विशाल मानव समाज के बहुत थोडे से व्यक्तियो के जीवन की विशिष्टतापरक भाँकी मिल सकती है परन्तु लोक साहित्य अधिकाधिक जन समाज की भावनाओ का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। अत अखण्ड मानव समाज की एकता का परिचय जितना सुन्दर हम लोक साहित्य म मिलता है उतना अन्यत्र सम्भव नही। इसम ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व भर म सवत्र मानव का एक जसा हृदय धड़क रहा है। अत यह साहित्य मानवीय स्नेह की एकता का द्योतक है। जातीय जीवन म हमारे इस साहित्य का अत्यधिक मूल्य है। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टगोर न लिखा है कि जिस प्रकार शिशु प्रकृति की सृष्टि है किन्तु वयस्क मानव अधिकतर स्वय अपनी रचना है इसी प्रकार लोक साहित्य भी शिशु साहित्य है, मानव मन से उसका स्वत जन्म हुआ है। लोक साहित्य म भी लोक-गीत जन मानस म प्रवाहित भाव लहरी की सवश्रेष्ठ एव सर्वाधिक प्रभावशाली अभिव्यक्ति है। राजस्थान म एक कहावत 'गीतडा अरवे भीतडा' अर्थात् चिर काल तक रहने वाले गीत हैं अथवा भीत है। पुराने मकानो की भाँति हमारे य गीत पुश्त दर-पुश्त चले आते हैं।

आदिम मानव क हृदय की भावनाओ का भण्डार अपनी सजीवनी शक्ति के बल पर जीवित एक हृदय से दूसरे हृदय म प्रवाहित स्रोतस्विनी रूप म पीढी दर पीढी चला आ रहा है।

राजस्थान के लोक-गीतों में अन्य लोक साहित्य की भाँति भावों की अभिव्यक्ति अपना विशेष स्थान रखती है। यहाँ के विभिन्न गीतों में मानव के प्रत्येक हृदगत भाव का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। मिलन और विरह, हास्य और क्रन्दन, रोष, भय, घृणा, प्यार, वीरता, वेदना और वैराग्य आदि सारे भावों का विश्लेषण हमारे ग्राम गीतों में सम्यक् रूपेण हुआ है।

जीवन के प्रत्येक पहलू पर गीत गा-गा कर मानस के भावों का उन्मूलन होता है। लोक गीत भाव ही भाव है और कुछ नहीं। पारिवारिक और सामाजिक जीवन परिस्थितियाँ हर्ष, शोक, विषाद, पीड़ा, भय और करुणा के भावों को प्रकट करने के लिये लोक-गीतों को जन्म देती रही हैं। सभ्यता के आवरण में मनुष्य संकोचवश अपने अन्तर भावों को ज्यों के त्यों प्रकट करने में सकुचाने लगा अतः गिने चुने प्रतिभावान व्यक्तियों को ही भावाभिव्यक्ति का अधिकार रह गया जो समाज में साहित्यकार कहलाने का दावा रखने लगे। पर लोक गीतों द्वारा अभिव्यक्ति पर मानव मात्र का अधिकार है। आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम ही लोक गीत है।

लोक-कला की प्रारम्भ धरती से जुड़ी है। लोक गीत हो, लोक नृत्य अथवा लोक कहानी हो अथवा लोक नाट्य, परम्परागत मूर्ति कला हो अथवा चित्र कला इनकी रूपरेखा में धरती की गन्ध आयगी। यही कारण है कि लोक कला एकप्रान्तीय अथवा एकदेशीय न होकर सदा विश्वव्यापी वस्तु के रूप में जीवित रही है। भाषा और शैलीगत भेद के कारण भले ही लोक कला के बाह्य रूप में भेद में उपस्थित हो जाय, परन्तु रस भाव आदि की दृष्टि से उसमें समस्त सृष्टि के साथ एकस्वरता रहती है। सामाजिक व भौगोलिक परिस्थितियों के कारण भेद होते हुए भी गीतों की अन्तरात्मा एक ही है। गाँव गाँव और घर घर में विचरण करके गीत संग्रहकर्ताओं का अनुभव है कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में घरों के भीतर गाये जाने वाले गीतों को सुनने से प्रतीत होता है मानो एक ही आत्मा भिन्न भिन्न भाषाओं में बोल रही है। मानव हृदय सर्वत्र समान है। व्यक्ति रचित जातीय एवं सामाजिक भेद भाव लोक हृदय में भेद उत्पन्न नहीं कर पाते। लोक गीत मानवीय भावनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं के स्वाभाविक प्रकाशन मात्र हैं। इसी कारण संसार भर के लोक साहित्य में सर्वत्र एक ही अन्तरधारा बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। डा० कन्हैया लाल सहल के शब्दों में क्या कहानियाँ, क्या कहावतें और क्या लोक गीत सभी पर यह बात समान रूप से लागू होती है। अनेक गीत संसार के अलग अलग भागों के होते हुए भी शब्द मिलते हुए पाये जाते हैं। भारत के अन्यान्य प्रान्तों—विशेषकर गुजरात और उत्तर प्रदेश के गीतों के साथ राजस्थानी गीतों में अत्यधिक साम्य है ही—इंगलैण्ड तक के गीतों में भावगत समानता पायी गयी है। उदाहरण स्वरूप प्रेयसी को समाचार भेजते हुए वियोगी पति एवम् पत्नी की ओर से पति के संवादात्मक गीतों के अंश दिये जाते हैं—इंगलैण्ड का गीत—प्रेमी पति एक पक्षी से कहता है—

"Will is me my gay gashawk that you can speak and see
For you can carry a love letter to my true lover from me

× × × ×

"How can I carry a letter to her or how should I her know
I bear a tongue that never talked with her and eyes that
never saw her shape

राजस्थानी गीत —

"उड ज्या रे काग गिगन का वासी, खबर तो लाव म्हारे राजन की।"
गाँव नहीं जाणू, मैं तो गाँव नहीं जानूँ सूरत न जाणू थारे राजन की।
गाँव बतास्यां, गाँव बतास्यां, सूरत बतास्यां म्हारे राजन की।
सीली-सीली नाक फिरणो को मोकर, चाल चले उमरावाँ की॥'

× × × ×

'उड ज्या रे काग गिगन का वासी खबर तो ल्याव म्हारी गोरी की।
गाँव नहीं जाणू मैं तो गाँव नहीं जाणू सूरत ना जाणू थारी गोरी की॥

इसी प्रकार अन्य देशों के लोक गीतों की तुलना करने पर विदित होता है कि फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, रूस यूगोस्लाविया और बुलगेरिया आदि सब स्थानों के गीतों में भाव शैली और विषय सम्बन्धी साम्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। जातीय हृदय की उथल-पथल दुःख सुख संयोग वियोग आदि की भावनाएँ विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों में व्यक्त हुई हैं। देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक एवं सामाजिक आदर्श इन गीतों में सुरक्षित है।

जीवन रस जिसमें छलक रहा हो वही तो सच्चा साहित्य है फिर लोक साहित्य और विशेषतया लोक-गीतों में तो प्रत्येक हृदय को रस से प्लावित करने की क्षमता है। जब लोक मानस आनन्द से गद्‌गद हो उठता हो या करुणा का स्रोत बहने लगता हो, लोक-गीत की महती परम्परा बलवती हो उठती है। रस का यही अजस्र प्रवाह लोक-गीत का प्राण है। स्वर फुहार है और शब्द जल है। डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ग्रामीण तथा नागरिक परम्परा का सम्बन्ध दूध और उसके ऊपर मलाई की तह जैसा बताया है। किसी देश की संस्कृति तथा साहित्य तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक लोक साहित्य का परिचय प्राप्त नहीं किया जाय। आप लिखते हैं अभी तक हम भारतीय नागरिक केवल मलाई का स्वाद लेते रहे हैं पूर्ण तृप्ति और स्वाद के लिये मलाई सहित कटोरा भर दूध होना चाहिए।[1]

---

1 परिचय ब्रजलोक साहित्य (डा० धीरेन्द्र वर्मा)

विदेशों में लोक साहित्य का नृशास्त्र, समाज शास्त्र भाषा शास्त्र इतिहास मनोविज्ञान और पुरातत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। यूरोप के प्रत्येक छोटे-बड़े राष्ट्र की अपनी लोक साहित्य परिषद् है। अनेक अन्वेषकों और विद्वानों ने इस दिशा में महान् कार्य किया है।

भारतवर्ष में भी अनेकों विद्वानों एवं संस्थाओं के माध्यम से साहित्य का अनुसंधान होता रहा है। जन जीवन में व्याप्त इस प्रकृत साहित्य की प्रचुर राशि की खोज कर-कर के देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पीएच डी की डिग्री हेतु शोध ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। पं० राम नरेश त्रिपाठी ने दस वर्षों तक गांवों में भ्रमण कर के उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय लोक गीतों का सराहनीय संग्रह किया जो उनकी कविता कौमुदी के चतुर्थ-पंचम भागों में प्रकाशित हुआ। फिर गीतों के धनी देवेन्द्र सत्यार्थी ने 25 वर्षों के अथक परिश्रम से हिन्दी क्षेत्रीय लोक गीतों को अपनी पुस्तकों (1) धरती गाती है (2) धीरे बहो गंगा (3) बेला फूले आधी रात (4) और बाजत आवे ढोल में प्रस्तुत करके भारत की इस अमूल्य थाती का महत्व प्रस्थापित किया।

इसी प्रकार लोक साहित्य के पारखी विद्वान श्री कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० सत्येन्द्र तथा श्याम परमार आदि महानुभावों ने लोक साहित्य के विभिन्न पक्षों का सफल शोधपूर्ण विवेचना की है। डा० सत्येन्द्र का पीएच डी हेतु प्रस्तुत शोधग्रंथ 'ब्रज लोक साहित्य एक अध्ययन' है ही। तत्पश्चात् उनकी बहुमुखी सृजना प्रवृत्ति ने लोक साहित्य को ही मुख्य रूप से अध्ययन और रचना का विषय बनाकर विविध विषयक अमूल्य ग्रन्थ लोक साहित्य को भेंट किये हैं। आपकी समीक्षात्मक रचनाएँ हैं— 'लोक साहित्य विज्ञान,' 'लोक-संस्कृति, लोक साहित्य का तात्विक अध्ययन,' और 'लोक वार्ता की पगडण्डियाँ'। लोक साहित्य के तात्विक अध्ययन की दिशा में अग्रसर इन अनुपम उपलब्धियों के आधार पर डॉ० सत्येन्द्र लोक साहित्य के चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित हुए हैं।

इन समीक्षात्मक एवं तात्विक अध्ययन सम्बन्धी रचनाओं के अतिरिक्त आपके ब्रज की लोक संस्कृति तथा ब्रज की लोक कहानियाँ आदि अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित होते रहे हैं। निजी रचनाओं के साथ डॉ० सत्येन्द्र के शिष्य मण्डल ने आप से प्रेरणा ले कर व्यापक मार्ग दर्शन में लोक साहित्य पर कई शोध ग्रन्थ तैयार कर लिये हैं। डॉक्टर साहब की पुत्र वधू डा० शारदा सत्येन्द्र ने आप के मार्ग दर्शन में राजस्थान के लोक देवता गोगाजी पर 'जाहर पीर गुरु गुग्गा' शीर्षक शोध ग्रन्थ तैयार किया है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय के भोजपुरी लोक गीत तथा डा० श्याम परमार का 'भारतीय लोक साहित्य' लोक साहित्य पर प्रामाणिक उपलब्धि हैं। इसी प्रकार मेघाणीजी ने गुजराती भाषा क्षेत्र के लोक साहित्य पर स्तुत्य अनुसंधानात्मक अध्ययन एवं गीतों का संकलन प्रस्तुत किया है।

डा० श्याम परमार एवं डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय के मालवी लोक-गीत भी इसी श्रेणी के हैं। पिछले लगभग दो दशकों से विद्वानों का ध्यान अपने देश की धानी लोक साहित्य पर अध्ययन करने की ओर अधिक जा रहा है। इस अवधि में और भी अनेक विद्वान लोक साहित्य अनुसंधान में रत हो रहे हैं। श्रीमती सीता देवी रूसवल्ली एवं लीला प्रभाकर की धूलधूसरित मणियाँ श्री वृन्दावनलाल वर्मा का बुन्देल खण्ड के लोक गीत डॉ० सत्यव्रत सिंह की भोजपुरी लोक गाथा प्रा० श्रीचन्द जैन का मध्य प्रदेश के लोक गीत, श्री राम इकबाल सिंह के मैथिली लोक गीत डा० चिन्तामणि उपाध्याय का लोकायतन एवं डॉ० कुन्दीप का लोक-गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन आदि रचनाएँ इस तथ्य की द्योतक हैं कि भारतीय स्तर के लोक साहित्य पर महत्त्वपूर्ण शोध एवं समीक्षात्मक कार्य हो रहा है।

राजस्थान की कई राजकीय तथा अर्धराजकीय संस्थाएं इस प्रकार के शोध कार्य में रत हैं जिनमें निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं —

1 राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
2 सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर।
3 राजस्थान संगीत नाटक अकादमी जोधपुर।
4 भारतीय लोक-कला मण्डल उदयपुर।
5 राजस्थान विद्या पीठ उदयपुर।
6 राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर।
7 भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेर।

उपर्युक्त संस्थानों के अतिरिक्त राजस्थानी लोक साहित्य और विशेषकर लोक गीतों पर व्यक्तिगत रूप से जिन विद्वानों ने खोज पूर्वक प्रचुर सामग्री संचित की है उनमें मेरे स्मृति पथ में आने वाले निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं।

जैन साधु-साध्वियाँ सदा से लोक जीवन से गाढ़ सम्पर्क रखते आये हैं। शिष्ट साहित्य में प्रयुक्त विविध छन्दों की भाँति जैन साधु लेखकों की रचनाओं में विविध ढाल (तर्ज) रहती थी और गीत का नाम और पंक्ति देकर उनका निर्देश किया जाता था। इन उल्लेखों और उदाहरणों से गीतों की प्राचीनता और प्राचीन रूपों पर प्रकाश पड़ने के साथ-साथ सैकड़ों विस्मृत गीतों का भी पता चल जाता था।

राजस्थानी लोक साहित्य पर इन जैन विद्वानों और कवियों का महान् उपकार है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध धुरंधर विद्वान श्री अगरचन्द नाहटा ने उस प्रकार के प्राचीन गीतों की खोज का स्तुत्य कार्य किया है। उनके द्वारा एवं अन्य कई जैन विद्वानों के द्वारा लगभग ढाई हजार देशीयों और ढालों का संकलन किया गया है।[1]

राजस्थान में जिस प्रकार भाषा सम्बन्धी कार्य टैसिटरी आदि महानुभावों ने किया है इसी प्रकार लोक साहित्य के विभिन्न पक्षों पर पिछले कुछ वर्षों में सराहनीय

---

1 विस्तृत विवरण देखिये 'राजस्थानी लोक गीत' शोध ग्रन्थ पृष्ठ 41–45।

शोध कार्य हुआ। इनका विश्वास न राजस्थानी लोक कथा कहावत और लोक गीतों पर खोज करके संकलन प्रकाशित करवाये और अप्रकाशित सामग्री का तो और छोर ही नहीं। मैंने राजस्थानी लोक-गीतों के अध्ययन की अवधि में देखा कि सुप्रसिद्ध लोक साहित्य के क्षेत्र में विधि पूर्वक कार्य करने वालों के अतिरिक्त भी अनेक लोक संस्कृति के प्रेमी विद्वान मौनरूप में अपने अपने क्षेत्रों में लोक साहित्य की खोज एवं संकलन में रत हैं, जिनका उल्लेख मैंने अपने शोध ग्रन्थ "राजस्थानी लोक गीत" की भूमिका में किया है।

1 श्री नरोत्तम दास स्वामी स्वर्गीय डा० रामसिंह और स्वर्गीय सूर्य करण पारीक के सामूहिक प्रयासों से संकलित राजस्थान के लोक-गीत 2 भागों में प्रकाशित। वयोवृद्ध शिक्षा शास्त्री एवं विद्वान श्री स्वामीजी लोक गीतों के संकलन आदि का और भी स्तुत्य कार्य करते रहे हैं जो आपके शान्ति आश्रम नामक ग्रन्थालय बीकानेर में उपलब्ध है। लेखिका का राजस्थानी गीतों पर शोध कार्य भी आप के ही निर्देशन में हुआ।

2 बीकानेर के ही स्वर्गीय मुरलीधर व्यास व श्री बद्री प्रसाद साकरिया ने कहावतों और मुहावरों का विशिष्ट संग्रह किया। श्री दीनदयाल ओझा ने जैसलमेर के लोक साहित्य पर विशेष रूप से कार्य किया। श्री मान्न लाल पुरोहित और श्री पुरोहित और व्यास जी की घूमर पुस्तक और श्रीओझा की राजस्थान की गणगौर इनके लोक साहित्य प्रेम की द्योतक हैं।

3 डॉ० कन्हैया लाल सहल का Ph D के लिए रचित ग्रन्थ राजस्थानी कहावत एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। डॉ० सहल इस दिशा में और भी अध्ययनरत हैं—आपके लोक साहित्य पर शोध परक लेख बहुधा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

4 जोधपुर के श्री जगदीश सिंह गहलोत का मारवाड़ी लोक-गीत संग्रह और वयोवृद्ध श्री मनोहर शर्मा का लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा अभिनन्दनीय रचनाएं हैं।

5 पिलानी के श्री गणपत स्वामी और पतराम दास गौड का गीत संकलन बिरला कालेज पिलानी के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

6 भूतपूर्व संसद सदस्या विदुषी लेखिका रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत के राजस्थानी लोक कथाओं और वार्ता के कई संकलन प्रकाशित हो चुके है।

7 उदयपुर के डॉ० जनार्दनराय नागर पुरुषोत्तम मेनारिया आदि विद्वानों के अतिरिक्त डा० देवीलाल सामर ने राजस्थानी और भारतीय लोक-गीतों और लोक नृत्यों को अभिनयात्मक संगीत में बांध कर अनुपम उपलब्धियाँ की हैं—आपने सम्पूर्ण जीवन लोक कलाओं की खोज और विकास में लगाकर नित्य नई उद्भावनाएं की हैं जिनके फलस्वरूप भारतीय लोक साहित्य और लोक नाट्य एवं नृत्य कलाओं को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति प्राप्त हो रही है। डॉ० महेन्द्र भानावत भी डा० सामर की प्रेरणा से भारतीय लोक कला मण्डल की उपलब्धियों में योग दे रहे हैं।

लोक काव्यों का संग्रह एवं अन्य कई रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। यहाँ से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं 'रंगायन' आदि में भी महत्त्वपूर्ण शोध परक लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

8 बीकानेर की डा० सुशीला ने लोक महाभारत पर Ph D के लिये शोध प्रबंध लिखा है। भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर में लोक साहित्य का कुछ संग्रह हुआ है। श्री मूलचन्द पारीक आदि अन्य कई व्यक्ति भी इस दिशा में कार्यरत हैं।

श्री कोमल कोठारी ने लोक कथाओं सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्हीं की सेवाओं के फलस्वरूप संगीत नाटक अकादमी जोधपुर द्वारा कई लोक-गीत संग्रह प्रकाशित हुए और लोक साहित्य व संगीत रिकार्ड किया गया। हाड़ौती लोक साहित्य पर डा० कन्हैयालाल शर्मा का शोधग्रन्थ एवं अन्य रचनाएँ उल्लेखनीय उपलब्धि हैं।

कलकत्ता की राजस्थान रिसर्च सोसायटी और बंगाल हिंदी मण्डल में भी राजस्थानी लोक साहित्य का सुन्दर संग्रह है।[1]

डा० देवीलाल सामर के लोक कला प्रेम के फलस्वरूप लोक-नृत्य, लोक-नाट्य आदि विधाओं से सम्बन्धित प्रचुर लोक साहित्य प्रकाशित हो चुका है जिसमें उल्लेखनीय हैं—राजस्थान के लोकानुरंजन राजस्थान का लोक संगीत राजस्थान के लोक नृत्य राजस्थान की लोककथाएँ और भारतीय लोक नृत्य। राजस्थान में कई पत्र पत्रिकाएँ लोक साहित्य सम्बन्धी शोध पर प्रकाशित हो रही हैं जिनसे नित्य नई शोध का विवरण प्राप्त होता है। मुख्य हैं—शोध पत्रिका मरुभारती पिलानी राजस्थान भारती बीकानेर, परम्परा जोधपुर, रंगायण उदयपुर।

ऊपर वर्णित लोक साहित्य प्रेमी विद्वानों द्वारा संकलित सामग्री से बीकानेर जैसलमेर शेखावाटी पिलानी, जयपुर जोधपुर मेवाड़ और हाड़ौती आदि विभिन्न क्षेत्रीय राजस्थानी लोक-गीत उपलब्ध हो सके जिनके आधार पर लेखिका ने भी अखिल राजस्थान की इस लोक जीवन की निधि का सर्वेक्षण करके स्वरूपात्मक भावात्मक सांस्कृतिक एवं तात्विक अध्ययन अपने शोध ग्रन्थ राजस्थानी लोक गीत में प्रस्तुत किया है जो राजस्थान साहित्य अकादमी ने दो खण्डों में प्रकाशित किया—प्रथम शोध निबन्ध मात्र है और द्वितीय खण्ड में निज के संकलित तथा निबन्ध में उद्धृत लोक गीत।

राजस्थानी लोक साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक एवं विशाल है कि हमारे इन प्रयासों को एक वैज्ञानिक उपलब्धि नहीं माना जा सकता। राजस्थानी लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं सम्बन्धी खोज बहुत कुछ करनी अपेक्षित है। ●●

---

1 राजस्थानी लोक सम्बन्धी प्रकाशित ग्रन्थों और निबन्धों की सूची कुछ वर्ष पूर्व परम्परा पत्रिका के लोक साहित्य अंक में प्रकाशित हो चुकी है।

डॉ० स्वर्णलता के
महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1 साहित्य दिग्दर्शन
2 मधु सचय (सकलन)
3 राजस्थानी लोक गीत भाग प्रथम (शोध प्रबन्ध)
4 राजस्थानी लोक गीत भाग द्वितीय (लोक गीत सकलन)
5 साहित्य सौरभ (सकलन)
6 नव वधू
7 सस्कृत वभव (बोर्ड की माध्यमिक परीक्षा हेतु सकलित)
8 अभिनव सस्कृत व्याकरण
9 हिन्दी रचना बोध और व्याकरण
(उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए स्वीकृत
10 अभिनव धर्म मजरी (अप्रकाशित)
11 चिन्तन चयनिका (अप्रकाशित)
12 साहित्य के आयाम (अप्रकाशित)
13 धर्म का स्वरूप और मान्यतायें

अनूदित —

1 अध्यात्म सुता — स्वामी शिवानन्द की All about Hinduism का अनुवाद
2 पर उपदेश कुशल बहुतेरे — सस्कृत कहानियों का अनुवाद
3 योगासन